THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180537

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 H32K Accession No. H 3204

Author हर्षनाथ

Title करमू और जगती 1954 H

This book should be returned on or before the date last marked below.

करमू और जगनी

लेखक
हर्षनाथ

सम्पादक
यज्ञदत्त शर्मा
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक
साहित्य-प्रकाशन
नई सड़क, मालीवाड़ा, दिल्ली।

मूल्य
चार रुपया आठ आना
१९५४

मुद्रक
रसिक प्रिंटर्ज, ५ देवनगर,
करौल बाग, दिल्ली।

पुस्तक से पूर्व

'करमू और जगनी' का प्रकाशन करके मैं अनुभव कर रहा हूँ कि साहित्य-प्रकाशन' हिन्दी-साहित्य को एक नई चीज़ दे रहा है। ग्रामीण जीवन के पात्रों को साहित्य में लेकर सर्व प्रथम हिन्दी उपन्यास-सम्राट मुन्शी प्रेमचन्द आये और उन्होंने गोदान के पात्रों में 'होरी' की स्थापना की। उनके पश्चात् एक लम्बे युग तक मानो वह विचार-धारा कुछ खो सी गई। कुछ फुटकल रूप से इधर-उधर चीजें सामने आईं परन्तु उन्हें कोई विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया जा सकता।

इस दिशा में 'साहित्य-प्रकाशन' ने मेरी दो रचनायें 'इन्साफ़' और 'भुनिया की शादी' प्रकाशित कीं, जिनको हिन्दी-पाठकों तथा आलोचकों ने प्रेम से पढ़ा और अपनाया। साहित्य-प्रकाशन की उसी लड़ी का 'करमू और जगनी' एक क़ीमती रत्न है, जिसे लेखक ने गाँव की धूल में से उठाया है। जौहरी की दूकान से नक़दी देकर हीरा खरीद लेना मैं कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं समझता, क्योंकि वह तो केवल पैसे का खेल है। इसी प्रकार साहित्य में भी उन्हीं पात्रों को लेकर, जिनपर गद्य और पद्य में भारतीय तथा विदेशी लेखकों द्वारा काफ़ी लिखा जा चुका है, साहित्य के ऊँचे कहलाने वाले कलाकारों द्वारा भाषा और शैली के आधार पर कलाबाज़ियाँ दिखलाना मैं कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं

समझता। यह जौहरी की दुकान से हीरे खरीदने वाली ही बात है। परन्तु हर्षनाथ जी ने जौहरी की दुकान से हीरे न खरीद कर ज़मीन की छाती को चीरा है और परख की है कंकड़ पत्थरों मे मिले हीरों की। प्रयत्न सराहनीय है और मैं हिन्दी साहित्य में इसका स्वागत करता हूँ।

हर्षनाथ जी के इस उपन्यास से पता चलता है कि उन्होंने ग्रामीण जीवन को पढ़ा या सुना नहीं है, वरन् उसके अन्दर गहराई के साथ घुसकर देखा है। प्रकृति का बहुत ही कलात्मक चित्रण स्थान-स्थान पर आया है और उसमें प्राणपन स्थापित किया है। लिखते समय लेखक का जीवन प्रकृतिमय हो गया है।

पुस्तक के विषय में मै अधिक लिखना व्यर्थ समझता हूँ, क्योंकि पुस्तक सामने है और पुस्तक पढ़ने से पूर्व उसकी कथा इत्यादि के विषय में कुछ जान लेने से उसका मज़ा खराब हो जाता है।

इस पुस्तक को लिखने के लिए लेखक बधाई का पात्र है।

यज्ञदत्त शर्मा

करमू और जगनी

: १ :

करमू मटर के खेत मे पानी बला रहा था। शीत के कारण उसका शरीर कांप रहा था। उसके हाथ पैर ठिठुरे जा रहे थे। घुटने तक ओस से भीग गये थे। फिर भी वह क्यारियाँ बना रहा था। उसके शरीर पर एक गंजी थी, वह भी फटी हुई। जगह-जगह से उसका शरीर दिखाई दे रहा था। कानों को उसने एक अंगोछे से बाँध रखा था। बार-बार एक आशा से वह पूरब की ओर देख लेता था कि सूरज निकले तो जरा शरीर में गर्मी आ जाय और यह हाड फोड देने वाली हवा जरा रुके।

आकाश मे धुँधलका छाया हुआ था। सारे खेत, बाग, बगीचे, सारी प्रकृति, अंधेरे मे लिपटी हुई थी। केवल कूओं पर से बैलों को हाँकने की आवाज आ जाती थी। पुर के चलने से चर-चर का स्वर उट रहा था। अथवा कही अरहर और ईख के खेतों में स्यारों और लोमड़ियों के भागने की सरसराहट सुनाई दे जाती थी। उस अंधेरे धुँधलके में करमू को लगता था जैसे वह अकेला कही खो गया हो, उसका मार्ग अवरुद्ध हो गया हो, बार-बार वह आकाश की ओर देख लेता था कि पौ फटे और वह सूरज की दो किरणें पा जाय।

उसकी इच्छा हुई, जरा एक फूंक चिलम पी ले, कुछ तो राहत मिलेगी। धूंए' की गर्मी से जरा जान आयेगी। पर खेत मे पानी आ रहा था। उसकी मेड़ बाधना जरूरी था। अगर मेंड़ नहीं बँधेगा तो पानी इधर-उधर बह जायेगा। मन मार कर वह मेड़ बाँधता रहा और शा-भरी नजरों से पूर्व के आकाश की ओर देखता रहा।

और पूर्व के आकाश में एक सिन्दूरी रेखा खिंच आयी। देखते-

देखते उसने फैल कर सारे पूर्वी क्षितिज को घेर लिया। लगा जैसे नई दुलहन गुलाबी साड़ी ओढ़ कर मन्द-मन्द चाल में आकाश से धरती पर उतरी आती है। लगा जैसे बाग-बगीचों में चहकते पंछी उतरने वाली दुलहन का उछल-कूद कर, और बच्चे किलोलें भर कर स्वागत कर रहे हों।

पूस का सूरज जाड़े से काँपता-सिहरता क्षितिज के ऊपर उठ आया। उसकी आकृति अब भी सिकुड़ी-सिकुड़ी थी। उसकी किरणें अब भी सिहर कर काँप रही थीं। उसकी धूप फीकी लगती थी। उसका प्रकाश मद्धिम था, लगता था जैसे अंधेरे में किसी ने उससे छेड़खानी की हो और उतावली में बिना अपनी पूरी शक्ति समेटे वह भाग आया हो, और खतरे से दूर आश्वस्त होकर जसे सन्तोष की साँस ले रहा हो।

सूरज की किरणों के स्पर्श से करमू के शरीर में कुछ गर्मी महसूस हुई। सूरज की वह नई ताजी गर्म किरण उसे बड़ी भली मालूम हुई, छोटे बच्चे का मानों कोमल हाथ हो; गर्म-गर्म, नर्म, मुलायम और साथ ही कोमल भावनाओं से भरा हुआ। सीधे खड़े होकर उसने रुक कर अंगड़ाई ली और फिर तन कर खड़ा हो गया। चारों ओर एक नज़र उसने डाली। उसे बड़ा लुभावना दृश्य लगा। पूस के सूरज की कोमल धूप से सारी प्रकृति जैसे निखर गई हो: दिग-दिगन्त तक, धरती के इस छोर से उस छोर तक, आँखों की सीमा तक हरे भरे खेत कहीं-कही पर पेड़ों के झुण्ड, उनकी हरी-हरी पत्तियों के टुनगों पर ओस की लुढ़कती बूंदें। वह जौ और गेहूँ के खेत, अपने मस्तक पर लचकीली बालें धारण किए और अपनी माँग ओस के मोतियों से सजाये, चने और मटर के खेत रंग-बिरंगे फूलों से बने–ठने और वे तरे और सरसों के लुभावने फूल। थोड़ी दूर पर ईख और अरहर के लहराते हुए खेत, और उनसे निकल कर धूप का आनन्द लेती हुई लोमड़ियाँ और स्यार, सतर्क नज़रों से इधर-उधर देख रहे थे। कौवे मटर के खेतों की डोलों पर उछल-कूद रहे थे और मटर की फलियों

का कलेवा कर रहे थे। तितली एक फूल से उड़कर दूसरे फूल पर बठ जाती। दस पंद्रह खेतों के अन्तर पर कूएं, उन पर चलती हुई मोट, उनके हाँकने वाले और वे बैल ; बेसुध सा खड़ा करमू यह दृश्य देख रहा था, मुग्ध, मोहित, जैसे यह सारी प्रकृति उसमें कोई नशा भर रही हो, जैसे कोई सम्मोहक उन्माद भर रही हो। जैसे उसके हृदय का तार-तार किसी मधुर मोहक गीत की लय से झनझना रही हो। उसे लगा कि वह इस सारे ऐश्वर्य के साथ, इस सारी मधुर मोहक रागिनी के साथ, धरती से ऊंचा उठकर आकाश में उड़ जायेगा। उसके सुन्न प्राण में, उसकी धमनियों के लहू में जैसे एक मौन मूक आनन्द तरंगित हो उठा, उसका अन्तर्मन जैसे स-स्वर हो उठा हो। ओह, इतना वैभव इस धरती पर फैला है, इतना ऐश्वर्य इस धरती पर बिखरा है, इतना सम्मोहक राग हवा की लहरियों पर प्रतिध्वनित होता रहता है! और वह इस सारे ऐश्वर्य के बीच में खड़ा है। वह इस सारे वैभव को अपनी नज़रों से देख रहा है। इस धरती पर इतना सोना है, इस धरती पर इतना अन्न है, इस धरती पर इतना ऐश्वर्य है, इस धरती पर इतना आनन्द-उन्माद है, और यह धरती इतनी सम्पन्न है। उसके जी में आया कि वह आनन्द के अतिरेक में उछल पड़े। इस सारे वैभव को अपनी अंजुलियों में बटोर कर पी जाय। इन ओस की बूंदों से अपना श्रृङ्गार करले। किन्तु.....।

सहसा उसका तन-बदन सिहर उठा, कुलांचे भरती हुई हिरनी के सामने तड़प कर जैसे बाघ आ खड़ा हो। उसका अपना क्या है? एक खूड जमीन भी तो उसकी नहीं। एक फूल-पत्ती भी तो उसकी अपनी नहीं। हालांकि यह खेत उसी ने जोता है। उसी ने उसमें बीज डाले हैं। उसी ने इस गन्ने को, जेठ बैशाख में, अपने पसीने की बूँदों से सींचकर इतना बड़ा किया है, पर आज उसका कुछ नहीं, कुछ नहीं। उसके बच्चे एक गन्ने के लिए रोते तरसते रह जाते हैं। मटर की एक फली तक नहीं छू सकने। उसका अपना कुछ भी नहीं, एक

दिन बीमार हो जाय तो मुँह में दाने तक न पड़ें।

लगा कि एक धक्के से वह गिर जायेगा। उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उसका सर घूमने लगा। जैसे कोई शिकंजे में उसे कस रहा हो, उसका मन प्राण घुट रहा था। और तभी एक आवाज से वह चीख उठा। उसकी छोटी लड़की सुखिया सामने खड़ी कह रही थी।

'बापू, हम गन्ना लेंगे। चलो, तोड़ दो न उस खेत से।'

करमू कुछ समझे बूझे कि तब तक उसकी स्त्री जगनी ने कुछ कड़े स्वर में कहा।

'तुम खड़े होकर यह क्या कर रहे हो! सारा पानी बह गया। खेत की मेंड़ तक नहीं बाँधी। तिवारी देखेंगे तो चार खरी-खोटी सुना देंगे।'

करमू ने घबरा कर खेत की ओर देखा। पानी बहकर चारों ओर मनमाने तरीके से घूम रहा था। जल्दी-जल्दी वह खेत की मेंड़ बाँधने लगा।

उधर उसकी लड़की ईख के खेत पर पहुंचकर गन्ने तोड़ने का प्रयत्न कर रही थी। एक छोटा सा गन्ना तोड़कर उसके पत्ते वह छीलने लगी। करमू जब मेंड़ बाँध चुका तब वह अपनी स्त्री से बोला, 'अरी सुनती है, कूएं पर से चिलम तो जरा भर ला। एक फूंक तम्बाकू पी लूं।'

और जगनी कूएं पर जाकर चिलम भर लाई। साथ में हुक्का भी लेती आई। करमू हुक्का लेकर पीने लगा। जगनी चुपचाप उसको देख रही थी। उसे लगा कि आज जैसे उसका मर्द किसी चिन्ता में खो जा रहा है। सदा प्रसन्न रहने वाला चेहरा कुम्हलाया हुआ है। उसने पूछा :

'आज किस सोच-विचार में पड़े हो। तिवारी जी ने कुछ कहा है क्या?'

करमू को अपमान मालूम हुआ कि उसकी स्त्री यह सोचे कि उसे

किसी ने कुछ कहा सुना है । उसने ननकर कुछ ऊँचे स्वर में कहा :

'कहेगा कोई क्या, सवेरे से शाम तक शरीर को खपाता हूँ। बिना दिये एक दाने तक को हाथ नहीं लगाता, इस पर भी कोई कहने वाला बैठा है ? फिर क्षण भर ठहर कर निःश्वास लेकर कहा : 'मैं तो एक दूसरी ही बात सोच रहा था जगनी !'

जगनी ने आँखें उठाकर उसके मुँह पर टिका दीं। कहा कुछ नहीं, किन्तु जैसे उसका रोम-रोम पूछ रहा हो : क्या बात ?

करमू ने एक गहरी साँस लेकर कहा :

'मैं सोच रहा था, यह खेत हमारा होता । यह कूँआ हमारा होता. यह बाग बगीचा हमारा होता, कुछ गाय और बैल अपने होते, और तब हम अपने लिए मेहनत करते, बिलकुल अपने लिए । फिर यह गन्ने का खेत हमारा होता । यह मटर और चने की कलियाँ हमारे लिए खिलतीं. जौ और गेहूं की बालें हमारी होतीं । चैत बैसाख में अनाज से घर भर जाता । तब हमारी सुखिया क्यों मटर के दानों के लिए तरसती । क्यों ईख के एक टोटे के लिए दूसरों का मुँह ताकती, और फिर बापू क्यों इस बुढ़ापे में तिवारी का खेत जोतते : उनको तो अब आराम की जरूरत है । फिर तू भी तो इस तरह फटे पुराने कपड़ों में ठिठुरती न फिरती ।'

सहसा उसका मन उल्लास से भर गया; जैसे ये सारे खेत, ये सारे बाग-बगीचे, ये कूंए, ये बैल और धरती की यह सारी सम्पदा उसकी अपनी ही हो और सबका अधिष्ठाता बना अपनी स्त्री के साथ वह उसका मुआयना कर रहा हो ।

जगनी के मन में अपने पति की बातें सुनकर कौतूहल जाग उठा । एक उल्लास जैसे फूट पडा । उसके मुँह पर एक मुस्कराहट की रेखा खिंच आई और दुलसते हुए हृदय से कहा :

'और तुम भी तो इस तरह फटे पुराने कपड़े नही पहनते । बिलकुल

साफ़-साफ़ जैसे तुम्हारे कपड़े होते ।'

क्षण भर पहले करमू के मन में अभाव की स्थिति के ज्ञान से जो शिथिलता आ गयी थी, जो उदासी उसके हृदय पर छा गई थी, पत्नी की इस चुहलबाजी से वह दूर हो गयी । एक स्नेह उसके मन में उतर आया । प्रेम की लाली छा गई और मुस्करा कर अपनी स्त्री से कहा :

'हाँ, हाँ, रानी जी ठीक कह रही हो । तुम्हारा अधिकार तब क्या कम होता । रानी ही तो राजा के ऊपर शासन करती है ।'

और क्षण भर तक लालसाभरी नज़रों से उसकी ओर देखता रहा । जगनी का मुँह इस समय उसे बड़ा भला मालूम हुआ, बहुत आकर्षक लगा । मटर की एक फली को तोड़कर हलके से उसके ऊपर फेंक कर मारा । किंचित बनावटी रोष से जगनी ने उसकी ओर देखा और कुछ झिड़क कर कहा :

'चलो हटो, बड़े दुलार करने वाले आये ।'

करमू का मन मस्ती से झूम उठा । और क्षणभर गुनगुनाकर उसने एक तान छेड़ दी :

तोहरे कारना, गोरी तोहरे कारना ।

हम तो गंगा पँवड़ के आये गोहरी तोहरे कारना ।

उसके गीत की लय जैसे हवा की लहरियों पर थिरक-थिरक कर तैर रही हो । सारा वातावरण हँसी-खुशी में, मस्ती मे, डूब रहा हो ।

जगनी ने अपनी आँखें तरेर कर, बनावटी रोष से कहा : 'रहने दो, हो चुका । सुन ली तारीफ़ । बड़े राजा..... ।'

और तभी सहसा करमू के गीत का लय टूट गया । जगनी सन्नाटे में आ गयी । उनके सामने खेत का मालिक रामलखन तिवारी खड़ा था ।

रामलखन ने देखा कि पानी मनमाने ढंग से इधर-उधर बहता

जा रहा है। इतना पानी अगर ठीक ढंग से काम में लाया गया होता तो कम-से-कम एक पाँत खेत की सिंचाई हो गयी होती। उसे बहुत क्रोध मालूम हुआ। किसान और सब कुछ बरदाश्त कर सके तो कर सके, किन्तु अपनी खेती में ज़रा भी ढिलाई और उपेक्षा नहीं सह सकता। करमू की इस ढिलाई पर उसे बहुत क्रोध आया। गरज़ कर बोला :

'क्यों बे करमुआ, तू गप्पें मार रहा है और सारा पानी बहकर बर्बाद हो गया। अपना होता, तो दरद होता।'

करमू खुद महसूस कर रहा था कि बड़ी गलती हो गयी और इस लिए खेत की मेंड़ जल्दी-जल्दी बनाने लगा ताकि बहते हुए पानी को रोक सके। सर झुका कर काम करता रहा। बोला कुछ नहीं।

रामलखन को उसकी चुप्पी में गुस्ताखी महसूस हुई। उन्हें ऐसा बोध हुआ, जैसे यह अपमान करने की भावना, और उपेक्षा से ही ऐसा कर रहा हो। गरज कर बोले :

'मैं तुझ से पूछता हूँ, तेरा काम करने का मन है कि नहीं। तीन पुश्त से तेरे जैसे हरामखोर को पाल पोस रहा हूँ, फिर भी तुम लोगों की नसों से हरामखोरी गई नहीं, आखिर चमारों की जाति ठहरी ना; रोज जब तक दस लात न लगाई जाँय तब तक अक्ल ठिकाने नहीं आती।'

करमू को लगा कि उसका कसूर कोई इतना बड़ा नहीं है जिसके लिए तीन पुश्तों की लानत-मलामत की जाय। थोड़ा सा पानी बह गया, वह भी दूसरे के खेत में तो गया नहीं। रोज जी लगा कर काम करता है, एक दिन थोड़ी गलती हो गयी, उसके लिए यह जान खाये जाते हैं। अपने हृदय के उमड़ते हुए क्रोध को दबा कर दबी जबान में बोला :

'तिवारी, आप ऐसी बात क्यों कर रहे हैं? नमकहरामी और कोई करता होगा। यहाँ तो जो हाथ उठा कर दे दिया, उसे हाथ बढ़ाकर ले

लिया। दूसरों का सोना मिट्टी समझता हूँ। सुबह से शाम तक अपना समझ कर काम करता हूँ। फिर भी आप की नज़रों में कुछ जंचता ही नहीं। खून पसीना करके बहा देता हूँ, तब सेर भर मजदूरी मिल पाती है। हराम की खाने वाला कोई दूसरा होगा।

करमू का स्वर धीरे-धीरे कुछ ऊँचा हो गया। इससे तिवारी को स्पष्ट मालूम हुआ कि यह उनकी बातें काट रहा है। कड़क कर बोले :

'सच्ची बात तो तुझे ज़हर की तरह लगती है और ऊपर से जबानदराजी करता है। दूसरे किसी के यहाँ काम करता तो पता लगता कि इसका नतीजा क्या होता है। दस जूते लगाता और निकाल बाहर करता।'

तिवारी की इन बातों से करमू को कुछ क्रोध आ गया। खासकर उसकी स्त्री वहाँ खड़ी थी। अभी जिसके सामने उसने कहा था कि क्यों कोई लानत मलामत करेगा ? अभी कुछ देर पहिले उसकी नज़रों में अपनेपन की भावना का जो नक्शा आया था, उसका असर उसके मस्तिष्क में मौजूद था। और कोई दिन रहा होता तो उसका ध्यान भी इन बातों की ओर नहीं जाता। अभी कल की ही तो बात है, तिवारी ने उसकी स्त्री को गाली दी और एक लाठी भी चला दी। उस समय करमू अपनी औरत को ही डाँटता रहा, तिवारी के हाथ पैर जोड़ता रहा, परन्तु आज तो जैसे उसका मन बदल गया था। उसे लगा कि यह तिवारी का अन्धेर है, जब होता है मौके-बे-मौके गाली-मार शुरू कर देते हैं। और भी तो काम कराने वाले हैं और काम करने वाले भी। सभी मजदूर मौका देखकर खेत से सामान उठा ले जाते हैं। मालिक की आँख के सामने तो ऐसा छाती-फाड़कर काम करते हैं कि जैसे अपना ही काम हो। जहाँ मालिक की पीठ फिरी नहीं कि बैठ रहते हैं। एक वह भी है कि कभी कोई चीज़ छुई तक नहीं, काम से कभी मुँह नहीं मोड़ा। दिन रात एक किए रहता

है। क्या कोई अपना काम भी इतनी मेहनत ; मशक्कत से करेगा ; किन्तु तब भी इसका मुंह सीधा होता ही नहीं। झल्लाकर उसने कहा :

'तो ले लो अपना राज पाट। जब अपनी मेहनत की ही कमाई खानी है तो यहाँ न सही, कहीं और मिलेगी। रोज-रोज की यह गाली मार अब नहीं सही जाती।'

जगनी ने देखा कि यह क्या-से-क्या हुआ जा रहा है। उसको तिवारी का कोई दोष नहीं मालूम हुआ। करमू पर ही उसे गुस्सा आ रहा था। आज इन्हें यह क्या हो गया ? बोली :

'मालिक-देवता के मुँह लगते हो। जिसका दिया खाते हैं वह दो चार गाली भी दे देगा तो हम कोई छोटे हो जायेंगे ?'

फिर रामलखन से बोली :

'मालिक, जाने दो। इनका दिमाग आज खराब हो गया है।'

करमू अपनी स्त्री की बातें सुनकर बोला :

'तू चुप रह। रोज-रोज की गाली-मार अब नहीं सहा जायगा। कोई देह बेच दिया है क्या ?'

झगड़े की आवाज सुनकर कूएं पर से दौड़ा हुआ, करमू का बाप मोलई आ गया। उसके शरीर में दम नहीं था। फिर भी वह जैसे बद-होशी में दौड़ा हुआ आया हो। वह जानता था कि उसका बेटा उतना पित्तामारू अभी नहीं हुआ जितना कि होना चाहिए। गृहस्थों के यहाँ काम करने के लिए लात जूता सहने के लिए तो तैयार ही रहना चाहिए आखिर अपना पूर्व जन्म का कर्म ही न बिगड़ा होता तो भगवान् नीच-घर में पैदा क्यों करता और दाने-दाने को मुहताज क्यों बनाता ? उसकी सारी उम्र इसी में बीती थी। मालिक जब नाराज़ हो, सर झुका कर दो लात घूंसे सह लेना चाहिए। अपने लड़के को झिड़क कर उसने कहा :

'जाने दो मालिक, लड़का है भुझे मार लो, जबान खोलूं तो चमड़ी उधेड़ लेना।'

किन्तु रामलखन का क्रोध जगनी और मोलई की नम्र बातों से शान्त नहीं हुआ। बीच-बीच में करमू बोल बैठता था।

कोध से काँपते हुए उन्होंने कहा :

'नहीं, अब रहने दो बगुला-भगती। हराम की खाते-खाते तुम लोगों की चर्बी बढ़ गई है, अब दूसरा घर देखो। हमारे यहाँ बाबू लोगों की गुज़र नहीं है। तीन पुश्त तक पाल-पोस कर बड़ा कर दिया। अब तो पर निकलेंगे ही।'

मोलई रामलखन का पैर पकड़ने लगा : माफ करदो तिवारी बाबू, लड़का है। उसे क्या मेरा न कलेजा पानी होगा। आप मालिक हैं? आप माफ़ न करोगे तो कौन करेगा?'

परन्तु रामलखन ने कुछ सुना नहीं। तीनों को काम से अलग कर दिया और धमकी देते हुए कहा :

आना अब अगवार लेने के लिए। अपने हल बैल से जोत बो कर अनाज तुम्हारे यहाँ पहुँचा दिया जाता था, उससे और भी मोटई आ गई थी। अब लेना उसे।

मोलई ने समझ लिया कि जो दस बिस्सा खेत अगवार के तौर पर उन्होंने दिया है जिसे अपने अनाज से उसने बोया है, अब उसका अनाज भी उसे नहीं मिलेगा, क्योंकि खेत तो तिवारी का ही था। हल जोतने के ऐवज़ में, अन्य मजदूरों की तरह, उसे भी तिवारी की ओर से दस बिस्सा खेत मिला हुआ था।

: २ :

रामलखन के यहाँ से काम पर से अलग हुए करमू को पन्द्रह बीस दिन बीत चुके थे। इस बीच में उसे आठ दस दिन बुखार आया। दो दिन से बुखार छूट गया था, पर उसके मुँह में एक दाना भी अन्न नहीं गया था। उसका बाप मोलई बहुत बूढ़ा हो चुका था। घड़ी-दो-घड़ी के लिए कहीं मज़दूरी कर ले, यह बात अलग, किन्तु दिन भर

मज़दूरी करने का उसका दम नहीं रह गया था। फिर बूढ़ आदमी को कौन मज़दूरी पर रखता है। हर वक्त खों-खों करता और काम धाम कुछ नहीं कर पाता। इसलिए जब से करमू का तिवारी के यहाँ से काम छूटा था घर में दो दाने भी नहीं आ पाये थे। हाथ में और कुछ था नहीं। केवल उनकी मज़दूरी का बल था : तीन चार सूअर थे, किन्तु उनकी आमदनी तो तब हो जब वे बिकें।

बथुए का साग घोंट कर जगनी किसी तरह पेट चलाती रही। बूढ़ा मोलई किसी के यहाँ थोड़ा बहुत काम कर लेता और एक जून खाना पा जाता। करमू बीमार था। दवा-दारू का तो कुछ प्रबन्ध हो नही सका। न घर में कुछ रखा था, जिसे बेचकर कुछ अन्न पानी ला सके।

मुश्किल से ४५, २० घरों की बस्ती थी। इस पुरवे में रहने वाले सभी, जात के चमार थे। अधिकतर घर फूस के थे। केवल एक दो घर ही खपड़े के थे, जिनके घर वाले रेलवे मे कुलीगीरी, और पैंटमैनी आदि के काम करते थे। अन्य लोग गृहस्थ किसानों के यहाँ हलवाहे थे। उनकी स्त्रियाँ भी उन्ही के यहाँ गोबर-पानी का काम करती; मिट्टी वगैरह लगाती और इसी तरह के दूसरे छोटे-मोटे काम करतीं। कटनी के दिनों में कटनी करती और खेतों में सिचाई के मौके पर मज़दूरी करती। बच्चे किसानों के गाय बैल चराते।

घड़ी भर दिन चढ़ आया था। पुरवे के सभी मर्द और औरतें अपने मालिक के यहाँ काम पर चले गये थे। खेतों में भराई का काम जोरों पर था। खलिहान में अभी तक धान के पैर पड़े थे, ताकि भराई का काम खतम हो जाय तो दाने निकाले जायँ। उसके बाद गन्ने की पिराई शुरू होगी। इस समय गाँव के सभी आदमी, गृहस्थ और खेतिहार मजदूर, खेतों और खलिहानों के काम में व्यस्त थे। हर आदमी साल के शुरू की जुताई के दिनों में किसी-न किसी गृहस्थ का घर पकड़ लेता था। यह सम्बन्ध फसल बोने से लेकर

खेत में खलिहान से अनाज ढुलकर आ जाने तक का होता। इस बीच में किसान, मजदूरों को काम पर से नहीं छुड़ाते थे और न कोई हलवाहा बीच में छोड़ कर बैठ ही सकता था। किसानों और हलवाहों का यह सम्बन्ध एक परम्परा के रूप में चल पड़ा था। इसका उल्लंघन बहुत कम होता था। जवान आदमी हल जोतते और उनकी स्त्री गोबर पानी का काम करतीं और लड़के-लड़कियाँ गाय भैंस चराती तथा इसी तरह के छोटे-मोटे काम करतीं। गरज कि सभी आदमी, औरतें और बच्चे इस समय खेतों पर रहते, खलिहान में रहते। घर पर बीमार और बूढ़े ही रह जाते।

करमू बीमारी से उठकर ढीली बँसहटी चारपाई पर, दीवाल के सहारे उठकर बैठ गया। उसकी स्त्री सर झुकाये बैठी थी। अब तिवारी के घर से उसका गोबर-पानी का काम भी छूट चुका था। और कहीं काम-धाम वह कर नहीं पाती थी। उसे बच्चा होने वाला था, और वह भी समय पूरा हो चला था। इसलिए मेहनत का काम कर नहीं सकती थी।

सूनी सूनी खोई आँखों से करमू देख रहा था। गाँव इस समय एक दम सूना लग रहा था। उसकी आँखों के सामने दूर-दूर तक खेत फैले हुए थे, जिनमें हरी-भरी फसलें खड़ी थीं। कुछ दूर पर तिवारी का खेत था। पास के कूंए पर वे पूर चला रहे थे। करमू को और उसके घर वालों को हटा कर उन्होंने दूसरा आदमी रख लिया था। उन खेतों को देखकर करमू के मन में एक मोह पैदा हो रहा था। उसी ने तो ये खेत बीजे थे। अभी दस दिन पहले तक उसका उन पर हक़ था। कहने को अपना न था, फिर भी तो उसके मालिक का था। अपने संगी-साथियों में जब बात चलती तो वह कह बैठता था कि इस वर्ष हमरी फसल बहुत अच्छी है, बहुत मेहनत की है, किन्तु आज उसका नाम-मात्र अधिकार भी उस पर नहीं था। आज वह इस खयाली आनन्द को भी नहीं उठा सकता था। उसके मन को एक ठेस लगी और उधर से

नज़र उठा कर उसने जगनी पर डाली। गुम-सुम मन मारे जगनी बैठी थी। करमू ने उसे देखकर कहा :

'तू क्यों मन मारे बैठी है ? भगवान् की जो मरजी होगी, होगा। सोच-विचार करने से क्या होगा ? कौन अकेले आफत-विपत हमी लोगों पर आई है ? सारे देश दुनिया की हालत तो हमी की सी है। जैसे सबका, वैसे अपना।"

करमू कई दिनों की बीमारी के बाद उठा था। घर में दो दाने भी नहीं थे कि उसे पकाकर जूस दिया जाय। बथुआ का साग आखिर कैसे अकेले देती। जगनी को अपनी चिन्ता उतनी नहीं थी। उसका क्या ? स्त्री मानुस है। तकलीफ-दुख तो औरतों की क़िस्मत में लिखकर ही आता है। पर उमका मर्द आज दो अठवारे की बीमारी से उठा है। उसे जूस तक देने के लिए घर में दाने नहीं। जब पेट में दो दाने तक नहीं जायेंगे तो वह कैसे उठ कर खड़ा होगा। रूँआसे स्वर में बोली :

'चिन्ता की बात नहीं तो क्या ? आज बीमारी से उठे हो। घर में एक दाना अन्न भी नहीं जिसका जूस बनाकर दूँ। तुम उठकर खड़े हो जाओ और किसी का काम थाम लो। फिर मुझे किस बात की चिन्ता है। मुझे राजपाट की भूख नहीं। बस तुम उठकर खड़े हो जाओ। जी-जाँगर से अच्छे रहो, यही मेरे लिए सब कुछ है। हाथी सा तुम्हारा शरीर गल गया और अब मुँह में डालने के लिए कुछ भी नहीं।'

'करमू ने कहा, कुछ नहीं। वह जानता था कि अगर ढाढ़स बंधाने की कोई बात कहेगा तो जगनी अभीं रो पड़ेगी। वह खूब जानता है कि उसकी औरत, हज़ार औरतों में एक है। सुख में भले ही दो गाल लड़ाले, मुँह फुला ले, पर जहाँ उसे दुख तकलीफ में देखती है, अपनी जान देकर भी दुख तकलीफ हरने की कोशिश करती है। और एक दूसरों की औरतें हैं जो सोलहों घड़ी और तीसों दिन रौला मचाये रहती हैं। उनका वश चले तो अपने मरदों को बेचकर खा जायें। बात-बात पर ताने मारती रहती हैं। जरा सी आँच आई नहीं कि एक छोड़कर दूसरे

के यहाँ जा बैठती हैं और एक यह बेचारी है।

उसका मन अपनी स्त्री जगनी के प्रति जैसे भर उठा। उस कमजोरी की हालत मे भी उसके मन की भावना प्रबल हो उठी कि अगर उसका वश चले तो इस सती-साध्वी को दुनियाँ की रानी बनादे। यह तो कोई देवी है, पूर्वजन्म की किसी चूक से मनुष्य योनि मे आगई। मेरा बडा भाग था कि ऐसी स्त्री से गठबन्धन हुआ। किसी खदम्मर से पाला पड गया होता तो दिन मे तारे दीखते रहते।

सन्तोष बंधाने के लिए कहा :

'क्यों इतनी गलान करती है ? क्या हुआ है मुझे ! बुखार-ज्वर तो छूट ही गया। जूस आज नही मिला तो क्या ? भगवान् कोई न कोई अवलम्ब देगा। बापू गए है, शायद कही मे कुछ लाय। हाथ-पैर चलने से एक का दो दे देगे।'

जगनी ! 'रोना तो यही है कि आज हम पर पडी है तो सबने आँखे फेर ली हैं। अपने पास रहता है तो किसी को खाली हाथ लौटने नही देती।'

फिर कुछ गुन कर बोली !

'वह जो सेवका की परानी है न, बेटा स्टेशन पर दो पैसा मजूरी करने लगा तो गुमान ही नही मिलता। जी नही माना, सोचा तुम्हारे लिए कुछ चावल माँग लाऊँ। कई-कई बार मैने दिया है। उसके लडके की बीमारी मे अपने घर से उठाकर सेर भर तक पुराना चावल दे दिया था। फिर उसने देने का नाम भी नही लिया और न मैने कभी माँगा। आज सवेरे चली गई थी कि पाव भर चावल दे दो तो मुँह बनाकर बोली · 'तुम लोगो को कौन दे ? लेकर देने का नाम नही जानते। बेटबा आज घर आने वाला है। बिना भात के उसका पेट ही नही भरता। जी मे तो आया कि कहूँ कुछ खैरात माँगने नही आई हूँ। ले रही हूँ तो देना भी जानती हूँ, हाथ मे आते ही लौटा दूँगी। और तिस पर आज वे दिन भूल गये जब छिछियाई फिरती थी। अभी

कौन जुग दो जुग की बात है। पारसाल ही तो दो सेर चावल उठाकर दे दिया था। आज हम परं दुर्दिन आ गया, काम-धाम छूट गया और अपना मर्द बीमार पड़ गया, नहीं तो हमें तो देने की आदत है, लेने की नहीं। पर अपना दुर्दिन देखकर चुप लगा गई। कुछ बोली नहीं। उठकर चली आई।

कुछ देर तक जगनी खोई सी रही। अपने मन में वह गुन रही थी कि कहाँ से पाव भर अन्न मिले, जिसमे दो दिन जूस-पानी मिल जाय तो ये उठ कर खड़े हो जायें। फिर भगवान् ने इन्हे अथक जाँगर दिया है। किसी-न-किसी का काम-धाम थाम ही लेंगे। कुछ न होगा तो स्टेशन पर जाकर कुली कबाड़ी का ही काम कर लेंगे। शहर बनारस जाकर कोई काम पकड़ लेंगे। मगर इस समय मुंह में दो दाने तो जायें। शरीर में कुछ ताकत आ जाये तो फिर देश-विदेश में कोई काम मिल ही जायेगा। कौन किसो की किस्मत को बाँध कर रखे हुए हैं।'

कुछ सोचकर उसने डरते-डरते कहा :

'यदि तुम कहो तो तिवारी की बखरी में जाऊँ, मालकिन से कुछ माँग लाऊँ।

तिवारी का नाम सुनते ही करमू ने सर उठाया, जैसे किसी ने जलती लड़की से उसे छू दिया हो। कहा ! अभी तेरा मन भरा नहीं। अब उनके यहाँ अपनी भलाई नहीं। मर-खप कर हमने उनके यहाँ काम किया, जब फसल हुई, दो दाने मिलने के दिन आये तो बीच साल में ही काम पर से हटा दिया और दूसरे को रख लिया। उनके मन में अब ईमान नहीं रह गया है। बड़े आदमी हैं तो क्या ?'

जगनी कुछ बोली नहीं किन्तु उसके मन में बार-बार उठ रहा था कि तीन पुश्त उनके यहाँ गल गया। हमारे मरद की मेहनत से ही उनका घर अनाज से सदा भरा रहता है। आज जब बिना कसूर के हटा दिया तो क्या इस मुसीबत में पाव भर अनाज नहीं देंगे ? और दो दाने दे देंगे तो कौन बड़ा अहसान कर देंगे।

चुपचाप जगनी वहाँ से उठ गई। वह चाहती थी कि तिवारी के यहाँ जाय, पर करमू से छिपकर। उसकी भावना को वह ठेस पहुँचाना नहीं चाहती थी। वहाँ से उठकर वह तिवारी के घर गई। उसकी मालकिन घर में नही थी। पास पड़ोस में कहीं गयी थी। कुछ देर तक दरवाजे पर खड़ी रही, जैसे कुछ हैस-बैस में हो। उसके मन में एक क्षीण विचार आकर जैसे झाँक जाता हो। अगर उसका मर्द उसे यहाँ तिवारी के दरवाजे पर खड़ा हुआ देख ले तो! उसे कितना दुख होगा। कुछ सोच-समझ कर ही तो उसने मना किया था। आखिर मर्द मानुस है; जिसके यहाँ से हट गये फिर उसके दरवाजे पर हाथ फैलाने क्यों जावें? जब काम करते थे तो अदल मजूरी लेते थे। पर जब उनका काम ही नहीं करते तो किस मुँह से उनसे माँगने जायँ, यही सोचकर तो उन्होंने आने के लिए मना किया था।

जगनी के मन में एक विचार और जैसे उठकर उसके हृदय को कुरेद रहा था। कभी यह घर अपना था। अधिकार के साथ यहाँ आते थे। लड़-झगड़ भी लेते थे। बनी-मजूरी में कमी होती थी तो अड़ जाते थे। परन्तु आज वह हीन भावना से वहाँ खड़ी है।

जगनी खाली हाथों घर लौटी। रास्ते में तिवारी के धान का खलिहान पड़ता था। जगती का मन जैसे मोह से भर गया, यह वही धान है, जिसे उसने अपने हाथ से असाढ़ के पहले पानी में बीजने के लिए छाँटा था। जिसे कुछ बड़ा होने पर ताल के खेत में उसने रोका लगाया था। जिसे उसने अपने हाथों से अपने मर्द और ससुर के साथ काटा था। आज वही धान खलिहान में पड़ा था। पर आज उसका उस पर कुछ भी अधिकार नहीं। अगर उसका मर्द जान-तोड़ कर काम न किये होता तब देखती कि कैसे इतना अन्न होता। कैसे तिवारी का खलिहान आज सब से ऊँचा होता। यह सब कमाई उसके मर्द के दम-बूते पर पैदा हुई है। इस अनाज का एक-एक दाना उसके मर्द के पसीने से तैयार हुआ है और आज उसका वही मर्द बीमारी से उठा है तो जूस देने के

लिए उसके पास मुट्ठी भर चावल नहीं।

जगनी चुपचाप कुछ क्षणों तक वहाँ खड़ी रही। सतृष्ण नजरों से वह धान के खलिहान को देखती रही। उसके मन में नाना प्रकार के भाव उठ रहे थे। उसने इधर-उधर देखा, कोई दिखाई नहीं दिया और सहसा जैसे बदहवासी में दोनों हाथों से धान की बालों में से दाने निकालकर अपने आँचल में वह भरने लगी। पूरा आँचल भर गया, कोई चार-पाँच सेर धान उसके आँचल में रहा होगा, उसके मन में हुआ कि बहुत हो गया। फिर सोचा कि दो मुट्ठी और ले ले, तब तक पूरी ताकत से एक लात उसकी पीठ पर पड़ी, वह उलटकर मुँह के बल जमीन पर गिर गई।

आँखें उठाकर उसने देखा, विकराल मूर्ति बने क्रोध से गालियाँ देते तिवारी लात-पैरों से उसे रौंद रहे हैं। फिर हाथ की लाठी से पूरा एक प्रहार किया। वह बेहोश हो गयी। उसके मुँह से खून बहने लगा। तिवारी गरज रहे थे :

सौ दिन की चोरी आज पकड़ में आई है, बुलाओ चौकीदार को! सब सालों को हथकड़ी न पहनवा दूँ तो मेरा नाम भी तिवारी नहीं!

: ३ :

इस घटना को घटे महीना भर बीत गया। जगनी को तिवारी ने जो पीटा था, उससे उसका पेट गिर गया। चोट ठीक पेट में लगी थी, रो-धोकर वह चुप हो गयी। थानेदार ने तिवारी से पाँच सौ रुपये पाकर मामला दबा दिया, करमू मन मारकर रह गया। कोई उसका अपना नहीं था, जो उसके लिए कुछ कर सकता। उसकी बिरादरी में भी कुछ लोग उससे नाराज़ रहते थे। इसका कारण यह था कि कभी भी अपनी बिरादरी के नवयुवकों से उसका मेल नहीं बैठा। उसमें न तो कोई लत थी, न कोई बान; जहाँ तक उसका बस चलता, ईमानदारी

कौन जुग दो जुग की बात है। पारसाल ही तो दो सेर चावल उठाकर दे दिया था। आज हम परं दुर्दिन आ गया, काम-धाम छूट गया और अपना मर्द बीमार पड़ गया, नही तो हमें तो देने की आदत है, लेने की नही। पर अपना दुर्दिन देखकर चुप लगा गई। कुछ बोली नहीं। उठ-कर चली आई।

कुछ देर तक जगनी खोई सी रही। अपने मन में वह गुन रही थी कि कहाँ से पाव भर अन्न मिले, जिसमे दो दिन जूस-पानी मिल जाय तो ये उठ कर खड़े हो जायें। फिर भगवान् ने इन्हे अथक जाँगर दिया है। किसी-न-किसी का काम-धाम थाम ही लेंगे। कुछ न होगा तो स्टेशन पर जाकर कुली कबाड़ी का ही काम कर लेंगे। शहर बनारस जाकर कोई काम पकड़ लेंगे। मगर इस समय मुंह में दो दाने तो जायें। शरीर में कुछ ताकत आ जाये तो फिर देश-विदेश में कोई काम मिल ही जायेगा। कौन किसो की किस्मत को बाँध कर रखे हुए हैं।'

कुछ सोचकर उसने डरते-डरते कहा :

'यदि तुम कहो तो तिवारी की बखरी मे जाऊँ, मालकिन से कुछ माँग लाऊँ।

तिवारी का नाम सुनते ही करमू ने सर उठाया, जैसे किसी ने जलती लड़की से उसे छू दिया हो। कहा ! अभी तेरा मन भरा नहीं। अब उनके यहाँ अपनी भलाई नहीं। मर-खप कर हमने उनके यहाँ काम किया, जब फसल हुई, दो दाने मिलने के दिन आये तो बीच साल में ही काम पर से हटा दिया और दूसरे को रख लिया। उनके मन में अब ईमान नहीं रह गया है। बडे आदमी हैं तो क्या ?'

जगनी कुछ बोली नही किन्तु उसके मन मे बार-बार उठ रहा था कि तीन पुश्त उनके यहाँ गल गया। हमारे मरद की मेहनत से ही उनका घर अनाज से सदा भरा रहता है। आज जब बिना कसूर के हटा दिया तो क्या इस मुसीबत में पाव भर अनाज नहीं देंगे ? और दो दाने दे देंगे तो कौन बड़ा अहसान कर देंगे।

सी भी चूक होगी, उसी दिन उसकी आँखों में सील-मुलाहिजा नहीं रह जायेगा। लात मारकर निकाल बाहर करेगा। तब तुम्हारी आँख खुलेंगी और तब हम भी तुम्हारा महात्मापन देखेंगे।

अन्य मज़दूरों में भी कुछ ऐसे ज़रूर थे जो करमू की तरह फूँक-फूँक कर क़दम रखते थे। ईमान और धर्म को पेट से बड़ा मानते थे, परन्तु ऐसे लोग वही थे जिनकी स्थिति प्रायः अन्य मज़दूरों से कुछ अच्छी थी, या बँधा बँधाया काम था। अन्य मज़दूरों के लिए न तो काम-धाम का कोई समुचित व्यवस्था रहती, न भविष्य की ही कोई व्यवस्था। दो-चार दिन कभी कोई काम मिल गया, सेर-दो सेर अनाज मज़दूरी से मिल गये और एक-दो जून में खा-पीकर बराबर, फिर वही आकाश-वृत्ति। ऐसी स्थिति में खाली पेट रहने पर मौका देखते ही खेत से फसल उखाड़ लेना या खलिहान से अनाज उठा लेना उनके लिए धर्म और नियम के विरुद्ध नहीं जान पड़ता था। पेट के आगे सोचने के लिए न उनके पास साधन था, न सुविधा!

अब जब बहुत मामूली-सी बात पर तिवारी ने उसे अपने यहाँ से निकाल दिया, उसकी बीमारी में उसे दुरदुरा दिया था और सेर भर अनाज के लिए उसकी स्त्री को इतनी बेरहमी से पीटा, कि उसका पेट गिर गया, और वह दाने-दाने के लिए मुहताज हो रहा था, उस समय उसके हमजोली बोली मारते :

'कहता था न, कि धर्मराज की औलाद मत बनो। पर सुनता ही नहीं था। बड़े सन्त महात्मा की तरह कहता था कि तीन पुश्त से जिनके यहाँ काम कर रहा हूँ, जिनका नमक खा रहा हूँ, उनका अपने देखते रत्ती भर भी नुकसान नहीं होने दूँगा; अरे, पहले ज़माने की बात दूसरी थी, तब लोगों की नज़रों में मेल-मुलाहिजा था। काम कराते थे, तो देना भी जानते थे। अब भोगो।'

करमू को अब सब कुछ सूना-सूना लगता। वह काम-काजू आदमी

था। बेकार वह बैठ नही सकता था। घर में कुछ खाने का ठिकाना था नहीं। आखिर आमदनी ही क्या? बीमारी से उठा था, काम वैसे भी नहीं मिल सकता था। ताकत रहती तो किसी के यहाँ गन्ने पेलने आदि के काम पर कुछ काम मिल भी जाता, पर बीमारी से उठा था। इस कमजोरी में कौन उसे रखता? जब शरीर में दम रहता, तब न काम करता। उसकी स्त्री जगनी, जब से उसका पेट गिरा, बीमार-बीमार चल रही थी, नहीं तो किसी के यहाँ गोबर-पानी का ही काम ढूँढ़ लेती। महीने भर में मटर की कटनी भी शुरू हो जायेगी, उसी में कुछ कमा लेती। पर वह भी अब नही हो सकता था।

करमू अपने घर के दरवाजे पर बैठ जाता। उसके सामने ही खेतों में लोग काम करते रहते। छोटे-छोटे बच्चे जब खेतों से आते तो कभी अपने साथ मटर, कभी एक-आध गन्ना, कभी चने का होला लाते। करमू की छोटी लड़की मचलकर रो पड़ती कि हमें भी चने का होला दो, हमें भी मटर की फलियाँ दो। करमू का दिल डूबने-सा लगता। उसे सपने में भी यह सम्भावना नहीं थी कि साल के बीच में वह काम से अलग कर दिया जायेगा।

उसकी स्त्री के लिए दवा-दारू की बात तो दूर, भर पेट दो समय अन्न की भी व्यवस्था नही थी। घर मे बेचने लायक कुछ बचा ही नही था। अभी करमू की बीमारी में ही, जो फूल का बड़ा लोटा था, उसे बेच कर उसके लिए जूस की व्यवस्था की थी। कर्ज़ उसे कोई क्यों देता? कर्ज़ भी तो उसे मिलता है, जिसके यहाँ से वसूल होने की सम्भावना रहती है। करमू के पास क्या था, केवल उसका अपना तन था, उस पर रोज़ाना की मज़दूरी वह कर सकता था, पर बीमारी से उसके शरीर में ताकत भी नही थी। इसलिए यह रास्ता भी उसके लिए बन्द था।

एक दिन करमू इसी तरह बैठा सोच रहा था, सोचते-सोचते उसके मन में कई बातें उठने लगीं। आखिरकार बैठना उसके लिए सह्य नहीं,

उठकर वह सिवाने में चला गया। उसका कोई अपना खेत तो था नहीं, जहाँ वह जाता। जिधर उसका मुँह उठ गया, चलता गया। खेतों में अब फसल तैयार हो रही थी। मटर की फलियों में कहीं-कहीं पीलापन आ गया था, उनके पत्ते कुछ पीले हो गये थे। यद्यपि ऊपर की फुनगी अभी हरी थी और कुछ फूल भी लगे थे। जौ और गेहूँ अभी हरे थे पर उनकी बालों मे दाने पड़ गये थे। उनके टूंड़ कड़े हो गये थे, देखने में बालें भी ठोस ठोस मालूम हो रही थीं। हवा के हलके झोंके से झुक-झुक जाती थी। करमू का बड़ा मोह हुआ। उसके मन में आया कि वह खेत में उतर जाय। अपनी दोनों भुजाओं में गेहूँ और जौ के पौधों को बच्चे की तरह भरले। उनकी बालों को हलका-हलका अपने गालों से स्पर्श करे। उसके मन में उस समय ऐसा स्नेह उमड़ रहा था जैसे कोई बाँझ स्त्री दूसरे के बच्चों की कलोल-भरी हँसी पर मुग्ध हो जाती है, उसकी तोतली बातों पर लोट-पोट हो जाती है, और उसके मन में प्रबल आकांक्षा होती है कि बच्चे को गोद में उठा ले। उसके मुँह को चुम्बनों से भर दे। उसके सर को सूँघे, उसके नरम-नरम कोमल हाथों को सहलाये, उसकी प्यारी-प्यारी भोली बातों से बहला-बहला कर बातें करती रह जाय। पर उसका साहस नही होता कि लपककर बच्चे को गोद में उठा ले। डर लगा रहता है कि अगर बच्चे की माँ देख लेगी तो झपटकर छीन लेगी। सोचेगी कि मैं निपूती उसके बच्चे पर कोई जादू-टोना कर रही हूं। और इन भावनाओं के वशीभूत वह मन मसोसकर रह जाती है। उसी तरह करमू खेत की मेंड़ पर मनमारे एक क्षण खड़ा रहा।

बेमन से धीरे-धीरे वह वहाँ से आगे बढ़ गया, आगे चौधरी खुशहाल सिंह का मटर का खेत था। उसमें बैठे हुए वह बैलों के लिए मटर उखाड़ रहे थे, करमू मेंड़ पर खड़ा हो गया और वहीं से हाथ उठा कर कहा :

"चौधरी काका, राम राम !"

चौधरी खुशहाल सिंह जाति के अहीर थे। पहले उनका नाम खुशहाल राम था। अब उन्होंने अपने को खुशहाल सिंह कर लिया था, बाप-दादों के ज़माने में चौधरी खुशहाल के पास कुछ भी जायदाद नहीं थी। उसके मुश्किल से एक-आध बीघे खेत रहा होगा, किन्तु अब चौधरी के यहाँ दो हल की खेती होती थी, दो-तीन भैंसें, गाय दरवाजे पर बँधी रहती थीं। दस गाँव में उनकी मान-जान थी, यह सब धन-दौलत, मान-जान अपने बलबूते पर उन्होंने पैदा की थी। उन्होंने कभी कोई नौकरी नहीं की, कोई वनिज-व्यवसाय नहीं किया। कोई गढ़ा धन उन्हें नहीं मिला, परन्तु फिर भी उनकी सम्पत्ति दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही थी। जाने कहाँ से लक्ष्मी उनके यहाँ चली आती थी, यद्यपि चौधरी खुशहाल की बहबूदीं का भेद सभी जानते थे; किन्तु मुँह पर कोई बात नहीं कह सकता था। कहीं किसी के बैल खूँटे पर से चोरी हो जायें, लोग चौधरी के पास दौड़े आते। कहीं किसी से कोई मार दुश्मनी हो जाती, लोग चौधरी के पास जाते, चौधरी के पास जैसे कोई मन्त्र सिद्ध हो। चोरी गया बैल वापस मिल जाता, आकर उसके खूँटे पर बँधा मिलता या सिवाने में चरता मिलता। चोरी गया धन, पूरा नहीं तो कुछ न कुछ मिल ही जाता। यह बात ज़रूर थी कि खोज-खबर लाने में चौधरी को मेहनत करनी पड़ती थी और उसका मूल्य मिलना उन्हें अनिवार्य था। इलाके के थानेदार चौधरी के दोस्त थे, कोई भी आता हिन्दू, मुसलमान, बिना चौधरी की दोस्ती रखे उसकी थानेदारी चल नहीं पाती और थानेदारी चलने का मतलब है जब महीने में हज़ार-पाँच सौ की रक़म थानेदार की जेब में पहुँच जाना। तनख्वाह के सौ सवासौ रुपये से क्या होता है? कचहरी के वकील, मुख्त्यार, मुन्शी, पेशकार सभी उनके परिचित थे। सभी से उनका साबका पड़ता था। उनका अपना काम तो क्या था, दूसरों के मुकदमों की पैरवी में उन्हें कचहरी जाना पड़ता था। लोगों का छिपे तौर पर कहना तो यह था कि जितनी भी चोरियाँ, दस-पाँच गाँव में होती हैं, चौधरी के

इशारे पर होती हैं। जितने भी बैल-भैंस खोल लिये जाते हैं, वे चौधरी की जानकारी से ही होते हैं। हालांकि स्वयं वे कभी इन कामों में नहीं जाते। वे होशियार आदमी थे, इसलिए उनके दल के लोग ही इन कामों को करते थे। हाँ जो कुछ होता, सब चौधरी की जानकारी से ही होता। दस आदमियों का जोर चौधरी को था, ऐसे लोगों की बैठक उन्हीं के यहाँ रहती।

करमू का 'राम-राम' सुनकर चौधरी ने सर उठाया। राम-राम का जवाब दिया और सहानुभूति के स्वर में कहा :

"तुम तो बिलकुल सूख गये। पहचाने ी नही जाते।"

करमू ने उत्तर दिया :

"क्या करें चौधरी काका, काम-धाम छूट गया। बीमारी अलग खाये जाती है, तुमसे क्या छिपा है, हम लोग मज़दूर आदमी ठहरे। जब कहीं काम रहेगा, तभी तो पेट भरेगा। जगनी का जब से पेट गिरा, वह भी बीमार-बीमार होती चली जा रही है। बापू का बिरधापन जा गया उनसे कुछ हो ही नही सकता। ऐसी हालत मे मै न सूखूँगा तो कौन सूखेगा ?"

चौधरी ने कहा : "तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया। काम-धाम छुटा दिया। तुम्हारी स्त्री को इतना पीटा कि बेचारी मरते-मरते बची। और अभी क्या ठिकाना है ? मै तुमको बताऊँ, तिवारी बडा ऐंठू खाँ बनता है। किसी सवा सेर से पाला पड़ जायेगा, तब छटी का दूध याद आ जायेगा।"

करमू का मन तिवारी के प्रति क्रोध से भरा था। उसने कहा :

"चौधरी काका, तुम तो सब देख-सुन रहे हो। मार-मार कर हमारी घरवाली को बेहाल कर दिया। काम-धाम अलग छुटा दिया और अब कहते हैं कि किसी के यहाँ काम भी नही करने देंगे। कौन है जो उनकी चलते काम पर रखले। सुनकर मन मारकर बैठ जाता हूँ। अपना कोई पुरसाहाल नहीं। हमारी पीठ पर कोई है नहीं, तब न ऐसा कहते हैं :

अपना भी कोई साथी होता तो आज कैसे वे इस तरह हमारा जीना मुहाल कर देते ?"

चौधरी ने एक अर्थ भरी नज़र करमू पर डाली, जैसे मन मे कुछ तौल रहे हों; कहा :

"तीन पुश्त से तुम्हारा घर उनके यहाँ मर-खप रहा है। तुम लोगों का घर ऐसा रहा है, जिसने सचाई ईमान से धरमराज को भी मात कर दिया है। तुम्हारी माँ जब मरी थी, तब उसके क्रिया-करम के लिए कुछ रुपये तुम्हारे बाप ने उनसे उधार लिया था। जिसका एक का दो जोड़ कर उन्होंने वसूल किया। यह तो तिवारी की नीयत और ईमान है। और एक तुम लोग हो कि इतना खेत-खलिहान यहाँ रहता है, परन्तु आज तक कभी यह सुनने मे नही आया कि तुम लोगों ने बिना दिये कुछ छुआ हो। इसका फल तुम लोगों को क्या मिला ? ठोकर मार कर निकाल दिया। इसी मे तो मैं कहता हू कि जैसे के साथ तैसा करने से ही ठीक रहता है। लोहे पर जब हथौड़ा पड़ता है तभी वह मुड़ता है।'

चौधरी के लिए करमू की नजरों मे कभी आदर का भाव नही था। उलटे वह चौधरी से मन-ही-मन घृणा करता था। उसके कुकृत्यों से चोरी-चमारी से, लूट-खसोट से, वह चौधरी को आदमी नही शैतान समझता था। ऊपर से तो वह कुछ कह नही सकता था। बड़-बड़े लोग तक चौधरी के खिलाफ मुहं खोलकर कुछ नही कह सकते थे। कौन नाहक ऐसे आदमी से बैर बिसाहे। फिर करमू की तो बिसात ही क्या थी ? वह कैसे कुछ कह सकता था ? किन्तु भीतर-ही-भीतर वह चौधरी का मुँह तक देखना पाप समझता था। किन्तु आज उसके मन में दूसरी ही भावना काम कर रही थी। चौधरी की बाते सुनकर करमू को लगा कि चौधरी खुशहाल सिंह से बढ़कर कोई उसका हितू नही है। उसे मन में पश्चाताप हुआ कि अभी तक वह चौधरी को इतना बुरा आदमी क्यों समझता रहा है ? आखिर चौधरी ने उसके साथ क्या बुराई की है ? जब कभी 'राम-राम' किया, हाथ

उठाकर जबाब दिया। ऊपर से कुशल-मंगल पूछ लिया। अपने साथ तो उन्होंने कोई काम नहीं किया। रही बात दूसरों के साथ, तो कोई किसी के साथ बुराई करेगा, उसके साथ बुराई करना कहाँ का गुनाह है। और कौन चौधरी ने ही यह काम किया? कोई कुछ करता है, कोई कुछ। कोई किसी तरह किसी को दबाता है और कोई किसी तरह। दूध का धोया भी तो कोई नहीं है। हमारे लिए तो हमारे साथ जो प्रेम से बोले, वही अपना, वैसे कौन किसी की कोई खर्ची चला देता है। कहा :

"चौधरी काका, हमें तो कुछ सूझता ही नहीं। तर घरी न ऊपर तरी। कहाँ ठौर-ठिकाना लगेगा और कैसे यह पेट चलेगा, कुछ सूझता ही नहीं। घर में दो प्राणी और हैं। हमें तो कोई अवलम्ब-आसरा नहीं दिखाई देता। अब तुम्हीं बताओ।"

चौधरी ने कुछ देर तक गौर से करमू को देखा, फिर बोले :

"तो आज सध्या को हमारे यहाँ आ जाना। न हो तो हमारे यहाँ गन्ने की पेराई में लग जाना।"

: ४ :

करमू जब चौधरी खुशहाल सिंह के यहाँ से चला, तब उसके मन में विचारों की शृंखला उठ रही थी। रेतीले तट पर जैसे पानी की लहरें आयें और क्षण भर के लिए बालुकामय किनारे पर पानी की एक लकीर खिच जाय; किन्तु वैसे ही दूसरे क्षण उसका निशान तक न रहे, और फिर दूसरी लहर का वेग आये। करमू के मन में इसी तरह एक के बाद एक विचार उठ रहे थे, किन्तु क्षण भर से ज्यादा नही टिकते थे। चौधरी खुशहालसिंह ने यद्यपि उससे साफ़ कुछ नहीं कहा था और न तो करमू ने ही कुछ खास बात खोलकर कही, किन्तु चौधरी खुशहाल सिंह के आश्वासन और भरोसा बँधाने का आधार क्या है? उसका मूल्य क्या है; यह उस से छिपा नही था। वह अच्छी तरह

जानता था कि चौधरी खुशहाल सिंह को तिवारी रामलखन फूटी आँखों नहीं भाते। खुशहाल सिंह ने कई-कई बार रामलखन तिवारी का खलिहान फूँकने की कोशिश की। खेत से फसल काटने की कोशिश की पर करमू की सतर्कता से उसका मनोरथ पूरा नहीं हो पाता था। इसलिए करमू के मिल जाने से उन्हें खुशी हुई थी। ताक़त तो उसके पास काफ़ी थी, परन्तु जब तक भीतरी भेद न मिले, घर से चोरी वगैरह नहीं कराई जा सकती। दूसरे खेत खलिहान भी करमू की सतर्कता के कारण सदा चौकसी से रखे जाते थे। करमू तिवारी की खेतीबारी की इस तरह देख-भाल करता था जैसे ढलती उम्र में सन्तान पाने वाले दम्पति अपनी सन्तान की देख-भाल करते हैं। उसी की नींद जागते हैं। इसी तरह करमू की आशा तिवारी की खेतीबारी की ओर थी। उसके मन में कभी भूलकर भी यह ख्याल नहीं आया था कि वह किसी दूसरे के सामान की रखवाली कर रहा है। कितने लोगों ने, कितनी तरह से उसे भुलावा दिया, प्रलोभन दिया; यहाँ तक कि उसे छिपी धमकी भी दी, पर करमू टस-से-मस नहीं हुआ। और फलतः तिवारी का पत्ता भी नुकसान नहीं हो पाता था।

करमू आज इन बातों को खूब समझ रहा था। चौधरी की इस सहानुभूति का अर्थ जैसे उसके भीतरी मन में साफ़-साफ़ खुला हो। पर ऊपर से वह मन में नहीं आने देना चाहता था। इतने दिनों तक तिवारी के प्रति उसकी जो आशा थी, जो अपनापन था, जो एक लगाव था, वह आज इस प्रतिहिंसा की ज्वाला में भी जैसे सूक्ष्म रूप से उसके शरीर में सुरक्षित था, किन्तु क्षण भर बाद ही जैसे उसके मन का विद्रोह चिल्ला उठता था :

'अब तिवारी को आटे-दाल का भाव मालूम होगा, जब चौधरी से पाला पड़ेगा। सेर के ऊपर सवा सेर। लोहे के ऊपर जब घन की चोट पड़ती है तब उसे मालूम होता है, कहीं कोई और भी है इस धरती पर जिसकी चोट करारी होती है। अभी तक हमारे ऐसे आदमी उन्हें

मिल गया था, जो जी देकर उनका काम करता था और ऊपर से जबान बन्द करके दो लात-घूँसे सह लेता था; तिस पर भी उनका मुँह सीधा नहीं होता था। सच पूछो, तो अभी उनको कोई सबक मिला नहीं। एक पत्ता भी नुकसान हुआ नहीं और इसलिए उन्हें सब हरा-हरा ही सूझ रहा है। जिस दिन वे झोली लेकर भीख मांगने निकलेंगे उस दिन हमारा कलेजा ठंडा होगा।'

करमू के मन में एक तरफ दूसरे भी विचार उठ रहे थे। तिवारी लाख बुरे हों, पर चोरी-चंवारी मे नही पड़ते। सख्ती-कड़ाई करते हैं, पर उन्ही के यहाँ तो हमारे तीन पुश्त ने नमक खाया है। अब उन्होने जब अपने यहाँ से हटा दिया तब इतने दिन की ईमानदारी और धरम पर पानी नही फेर देना चाहिए, आदमी का धरम है। तकलीफ़-आराम तो लगा ही रहता है। बदी करके कोई फूल-फल नही सकता। उन्होंने जैसा किया, उसका फल भगवान् उन्हे देगा। मै क्यों चौधरी का साथ करके उनको नुकसान पहुँचाऊँ। और अगर बापू के कान मे यह बात पड़ी तो वह तो जान ही दे देगे। हमारे हाथ का पानी भी नही पीयेगे, मुँह तक नही देखेगे। वह तो अभी भी कहते है कि मालिक दुई एक मे हैं। तिस पर वे ब्राह्मण देवता हैं, उनकी मरजी रही रखा, मरजी नही रही, निकाल दिया। हाथ पैर तो नही काट लिया। मेहनत-मज़दूरी करके अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट भरो। इतनी बड़ी दुनिया है, किसी न किसी तरह, दो जून न सही, एक जून तो पेट में दाना जायेगा ही। अब उनके कान में अगर भनक भी पड़ जायेगी कि मैने चौधरी का साथ किया है और इसलिए कि तिवारी का नुकसान हो, तो जाने वह क्या कर बैठेगे? वह तो कहते रहते हैं कि चाहे अपना हो या पराया, हम तो नेकी का साथ पकड़ेगे। बदी करने वाला फूल-फल नहीं सकता। आज भले ही वह राजा हो जाय, कल गली-गली भीख मांगेगा।

किन्तु, वैसे ही उसके मन में दूसरे विचारों ने जोर मारा—'कौन

तिवारी ने हमारे साथ बड़ा अहसान कर दिया है। उन्होंने तो हमारे साथ ऐसा किया जैसा दुश्मन भी नहींक रेगा। बीच साल में काम से छुड़ा दिया। जुताई-बुवाई मैंने की, रात-रात भर जग कर देख-रेख मैंने की। जब मरने-खपने का काम रहा तो हमारी जरूरत रही और अब मामूली सी बात पर अलग कर दिया। मजा मारे गाजी मियाँ, मार खायँ मुजावर। बेचारी जगनी को मार-मार कर लोहू-लुहान कर दिया। वह तो भाग्य में बदा था, बेचारी उठकर खड़ी हो गयी, नहीं तो उसकी तो जान गयी थी। अब जबतक तिवारी एक सबक नहीं सीख लेंगे, उनका दिमाग आसमान से धरती पर नही आयेगा।'

करमू के मन मे विचारों की तीव्रता बढ़ने लगी। उसके मन में प्रतिहिंसा की भावना उग्र-से-उग्र होती जा रही थी और घड़ी भर रात जाने पर वह चौधरी खुशहाल सिंह के मकान पर जा पहुँचा।

चौधरी खुशहाल सिंह का गाँव में काफी दबदबा था, किन्तु जैसा वे चाहते थे वैसा रौबदाव नहीं रख पाते थे। कम-से-कम उनको अपने मन में सन्तोष नहीं था और सभी लोग तो उनके कब्जे में थे। कुछ खुलकर उनका दबाव मानते थे। कुछ उनका विरोध नहीं करते थे। परन्तु गाँव में तीन आदमी ऐसे थे जिनकी वजह से चौधरी खशहाल सिंह को अपने काम में बाधा पड़ती थी। साथ ही अन्य लोगों पर उनका रौब पूरी तरह जम नहीं पाता था। उनमें एक तो रामलखन तिवारी थे, जिनके पास काफ़ी जगह-ज़मीन थी; रुपये-पैसे थे, और लम्बी जजमानी थी, जो उनके मौके पर काम आती थी। दूसरे रामसरन सहाय थे जिनके पास जगह-ज़मीन कोई विशेष तो नहीं थी परन्तु सरकारी नौकरी थी। पढ़े-लिखे आदमी थे। कायदे-कानून से वाकिफ़ थे। हर एक का कुछ-न-कुछ उनसे काम पड़ता ही रहता था। साथ-ही साथ बुद्धि का जोर था। सही को झूँठ और झूँठ को सही कर देना उनका काम था। कुछ लोगों का तो यह ख्याल था कि कोई वकील मुख्तार भी कानून की पेच उनकी

तरह नहीं समझ सकता और न उसकी तरह गवाह को सिखा-पढ़ा सकता है। चौधरी के मन में इन मुन्शी जी के प्रति भी बड़ा मलाल था। और गाँव में एक आदमी और थे ठाकुर गजराजसिंह। ये तीनों आदमी हर वक्त इसी फेर में रहते कि किस तरह खुशहाल चौधरी को उखाड़ फेंके। खुशहाल चौधरी की वजह से इनका रौब चमारों, दुसाधों, मुसहरों और अन्य छोटी-छोटी कौमों पर नहीं जम पाता था। चौधरी खुशहाल वैसे ऊपर से तो इन तीनों व्यक्तियों का बड़ा आदर करते, मीठी मीठी बातें करते; परन्तु मन में सदा इसी ताक में रहते कि कब मौका मिले और एक-एक को नाथ कर रख दूँ।

तिवारी रामलखन को नाथने में करमू से बड़ी मदद मिल सकती थी। वह तिवारी के घर से राई-रत्ती वाकिफ़ था। किस घर में क्या सामान रखा जाता है, किस घर में गहने कपड़े हैं, किस में बर्तन-भाँड़े हैं और किस में कपड़े-लत्ते। कितना सामान उनके पास है, सब उसे मालूम था, क्योंकि वह खुद रोज उनके घर में जाता रहा था। दूसरे उसकी स्त्री लिपाई-पुताई का काम तिवारी के घर में करती रही थी। समय-असमय आती-जाती रहती थी। इसलिए उसे हर एक चीज की वाक़फ़ियत थी। इसके साथ ही एक बात और थी, तिवारी के बैल-गाय करमू से खूब परचे हुए थे। वही उन्हें घास-दाना खिलाता रहा था। हल में जोतता रहा था, लाड़-प्यार लड़ाता रहा था, और इसलिए रात-बिरात बैलों के सामने अगर वह खड़ा हो जायेगा, तो बैल छान पगहा नहीं तुड़ायेंगे। उसके साथ बैल इस तरह बेखौफ, बिना मुड़ते हुए चले जायेंगे जैसे माँ की उंगली पकड़कर छोटा बच्चा हँसता-खेलता मेला देखने जाता है।

चौधरी खुशहाल के मन में एक बात और थी। वह अच्छी तरह समझते थे कि इस समय यदि तिवारी का बैल खोल लिये जायेंगे, अथवा उनके घर में चोरी-चंवारी हो जायेगी तो उनके ऊपर किसी का ध्यान नहीं जायेगा। सब जानते हैं कि करमू की स्त्री को मारते-

मारते तिवारी ने बेदम कर दिया था। उसका काम बीच साल में छुड़ा दिया है। इसलिए बदला लेने की भावना उसके मन में ज़रूर रहेगी। इसलिए कोई उनके ऊपर शुबहा भी नहीं करेगा। जो सोचेगा वह करमू और उसके संगी-साथियों के बारे में ही सोचेगा। और इधर हमारा काम भी बन जायेगा। इस बार अगर तिवारी के चारों बैल खोल लिये जायें या सारा खलिहान उठाकर साफ़ कर दिया जाय तब उनकी नसें ढीली हो जायेंगीं। और अगर मार-फ़ौजदारी हो जाय तो तिवारी को मुकदमे में उलझाकर उनकी बधिया बैठा दूँगा। मेरा क्या, सामने में करमू को कर दूँगा। ज़रा अभी वह घोंघा है। धरम-धरम चिल्लाता रहता है। पर एक बार अगर उसे घसीटकर इस रास्ते पर ला दिया तो वह तो खुद रास्ता पकड़ लेगा। जाति का चमार है। उसकी बिरादरी काफ़ी लम्बी-चौड़ी है, लड़ेंगे, कटेंगे, केवल मेरे पीठ ठोकने भर की ज़रूरत है; फिर ये लोग। जो बड़ा बावन वीर बनते हैं, वह देख लिया जायेगा। कितने मगरूर रहते हैं ये लोग। बड़की जात का बनते हैं न! पर सच पूछो तो ऊपर से ये जैसे साफ़ पाक रहें, पर भीतर से भेड़िये हैं। अपना देखते नहीं, हमारी ही ओर नज़र रखते हैं। कोई करम इन लोगों से बाकी नहीं होगा।

करमू को चौधरी खुशहाल सिंह ने बड़े प्रेम से बैठाया। बोले :

"आओ करमू बैठो, उस ताखे पर तम्बाकू रखा है, उतार लो और चिलम बढ़ाकर पीलो।"

और फिर सहानभूति जनाते हुए कहा :

। "यह लो, हमारी ही चिलम पर चढ़ा लो। हमारे पास छून-छात का रोग नहीं है। जैसा तुम्हारा तन, वैसा हमारा। आदमी-आदमी का मन मिल जाये, यही बड़ी बात है। सबके शरीर के खून का रंग लाल है। यह भेद तो ऊपर-ऊपर का है।"

करमू का मन बाग-बाग होगया। जिन चौधरी खुशहाल सिंह का दबदबा छोटे-बड़े सभी मानते हैं, थानेदार जिनके दरवाजे पर आकर

टिकता है, बैंक का सुपरवाइज़र जिनके दरवाज़े पर आता है और शहर के पण्डित जी गाँधी टोपी लगाकर झकाझक, दूध की तरह का सफेद कपड़ा पहनकर आते हैं, बैठते हैं, बातें करते हैं, वही चौधरी खुशहाल-सिंह इस भाईचारे से उसके साथ पेश आ रहे हैं, उसने मन में सोचा कि यह आदमी उसी के लिए बुरा है, जो बुरा है, नहीं तो आदमी नहीं, हीरा है, जो जिसकी बुराई करेगा, जिसके रास्ते में आयेगा, उससे लड़ाई-झगड़ा तो होगा ही। उसकी बुराई तो लोग चाहेंगे ही। बड़े-बड़े महात्मा धर्मात्मा तक यही करते आये हैं। अरे, गांधी महात्मा से बढ़कर कौन होगा, उन्होंने भी तो अंग्रेज़ों से लड़ाई लड़ी। लाठी-बन्दूक नहीं चलाया तो क्या, उनसे लड़ाई तो लड़ते ही रहे। इसी तरह यह चौधरी खुशहाल सिंह भी तो उसी के रास्ते में आता है, जो उसकी बुराई करता है और उसके काम में रोड़ा अटकाता है। नहीं तो देखो, मैं कौन और वह कौन। जात का मैं चमार, न घर-बार, भूखों मर रहा हूँ। ऐसों को तो लोग डौले पर खड़ा नहीं होने देते। सोचते हैं, कुछ-न-कुछ माँगने ही आया होगा। पर एक यह है कि हमारी कितनी आदर-कदर कर रहा है। ऊपर से बोला :

"नहीं चौधरी काका, ऐसा नहीं। हम तुम्हारी चिलम नहीं पीयेंगे। कहाँ तुम, कहाँ हम, हम ठहरे जाति के चमार। बस हमारे ऊपर तुम्हारी नज़र रहे, यही काफ़ी है। आज मुझे मालूम हुआ है कि तुम्हारा दिल कितना बड़ा है। ये जो बड़े बड़ुआ कहे जाने वाले हैं, ये तो सदा इसी ताक में रहते हैं कि कब किस गरीब को पायें और उसका खून चूसकर पी डालें।"

करमू बातें कह रहा था और चौधरी उसके मुँह की तरफ देख रहे थे : इस समय उनके मुँहपर वही भाव थे जो एक उस्ताद के मुँह पर अपने नये शिष्य के पहले पाठ पढ़ते समय रहता है कि कहाँ तक आगे बढ़ पायेगा। बोले :

"इन लोगों को अपनी जाति का बड़ा गुमान है, मगर वह गुमान

ठंडा होता जा रहा है। देखते नहीं, अब जाति-पाँति का रौब ज्यादा दिन टिक नहीं सकता। अब तो जिसके हाथ में ताकत रहेगी, वही दूसरों के सर पर चढ़कर बोलेगा। बहुत दिन जोर-जुल्म कर लिया इन लोगों ने।

कुछ देर तक करमू और चौधरी में इधर-उधर की बातें होती रहीं। दोनों के ही मन में यह आ रहा था कि जिस काम के लिए करमू को बुलाया गया है, अभी तक उस बात पर नहीं आ पाये। किन्तु करमू को साहस नही होता था कि अपने मुँह से वह बातें कह सके। यद्यपि उसके हृदय में वही बातें जमी हुई थीं।

कुछ देर तक दोनों एक दूसरे का मुँह देखते रहे और फिर घन्टों तक चुप-चुप एक दूसरे से फुसफुसा कर बातें करते रहे।

करमू जब वहाँ से चला तो जैसे वह हवा में उड़ता जा रहा था, प्रत्यंचा खिचीं हुई डोरी से जैसे तीर निकलकर सनसनाता हुआ जाता है। और इधर चौधरी खुशहाल सिंह ने सोचा कि तीर तो अब छोड़ दिया है अब देखें तिवारी की अकड़ कब तक टिकती है। तीर निशाने पर बैठा, तो मार लिया मैदान।

: ५ :

रामलखन तिवारी अपनी बैठक में बैठे हुए थे। हथेली पर सुर्ती मल रहे थे; किन्तु उनका ध्यान उस तरफ नहीं था। उनके दिमाग में बैल चक्कर काट रहे थे। उनके चार बैल खोल लिये गये थे और घर में नकब भी पड़ी थी। किन्तु जाग हो जाने के कारण कुछ नुकसान नहीं हो सका। पर चिन्ता की बात तो थी ही। जिन तिवारी का आज तक एक दाना भी चोरी नहीं हुआ, उनके सामने कोई विरोध करने की हिम्मत नहीं कर पाता था, चौधरी खुशहाल भी अपने मन में चाहे कुछ भी समझते हों, किन्तु सामने पड़ने पर हाथ जोड़कर पालागन किये बिना आगे नहीं बढ़ता था। और आज उन्हीं के खूँटे से

बैल छोड़ लिये गये। घर में नक़ब पड़ी सो अलग, बैल छोड़ लिया जाना कोई विशेष नुकसान की बात तो नहीं थी, वैसे डेढ़ हज़ार रुपये पर पानी तो फिर ही गया; किन्तु सबसे बड़ा सवाल हेठी का था। उनके सामान पर लोग हाथ लगायें और हाथ लगाने वाला पकड़ में न आये। इसमें उन्हें अपना अपमान महसूस हुआ और वह इसी चिंता में लीन थे। इस मर्ज़ की कोई दवा वह खोज निकालना चाहते थे। आज की ही तो बात नहीं, यह तो सदा की बात है। किसान, चाहने पर भी कौन-कौन सामान छिपाकर घर में रखेगा। खेत में फसल खड़ी रहती है, खलिहान में अनाज पड़े रहते हैं, दरवाजे पर गाय बैल भैंस बँधी रहती है, कूएँ पर पैर चलाने का सामान रखना ही पड़ता है, अब किस-किस चीज़ को अपने हाथ में समेटकर रखा जाय।

उनके मन में बार-बार प्रश्न उठ रहा था। आखिर यह किसका काम है? करमू में इतना दम तो नहीं और न उसका इतना बूता ही है कि चार-चार बैलों को छिपा सके और ऊपर से घर में सेंध मारने का हौसला रखे। आखिर कौन है, जिसने यह काम किया। उनका मन बार-बार चौधरी खुशहाल के ऊपर टिक जाता था। हो-न-हो, यह काम उसी का है। वही इस तरह की चोरी-चंवारी में चौबीसों घंटे लगा रहता है। कहना चाहिए कि वह चोरी-चंवारी की ही रोटी खाता है। नहीं तो उसके पास था ही क्या? मेरे देखते देखते की बात है। दो-दो दिन उपवास उसके घर में होता था। बाप भूखों मर गया। कभी भरपेट अन्न नहीं मिला। मरने पर कफ़न के लिए भी दाम नहीं था; यही चौधरी मुझसे रुपये हथ फेर ले गया था और अपने बाप की क्रिया-कर्म की थी। आज देखते-देखते दस-पन्द्रह वर्षों में जो उसके पास दो हल के खेत हो गये, गाय, बैल भैंसें हो गईं, दस जगह पेंठ हो गई, वह सब कहीं धरती फाड़कर उसे नहीं मिला है। इसी चोरी-चंवारी से कमाया है। कौन चोर उसका साथी नहीं है। किस बैल खोलने वाले से उसकी दाँत कटी रोटी नहीं है।

किन्तु उनके मन में यह बात भी आ जाती कि फिर करमू के लिए चौधरी यह सब क्यों करेगा ? वह जानता है कि मेरा बल कम नहीं है और यह भी वह अच्छी तरह समझे बैठा है कि तिवारी को चुनौती देकर यह चौधरियाव ज्यादा दिन नहीं चलेगा। जब हाथ धोकर उसके पीछे पड़ जाऊँगा तो उसको दर-दर की भीख मँगा दूँगा। यह बात वह अच्छी तरह जानता, समझता है। उसका होंसला कितना भी बड़ा हो किन्तु वह होशियार और चालाक है, वहीं हाथ मारेगा जहाँ से वह साफ निकल आये। मुझे वह खूब जानता है और इसलिए उस करमू के लिए मुझसे बैर नहीं मोल लेगा। हो-न-हो, यह काम करमू का ही है। आज-कल नीच जातियों के पौ-बारह हैं। जिसको देखो वही उनकी पीठ ठोकने के लिए तैयार है। वह जो शहर से नेता लोग आते हैं, वे हैं तो जात के ब्राह्मण, कायस्थ और एक वह हैं जो अपने को बड़ा राजपूत मानते हैं, जब वोट का ज़माना था, तब जाकर उन्हीं चमारों के दरवाजे पर बैठते थे, उन्हीं का छूआ खाते थे। इसी से इन नीच जातियों का दिमाग और भी आसमान पर चढ़ गया। सरकार अब इनका पक्ष लेती है। इसी जिले मे जितने भी बड़े-बड़े अफ़सर हैं नीच कौमों के हैं। पहले जिन्हे लोग छूना गुनाह समझते थे, उन्ही के सामने हाथ जोड़कर खड़ा होना पड़ता है। अब ये लोग जो न करें, वह थोड़ा इसलिए यह काम करमू भी कर सकता है। उसके अपने पास दम नहीं है तो क्या, उसकी जात-बिरादरी के लोग कम नही हैं। रोया गिड़गिड़ाया होगा, बाहर के आदमियों के पास जाकर, अपना दुखड़ा कहा होगा, और उन्ही लोगों का यह काम है।

उनके दिल में कोई बात पूरी तरह जम नहीं पा रही थी, पूस महीने की चौथे पहर धूप जैसे क्षण भर भी किसी स्थान पर टिक नही पाती। आगे के लिए उनका क़दम भी क्या रहेगा, यह भी उनको तय कर लेना था। उनके दिमाग में जैसे समस्या धूआँ बनकर कर गूँज रही थी। जिससे उनका मन-प्राण घुट रहा हो, और वे उठकर मुन्शी रामसरन

सहाय के घर की ओर चले।

रामलखन जब रामसरन सहाय के यहाँ पहुँचे तो वहाँ ठाकुर गजराजसिंह भी बैठे हुए थे। रामलखन को देखते ही दोनों ने पालागन किया।

आशीर्वाद देकर रामलखन ने कहा :

"आप लोग देख रहे हैं, यह अन्धेरगर्दी। आज तक हमारे हाथ से जब हुआ, तब किसी का फायदा ही हुआ, परन्तु अब लोग हमारी ही जड़ काटने पर तुले हुए हैं। अब नेकी का ज़माना नहीं रह गया है। घर में सेंध पड़ी और बैल अलग खोल लिये गये। चार-चार बैल, दो हज़ार का माल रहा होगा।"

ऊपर से तो रामलखन, रामसरन और गजराजसिंह में काफी भाईचारा था, एक दूसरे के हमदर्द बनते थे, किन्तु मन-ही-मन एक दूसरे से जलते रहते थे। इनमें से अगर किसी का कुछ नुकसान हो जाता तो मन में तो बहुत प्रसन्न होते पर ऊपर से रोनी सूरत बना लेते। तिवारी का इधर जो नुकसान हो गया था उससे ये दोनों बड़े खुश थे। दोनों यहाँ इकट्ठे होकर मज़ा ले-ले कर यही बातें कर रहे थे कि चलो ठीक हुआ, अब तिवारी का दिमाग ठंडा हो जायेगा। आपने आगे किसी को कुछ समझते ही नहीं थे। अगर उनको किसी बात की चिन्ता थी तो यही कि चौधरी खुशहाल सिंह की ताकत और न बढ़ जाये।

रामसरन, 'हम लोग बस यही बातें कर रहे थे कि देखो बेचारे तिवारी जी का कितना नुकसान हो गया। अब ज़माना ऐसा आयेगा कि ऐसे धर्मात्मा आदमी को भी लोग छोड़ते नहीं।

गजराज सिंह : "तिवारी जी, हम लोगों में एका नहीं है, नहीं तो क्या मजाल कि कोई इस तरह का काम कर जाता। हम लोग यही सोच रहे थे कि यह किसका काम हो सकता है। पता लगे तो हम लोग जरा मजा चखाये कि बैर बिसाहन का क्या मूल्य देना पड़ता है? आपका मन किस पर जाता है?"

रामलखन : "अब आप सब लोग इकट्ठे ही हो। सोच लीजिए यह काम किसका हो सकता है। करमू को मैंने काम से अलग कर दिया है, उसी के मन में खार है। वैसे आप लोगों की क्या राय है ?"

रामसरन सहाय : "तिवारी जी, करमू में इतना दम नहीं। मेरा तो ख्याल है कि करमू को आगे कर के कोई टट्टी की ओट में शिकार कर रहा है। अभी तक आपके यहाँ करमू काम करता रहा है, उसका पानी इतना नहीं भरा है। मेरा तो यह निश्चित् ख्याल है कि करमू को उभाड़ने वाला कोई दूसरा ही है। जो भी हो, वह बहुत चालाक है। सोचता है कि इस समय तिवारी का जो कुछ भी नुकसान होगा, सोचने वाले करमू के बारे में ही सोचेंगे। इसलिए मैं कहता हूं कोई घाघ आदमी इस समय अपना काम साध रहा है।"

रामलखन : "तो यह कौन हो सकता है ? करमू पर मेरा मन तो जाता है, पर यह उसके बूते की बात नहीं। मेरी नज़रों पर तो चौधरी खुशहाल चढ़ा हुआ है।"

रामसरन : "अब कही आपने पते की बात। मेरे मन में भी यही बात उठ रही थी। उसी का यह काम हो सकता है। वह तो हम लोगों को फूटी आंखों भी नही देख सकता। वह जानता है कि उसकी राह के रोड़े हमीं लोग हैं नहीं तो अब तक हजारो रूजाना जोड़ चुका होता। ऊपर से तो वह बड़ा मीठा बनता है, मगर उसका बस चले तो वह हम लोगों को उखाड़कर फेंक दे।"

गजराजसिंह : "हाँ, ठीक कहते हैं आप, उसका दिमाग बहुत बढ़ गया है। अब उसका काम ही चोरी-चवारी रह गया है। दस लाठी उसके साथ मे है और वह चाहता है कि सबको सर कर ले।

तीनों आदमी इस बात पर विचार करने लगे कि आखिर चौधरी खुशहाल को किस तरह ठंडा किया जाय। नुकसान तो तिवारी का ही हुआ था परन्तु रामसरन सहाय और गजराज को यह चिन्ता लगी थी

कि अगर चौधरी खुशहाल सिंह का बल बढ़ गया तो एक-न-एक दिन हम लोगों पर भी वह हाथ साफ करेगा।

: ६ :

संध्या का झुटपुटा हो चुका था। करमू अपनी झोंपड़ी में बैठा हुआ था। एक कोने में मिट्टी के तेल का दिया जल रहा था जिससे धुआँ निकलकर घर को गुँजा रहा था। एक तरफ मिट्टी के तीन-चार घड़े रखे थे जो खाली थे। अनाज रखने के वे घड़े थे। किन्तु जब करमू काम करता था तब तो वे घड़े भरे ही नहीं, तब आज जब कि उसे काम पर से अलग हुए दो महीने गुजर चुके थे, उनमें अनाज कहाँ से आता। जिस टूटी चारपाई पर वह बैठा था, उसी पर एक तरफ़ उसका बुड्ढा बाप सर झुकाये बैठा था। उसका बुढ़ापे में जर्जर शरीर एकदम सूख गया था। उसके दोनों गाल एकदम चिपक गये थे, जिनमें बढ़े हुए बाल ऐसे लगते थे मानों किसी गढ़े में घास उग आई हो। उसके मुँह पर चिन्ता खेल रही थी। गढ़े में धँसी सूनी-सूनी आँखों में जैसे भय और आतंक समाया हो। करमू और मोलई से थोड़ी दूर पर, ज़मीन पर करमू की स्त्री जगनी बैठी हुई थी। उसकी साड़ी तार-तार हो रही थी। उसके मुँह पर ऐसी उदासी और बेचारगी छाई हुई थी जैसे उसके सामने अब आशा की एक भी किरण न रह गई हो। फटी फटी आँखों से वह इस तरह देख रही थी मानो उसे काठ मार गया हो। उसे देखकर कोई भी उसकी उम्र का अन्दाज नहीं लगा सकता था। उसके शरीर पर बस हड्डियाँ ही रह गई थीं। चमड़ा एक दम सूख गया था। कुछ ऐसा आभास होता था जैसे कच्चा हरा-पेड़ उखड़कर सूख गया हो।

उस छोटी सी झोंपड़ी में इस तरह सन्नाटा और चुप्पी छाई थी मानों सभी को मौत की सजा सुना दी गई हो और उससे निस्तार पाने का कोई रास्ता न हो। सभी गुमसुम बैठे थे। फिर धीरे-धीरे मोलई ने कहा :

"तुमको तो मैंने बार-बार मना किया है, कि चौधरी का संग साथ न करो। अपना और उसका साथ कहाँ ?"

"चौधरी को आज से नहीं जबसे वह पैदा हुआ है तबसे मैं जानता हूँ। उसका बाप तो सीधा था, एक दम गऊ। उसके साथ कोई कुछ अच्छा करे तो भी ठीक, बुरा करे तो भी ठीक। मुझसे उसकी खूब पटती थी। वह कहा करता था कि हम किसी के साथ भलाई नहीं कर सकते तो बुराई भी क्यों करें ? हम क्यों किसी को बुरा-खोटा कहें, उसका न्याय तो भगवान् करेंगे। बस वह आदमी हजार आदमी में एक था। जनम भर पेट उसका भरा नहीं, पर क्या मजाल कि पराये अन्य-धन की ओर आँख उठाकर देख ले। धरम-करम भी उसका निबह गया। सरग मिला होगा उसे। पर उसका यह लड़का चौधरी, ठीक उसका उलटा निकला। मैं तो कहता हूँ, ऐसे पूत से निपूत रहना अच्छा। सब यही न कहते हैं फलाने का बेटा है। बाप दादों के नाम को डुबा दिया। ऊपर से कोई कुछ न कहे, वह बात दूसरी। सो जो जबान उसके खिलाफ़ नहीं निकालते इसीलिए कि भाई नंगी का कोई क्या कर लेगा ? कहा भी है, नंगा खुदा से भी बड़ा।"

मोलई की मुखाकृति इस परेशानी और दुख में भी चमक उठी। उसके अन्तर में जैसे उस स्वर्ग गये चौधरी के बाप के स्मरण मात्र से भावनाओं का उन्मेष उठ खड़ा हुआ हो कि कितना भला था वह। और मोलई का मन प्राण जैसे श्रद्धा भक्ति से उसके प्रति अभिभूत हो उठा हो।

कुछ देर तक वह चुपचाप इसी तरह भावना में खोया बैठा रहा। फिर बोला :

"माना कि तिवारी ने हम लोगों के साथ कोई "अच्छा काम नहीं किया। लगा हुआ काम छुड़ा दिया, किंतु तुम भी तो उनसे जवानदराजी कर रहे थे। वे मालिक हैं, ब्राह्मण हैं। उनकी मार हमारे सर पर। अगर मान लो कि उन्होंने बुरा किया, तो उसका फल भगवान् उन्हें देता।'

कुछ देर तक वह चुप रहा। जैसे कोई बात सुन समझ रहा हो। फिर कहने लगा :

"यह कौन नई बात थी। पहले भी तो ऐसा होता था। और कौन हमीं लोगों के साथ ही यह अन्याय हुआ। अरे, इसे अन्याय भी कहें तो कैसे ? मं तो इसे अपने करमों का भोग मानता हूँ। देखो न, परसाल रामेसर सिंह ने जीतन को काम पर से हटा दिया था। उसने क्या साल-दो-साल उनके यहाँ काम किया था ? हमको तो सब मालूम है। जीतन के बाप ने कुछ कर्ज रामेसर से लिया था और उसके सूद में जीतन जब पाँच वर्ष का बच्चा था तभी भैंस चराने के लिए रामेसर के यहाँ काम करने लगा था। तुम्हें तो क्या उसकी याद आयेगी ? वह तो तुमसे कई वर्ष बड़ा है। जब उसके बाप ने कर्ज लिया था तो जीतन का हाथ पकड़ रामेसर के घर ले गया था और बोला कि आज से इसका मुझसे नाता नहीं रहा। जीयेगा तो तुम्हारे लिए और मरेगा तो तुम्हारे लिए। जीतन उस समय निरा अबोध छोकरा ही तो था। उसकी उस समय की सूरत आज भी मेरी आँखों में घूमती है। दुबला-पतला बदन। कपड़े-लत्ते का तो नाम क्या, उसके बाप के पास था ही क्या ? तन पर एक सूत तक नहीं था। यहाँ तक कि कमर में लत्ता तक भी नहीं था। रामेसरसिंह ने अपने लड़के का उतारा एक कुरता दे दिया था, जिसे पहनने पर उसकी टाँगे तक ढक जाती थी। लड़के उसे भालू भालू कहकर चिढ़ाया करते थे। फिर जवान हुवा और उसी सूद में काम करता रहा। उसे सिर्फ़ खाना और कपड़ा उनके घर से मिल जाता था। वह पचास रुपये का मूल और सूद सब पन्द्रह वर्षों में खतम हुआ और तब जीतन को तीन रुपये माहवार रामेसर सिंह देने लगे। सभी काम उनके यहाँ करता था, हल जोतना, खेत भरना, कोल्हू चलाना, बैलों की सानी-पानी करना, क्या काम उससे बचा हुआ था ? और इस पर गाली-मार अलग। काम ऐसे करता जैसे कोई घर का आदमी हो फिर भी एक दिन काम पर नहीं गया तो मार-मार कर उसकी पीठ कोड़ों से उधेड़ दी और काम से

अलग कर दिया। किन्तु जीतन ने सब्र से काम लिया, रोया-गिड़गिड़ाया और फिर उसे रामसरन ने काम पर रख लिया। आखिर वह दुनियाँ-दार आदमी है, ज़माना उसने देखा है। जोश में आकर कुछ कह बैठता तो दर-दर भीख माँगनी पड़ती। हम लोगों के पास न जर है, न ज़मीन; हाथ-पैर का ही तो भरोसा है। हम लोग तो मजदूर ठहरे, मज़दूर, और वह भी खेतिहर मज़दूर, किसानों के यहाँ खेती-मज़दूरी करके अपना गुजर बसर करते है। किसी तरह अपना पेट पालते है, और हम लोग जब किसानों से, अपने मालिकों से, ही लड़ाई करेगे तब गुजर कहाँ से होगी ?"

फिर जैसे उसने कुछ सोचकर कहा :

"और अब ऐसा ज़माना आ गया जाने क्या-का-क्या हो जाय पहले बड़ा शोर सुनते थे, सुराज होगा, अब यह सुनते हैं कि सुराज भी हो गया, पर हम लोगों को पता ही नही लगा। अगर सुराज हो गया होता तो धरम पुण्य तो बढ़ता, लोग मजे में खाते-पीते होते, पर कुछ मालूम ही नहीं होता। बोट-बोट का हल्ला करके कुछ लोग वोट माँगते हैं कि राज बदला है, राज बदला है बस राज यही बदला है कि एक दूसरे की धन-सम्पत्ति छीनकर दूसरे को दे दो, यह ज़मीदारी ही जो टूटी है, वह कोई तोडना है, जिनके पास थोड़ी बहुत जगह ज़मीन थी, उन्ही के पास तो रह गई। हमां-सुमां को तो कोई नही दे देगा न !"

किन्तु जैसे अधिक देर के लिए उसके दिमाग में यह बात टिकी नही, कुछ तीव्रता मे बोल उठा :

"नही बाबा, हमे नही चाहिए पराया धन-दौलत; हम तो बस भगवान् का दिया लेगे। हमारा जो भला करे उसका भी भला और जो बुरा करे उसका भी भला।"

और कुछ ऊँचे स्वर में बोला :

"पर तुमको तो इसका ज्ञान नही होगा। तुम तो उसी का साथ करोगे कि अपने भी डूबो और हमें भी डुबाओ।"

मोलई के बात करने के ढंग से मालूम होता था जैसे उसके मन में अपने करमू के प्रति तीव्र क्रोध और शिकायत की भावना भरी हो। करमू ने आवेश में आकर तिवारी से जो नवीन जबानदराजी की थी, उससे उसके मन में करमू के प्रति काफी क्रोध था। तिवारी तो, उसकी समझ से, गाली-गलौज करने का हक़दार था। आखिर जब वह मालिक है, तो डाँट-डपट तो करेगा ही। इसी बात से वह मन-ही-मन करमू से नाराज़ था।

"और उस दिन बेचारे तिवारी ने कहा ही क्या था, गलती तो तुम्हारी ही थी। उनके खेत का सारा पानी बह गया था। किसान अपने बेटे से ज्यादा अपनी फसल की देख-रेख करता है। उसकी जान खेत में बसती है। उन्होंने दो बात कही तो तुमको सर झुकाकर सह लेनी थीं; किन्तु तुम्हारा दिमाग तो सातवें आसमान पर रहता है।"

फिर कुछ गर्म होकर कहा :

"और अब तिवारी की ताकत देखना। वह अकेला थोड़े ही है, सभी बड़ी जात वाले उसके साथ में हैं। देखा कैसा थानेदार को अपने वश में कर लिया, आखिर सब बड़े-बड़े एक हैं। तुम क्या सोचते थे कि वह चौधरी से डर जायेगा। चौधरी अभी दो दिन से बड़ा बना है, तिवारी जनम का बड़ा है। शहरों में उसकी जान-पहचान है। वह जो शहर से पण्डित जी आते हैं, कोई बहुत बड़े नेता हैं। शायद लखनऊ में कभी-कभी जाकर कानून बना आते हैं, वह भी तिवारी जी के साथ हैं। हमको तो ऐसा मालूम हुआ कि उन्हीं नेता जी के पास जाकर तिवारी ने चौधरी के खिलाफ़ कान भरा है और थानेदार के नाम कोई चिट्ठी ले आये हैं। अब कलक्टर गवर्नर कोई दूसरे थोड़े हैं। सभी तो बड़े बड़ुआ हैं। वे लोग अपनी जात-बिरादरी का काम नहीं करेंगे तो किसका काम करेंगे ? तुम तो जिस दिन चौधरी के यहाँ गये, मैं समझ गया कि अब अपना कल्याण नहीं। चौधरी का तो यह काम ही है कि अपना गिरोह बढ़ाना। किसी अच्छे काम के लिए गिरोह बनाते, तब तो

बात दूसरी थी। किसी का घर फूँकने के लिए, बैल खोलने के लिए, किसी का खेत काटने के लिए और किसी का खलिहान लूटने के लिए कोई गिरोह बाँधेगा तो यह कौन अच्छा काम है? यह तो सरासर ढकैती है। इससे अजाब पड़ता है, इससे बढ़कर कौन सा पाप होगा कि किसी का खलिहान फूँक दो। दुश्मनी की तो आदमी से की, कि अनाज से। अन्न तो देवता है, उसी से हम लोगों का जीवन है। बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी अन्न को माथे पर चढ़ाते हैं, हमने भी बहुत ज़माना देखा है। आज तक किसी भले मानस को ऐसा नहीं देखा कि अनाज को लात मारे, फूँके तापे, एक कोई बड़ा अफ़सर पहले इस गाँव में आता था, होगी कोई हमारे लड़कपन की बात। सो वह अफ़सर मुन्शी रामसरन के बाप के यहाँ ठहरे हुए थे। राजा-रईस का सा चेहरा। कपड़ा वह पहने था कि क्या बतायें, बस राजा-रईस ही जो ठहरा। मैं बच्चा था। उसे देखने के लिए चला गया। वह कोई जाँच-परताल करने आया था। सब लोग उसको घेरे थे। और एकाएक उसने क्या किया कि पलँग पर से उतरकर खड़ा हो गया। सब लोग अक-बका गये कि क्या करेगा। और वह, ज़मीन पर मटर के कुछ दाने पड़े थे, उन्हें बीनने लगा। किसी लड़के की जेब से शायद चबाने के दाने गिर गये थे। और वह उतना बड़ा अफ़सर अपने हाथ से बटोरने लगा। बोला: 'अनाज ही में प्राण है, अन्न देवता का जो अपमान करेगा उसका नाश हो जायेगा'। और तुमने ऐसे आदमी का साथ पकड़ा, उसका तो क्या बिगड़ेगा. वह तो ताकत वाला है। थानेदार कुछ ले देकर उसको छोड़ देगा। और थानेदार उसको छोड़ क्यों नहीं देगा? जिसका खाया जाता है, उसी का गाया जाता है, जो कुछ ले-देगा उसको तो मुहब्बत रहेगी। चौधरी की वजह से सैकड़ों रुपये माहवार की आमदनी थानेदार को होती है। सो वह तो उसको बचायेगा ही। वह तो तुम्हीं को पकड़ेगा। सुनते हैं थानेदार ने शहर जाकर नेता जी से मुलाकात भी की थी और साफ़ बता दिया कि चौधरी की

बदनामी लोग झूठे ही करते हैं, आदमी बड़ा नेक है। बहुत सारे वोट उसने दिलवाये थे। और यह बात कोई नेता जी से छिपी थोड़े ही है। जब वोट का जमाना था, जब सुराज नहीं हुआ था, हमने खुद अपनी आँखों से देखा था, वह चौधरी को अपनी मोटर पर बैठाये बैठाये घूमता था। फिर वह उसके खिलाफ कैसे जा सकते थे। रह गये अकेले तुम, और तुम्हारी क्या बिसात? अब तुम पर मुकदमे चलेंगे और चोरी में दो-चार बरस की सजा ठुक जायेगी। रपट तुम्हारे खिलाफ तिवारी ने कराई है। हमको मालूम हुआ है।"

जगनी अभी तक चुप-चाप सर झुकाए बैठी थी। अपने ससुर की बातें सुनकर उसने कहा :

"तो तुम्हीं जाकर तिवारी के हाथ-पैर जोड़ो न। इतने दिन तक तुमने काम किया है, जाकर रोओ-धोओ, कुछ तो तरस खायेंगे। कहना कि इनका कोई कसूर नहीं था, बैल तो चौधरी के पास गये। न जाने उन्होंने कहाँ भेज दिया, न हो तो बैल खोजने का नाम भी न लेना। कहना कि उस दिन तो ये गाँव में थे भी नहीं। हम लोगों ने आपका नमक खाया है, अब की यह कसूर माफ़ करो, फिर कोई खता न होगी।"

करमू चुपचाप सर झुकाए उन लोगों की बातें सुनता रहा। उसका मन बार-बार पछता रहा था कि किस साइत में मैं इस झगड़े में पड़ा। तिवारी ने काम पर से अलग कर दिया था ठीक था, पर मुझे चौधरी के बहकावे में नहीं आना चाहिए था। और अब अगर कल थानेदार आये, चार बेंत मारकर पकड़ ले जाये और जेल भेज दे तो क्या होगा? बापू ठीक कह रहे हैं, चौधरी का कुछ न होगा। वह तो खून करके पचा गया। दस जगह उसकी मान-जान है, शहर में अमला मुख्त्यार उनके अपने आदमी हैं, जरूरत पड़ने पर अपने पास से मुकदमा लड़कर उसको छुड़ा लेंगे। आखिर कितना रुपया वह उन लोगों को दिलाता रहता है। थानेदार भी उसका क्यों बिगाड़ेंगे?

रुपया किसे मीठा नही लगता। और जो रुपया देगा-दिलायेगा, उस पर कोई क्यों आँच आने देगा ? शहर के नेता के पास तिवारी जी ने जाकर कहा-सुना सो उन्होने थानेदार साहब को चिट्ठी लिख भेजी। अब थानेदार चौधरी को साफ-साफ बचा ले जायेंगे और नेता जी का मान रखने के लिए मुझे ही फँसायेंगे। मेरे पास भी अगर कुछ देने-लेने को रहता तो लाख कसूर करता, कोई आँच आने वाली नही थी। रुपये के ज़ोर से सब कुछ हो सकता है : चोरी करो, खून करो, डाका डालो, घर-बार लूटो, अगर देने के लिए पास मे रुपया है, तब कोई कुछ नही पूछेगा। मजे से अपनी मरजी की करो। चौधरी के ही बहकाने से बैल मैंने खोले, उसका रुपया मिला होगा चौधरी को, मेरे हिस्से तो बैल खोलने का पाप ही आया। और जाने किसने तिवारी के घर मे सेध लगाई, किन्तु है यह काम चौधरी का ही, उसी ने इसे किया है, सोचा होगा इस समय करमू ही फँसेगा, लोग उसी की तरफ उँगली उठायेंगे, और वह मजे मार लेगा।

करमू का मन आशंका से और भी भर गया, बार-बार अपने मन में वह गंगा मैया को मना रहा था कि अगर अब की बार मेरा निस्तारा हो गया तो अब कभी बुरे रास्ते पर कदम नही रखूँगा। अरे, कब मैंने दूसरों का बुरा ताका, मैं तो सन्तोष करके बैठ ही गया था, इसी चौधरी के बहकाने पर मन डिग गया। अब फिर कभी इस रास्ते पर क़दम नही रखूँगा।

उसके मन मे पश्चाताप की भावना और भी प्रबल हुई, उसने सोचा : मैं तो कहता हूँ कि मुझे हो जाय सजा, सजा ही कौन चाहे फाँसी भी हो जाय, मैंने पाप किया है, चोरी, सो भी गऊ की, हाँ, थानेदार के सामने, कचहरी में हाकिम के सामने खोलकर कह दूँगा मैंने चोरी की है, बैल मैंने खोले हैं। यह जो पाप मैंने किया, अब मैं न भोगूँगा तो कौन भोगेगा ? मुझे सजा दो, जो किया सो किया, अब झूठ बोलकर अपने ऊपर और पाप का बोझा नहीं लादूँगा।

: ७ :

एक वर्ष की जेल की सजा, चोरी करने के अपराध में काटकर करमू जब बाहर निकला तब उसे लगा कि अब उसके पैरों में शक्ति नहीं रह गई है, जैसे अब वह एक डग भी आगे नहीं बढ़ पायेगा। जेल में एक-एक दिन वह गिनता रहा है, एक-एक बात याद करता रहा है। बहुत उत्सुकतापूर्वक वह छुटकारे के दिन की बाट जोहता रहा है। जेल में, उसकी नजरों मे उसकी छोटी बच्ची सुखिया रह-रह कर घूम जाती थी। कितनी प्यारी-प्यारी उसकी सूरत थी, और कैसा सलौना उसका मुँह था। उसकी हँसी तो जैसे रुकती ही नहीं थी, कितना भी मन उदास रहता, कितना भी शरीर थका रहता, जब उसकी बेटी उसके पास हँसती-किलकती आकर सामने खड़ी हो जाती थी, तब वह एक स्फूर्ति से, एक आनन्द से भर जाता रहा था। खाने-पहनने की वैसे उसे कभी आसूदगी नही रही। मुश्किल से पेट भर पाता था। रही बात कपड़े की, वह तो नये कपड़े के नाम पर शायद मारकीन की बनियाइन ही बनवाकर उसने पहनी हो, नहीं तो फटे-पुराने कपड़े, उसे जो रामलखन के यहाँ से मिल जाते, उन्हीं पर गुजर करता था। धोती पुरानी कभी कभी खरीद लेता था। उसके गाँव में एक पंडित थे, जब धोती पुरानी सडकर फटने लगती, तब वह चार आने, छः आने में बेच देते और जरूरतमन्द लोग उसे खरीदकर पहिनते। करमू भी ऐसा ही करता, इस तंगदस्ती में भी उसके परिवार में जो मिल्लत थी, और बच्चों में उसका मन जो रमा था, सो यह फटेहाली उस पर जैसे असर ही नहीं डालती थी।

कभी-कभी तो वह अपनी बच्ची को अपने कन्धे पर बिठाकर खेत पर रखवाली करने के लिए निकल जाता था, और देखने वाले देखकर हँसते। बोली बोलते : अरे, इसी के जैसे बेटी हो, हर वक्त छाती पर लादे घूमता फिरता है। जब देखो तब आरती उतारता रहता है। लड़कियों की खातिरदारी अच्छी नहीं। बेटा होता, तब तो

खैर एक बात थी। बेटी तो पराई है, पालो, पोसो, और फिर दूसरे घर चली जाती है।

किन्तु करमू पर इसका कुछ भी असर नहीं पड़ता था। बल्कि ऐसी बातें कहने वालों से वह चिढ़ता था। मन-ही-मन उन पर झल्लाता भी था। अपनी लड़की के बारे में वह एक शब्द भी नहीं सुन सकता था। उसकी लड़की है, चाहे सर पर लादकर घूमे, चाहे राजसिंहासन पर बठाये, किसी का क्या बिगड़ता है जो लोग इस तरह जलते हैं। अपने को भगवान् ने दिया ही क्या है कि बेटी की खातिरदारी करें।

जेल में इन बातों की स्मृति आ आकर उसे बेचैन कर जाती। वह कल्पना करता कि अब घर जाने पर किस तरह अपनी बेटी के साथ प्यारी-प्यारी बातें करेगा?

इसी तरह जेल में उसके मन में अपनी स्त्री जगनी की भी याद आती रहती। बेचारी कितनी मेहनत करती है। कितनी उसकी सार-सँभाल करती है। दूसरों की औरतें हैं, जो हर वक्त अपने पति को ताने से छेदती रहती हैं। यह नहीं हुआ, वह नहीं हुआ। यह चीज लाओ, वह चीज लाओ। और मुँह भर बोलती नहीं. किन्तु एक यह बेचारी है, गऊ की तरह सीधी, कभी किसी चीज के लिए जबान तक नहीं खोली और हमारे पास था ही क्या, सुबह से शाम तक, रात गये खेत में काम करती और घर आने पर मजदूरी में जो अनाज मिलता, घड़ी रात गये तक उसको पीसती, फिर रोटियाँ बनाने बैठती और बापू के खा लेने पर जो बच रहता, खाकर उठ जाती। मैं नहीं-नहीं करता रहता और वह थाली में रोटी डाल देती: ऐसी नेक और सीधी है वह।

और बापू, देवता आदमी हैं, देवता। अपनी जाने किसी का नुकसान नहीं होने दिया, दूसरे के सोने को मिट्टी समझा, इस बुढ़ापे में भी जहाँ तक उनका वश चला काम करते रहे। दूसरों के भी बाप हैं, पर बूढ़े होने पर जैसे उनकी बुद्धि सठिया जाती है। हर वक्त रोना रोते

रहते हैं। बेटे पतोहू की निन्दा–शिकायत करने में जैसे उनकी जीभ थकती ही नहीं। जब देखो तब शिकायत ही करते रहते हैं कि हमें भूखों मार रहे हैं, हमें सता रहे हैं। पर क्या मजाल कि बापू के मुँह से किसी ने कभी कोई ऐसी बात सुनी हो। बल्कि वह तो दूसरों के सामने यही कहते रहते हैं कि हमारे बेटा-पतोहू सरीखे, सात घर मुद्दई हों, उन्हें भी भगवान् ऐसा ही दे।

जेल में इन बातों की याद आ-आकर उसे विकल कर जाती थी। उसका मन उफना उठता, आग पर चढ़ा हुआ दूध जैसे घुट कर उफना-उफना उठता है कैसे वह घर पहुँचेगा। बछड़ा जसे अपनी माँ को दूध दुहते हुए देखता है और वह स्वयं खूटे से बँधा-बँधा तड़पता और अकुलाता रहता है, कुछ-कुछ इसी तरह की भावना करमू के मन में आती।

किन्तु जब इस लम्बी इन्तज़ारी के बाद सजा काटकर वह जेल के बाहर निकला, तब उसका उत्साह जैसे एकदम ठंडा हो गया। जैसे कोई भूखा आदमी भरपेट पकवान खाले और उसके बाद उसे पकवानों की थाली से अरुचि हो जाये। उसी तरह करमू सोचने लगा कि चलेंगे घर, क्या जल्दी पड़ी है?

साथ ही उसके मन मे और विचार भी उठ रहे थे। जिनका ख्याल उसे जेल में नहीं आता था। किस मुँह से वह घर जाय, कैसे वह घर-गाँव वालों से नजर मिलायेगा। लोग ऊपर से कुछ न कहें, पर मन-ही-मन अवहेलना की नजरों से देखेंगे; बड़ा भला मानुस बनता था, पर निकला पक्का चोर और चोरी की उसकी, जिसका नमक उसने पुश्त-दर-पुश्त तक खाया था। उसका नमक खाते खाते उसका बाप बूढ़ा हो गया, और वह स्वयं लड़के से जवान हो गया। उसी की चोरी की। और चुराये भी तो बैल।

वैसे गाँव मे वही अकेला नहीं है, जिसे जेल की सजा हुई हो। उसके पुरवे में ही, कई उसके हमजोली ऐसे थे, जो तीन-तीन बार जेल की

सजा काट चुके थे, जिनका पेशा ही चोरी करना और चोरों का साथ देना था। पर उनका तो हया-पानी मर गया है। उनको तो जेल का जाना ऐसा है जैसे ससुराल गये हो। लौटकर लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं। बड़ी शेखी बघारते हैं, किस तरह वहाँ चकमा देते हैं, किस तरह तिकड़में करते हैं, इसका बखान करते रहते हैं। पर करमू को ऐसे आदमी कभी नही भाये। ऊपर से तो वह उनसे झगड़ा नही करना चाहता था, इसलिए कुछ भी नही कहता था, किन्तु भीतर भीतर घृणा करता था। वह स्वय तो ऐसा नही है कि बेहयाई से पेश आये। उसकी बात दूसरी है, उसकी आँखो का पानी मरा नही है।

दूसरों की कौन कहे, यह चौधरी ही कैसा है। इसे सारा जहान जानता है। कौन नही जानता कि आस-पास मे जितनी चोरियाँ होती हैं, इसी के सुराग से होती हैं। हर चोरी मे इसका साझा रहता है। मुमहरो से इसकी कितनी साठ गाँठ रहती है, चोरी का माल खपाने मे एक नम्बर का उस्ताद है। और किसी का बैल खुलवा देना तो इसके लिए बाये हाथ का काम है, खेत कटवा लेना, खलिहान फूँक देना, कौन सा करम इससे छूटा है। और यह नही कि यह काम लुका-छिपा है। सब पर जाहिर है, सब जानते हैं कि दिन-रात इसी मे यह मशगूल रहता है। पर उसकी आँखो मे शरम नही, लाज हया को धोकर पी गया है। सब से अकड़कर रहता है, डर और भय से कोई कहे नही, पर कौन नही जानता कि वह कितना कमीना है।

पर करमू के लिए तो अब ऐसा हो गया था कि वह शर्म से गड़ा जा रहा था। उस पर यह कलक लगा। उसके खानदान मे किसी पर कभी कोई लाछन तक नही लगा था, बापू के बारे मे तो लोग खोलकर कहते थे कि जात का चमार है तो क्या हुआ, उसके नेम-धरम के आगे बड़े-बड़े सन्त महात्मा झख मारेगे, और वह स्वयं कभी कोई बुरे रास्ते पर नही गया था, अपने काम-से-काम। जो मेहनत की कमाई से मिल गया, वही बहुत, उसी मे सन्तोष कर लिया। सभी लोग कहते थे कि यह

करमू अपने बाप के ही रास्ते पर चलगा, उसी की तरह यह भी नेम-धरम का पालन करेगा।

पर..... ! पर न जाने कहाँ से यह दुर्भाग्य आया कि चौधरी की संगत कर ली और यह कलंक जन्म-जन्मान्तर के लिए माँथे पर लग गया।

इन्हीं विचारों में डूबता-उतराता करमू चला जा रहा था, सड़क के किनारे एक पेड़ की ओट में एक छोटी सी दूकान थी, पान बीड़ी, दियासलाई की। रेल-भाड़ा के वास्ते उसे जो पैसे मिले थे उनमें से उसने दो पैसे की बीड़ी खरीदीं और एक दियासलाई। बीड़ी सुलगा कर उसने अन्यमनस्क भाव से कश खींचीं, और सोचने लग कि अब क्या करूँ। घर चलूं, आखिर चलना तो घर पर पड़ेगा ही, वहाँ न जायेगा तो कहाँ जायेगा ?

वह इस बात को सोच ही रहा था कि उसके मन में आया, क्यों न गंगा-स्नान कर लूँ। और विश्वनाथ बाबा का दर्शन कर लूँ, इस पाप का कुछ न होगा तो प्रायश्चित् ही हो जायेगा। जब तक जीऊँगा दूसरों का सोना मिट्टी समझूँगा। यह पाप हो गया, सो होगया, पूर्व जन्म का भोग था, भोगना बदा था, भोग लिया। अब आगे के लिए अपना रास्ता सुधार लूँ, अब चाहे कोई हमारी बोटी बोटी काट डाले, चाहे हमारा सरबस लूटे, किन्तु हम अपनी तरफ़ से किसी का बुरा नहीं करेंगे। कभी किसी का अहित नहीं करेंगे, जो जैसा करेगा, वैसा फल पायेगा। नेकी-बदी का लेखा-जोखा भगवान् के पास है, हमारा कोई लाख अहित करे, हम उसका भूल कर भी बुरा नहीं चाहेंगे; हमारा करम हमारे साथ रहेगा।

उसका मन भावनाओं से भरा था, उसने सोचा कि जो कुछ होना था, हो चुका, अब आगे की देखना है।

और अब जरूर तिवारी जी से साफ़-साफ़ कह दूगा कि बैल मैंने ही छोड़े थे। कचहरी में हाकिम के सामने नट गया था, वह झूँठ

बात थी। हाकिम ने जो सजा दी थी, वह इन्साफ़ किया था। मेरे पापों को कम कर दिया, किन्तु हमने तो तुम्हारा पुश्त-दर पुश्त से नमक खाया, तुम्हारे ही घर से हमारा पालन-पोषण हुआ, फिर भी मैंने तुम्हारे साथ जो बदी थी उसके लिए जेल की सजा ही काफ़ी नहीं है, उसके लिए तुम हमको माफ़ करो। तिवारी ने जो किया सो किया, हमें काम से छुड़ाया, जगनी को मारा पीटा, वह उनका काम था? उसके लिए हम क्यों चिंता करें। मैंने उस दिन उनका नुकसान किया था वह मालिक थे, मारते-डाँटते, काम से निकाल दिया, सब कुछ ठीक था, आखिर हमें मालिक के खिलाफ़ जाने का कहाँ हक था, कहाँ का इन्साफ़ धर्म था। उनका नुकसान हुआ था, तो हमें हाथ जोड़ना चाहिये था, पैरों पड़ना चाहिए था। यही बाबू भी कह रहे थे। पर हम अधर्म के रास्ते पर चले थे।

जगनी ने भी तो तिवारी के खलिहान से अनाज चुराए था, चाहे वह कन-भर हो अथवा मन-भर। उनका मारना पीटना सब जायज था, सब उचित था। हमीं पर शैतान चढ़ हुआ थ कि जाकर चौधरी की संगत की और वह काम किया कि ब.प दादों का नाम डुबा दिया। अपना धरम-कर्म अलग बिगाड़ा और सदा के लिए कलंक लग गया। अब जाकर उनसे साफ़ कहूंगा कि हमारी बदफ़ेली का सरकार ने दंड तो दिया, पर वह दण्ड दे। हमने मालिक की नमक-हरामी की है, इसलिए तुम माफ़ करो नहीं तो हमारा पूर्व-जन्मबिगड़ जायेगा। नरक में भी ठौर ठिकाना नहीं मिलेगा। राम-राम, अपने मालिक का अहित मालिक कैसा भी हो, आखिर मालिक है। हम उसके खिलाफ़ क्यों जाय? उसकी बुराई-निन्दा क्यों करें, उसके कामों पर उगली क्यों उठायें? अगर अपने से न सपरे, अपना पेट न भरे, तो काम से अलग हो जाय, पर यह कौन सा धरम है कि उसी मालिक की जड़ काटने लगें।

करमू ने एक झटके से बीड़ी एक तरफ फेंक दी। वह गंगा-स्नान के लिए चला। उसका मन इस समय काफ़ी हल्का हो गया था। उसे

लगा कि जैसे उसने अपना रास्ता पा लिया । इतने दिनों तक वह अँधेरे में भटकता फिरा, इतने दिनों तक उसके सामने रोशनी नहीं थी, अब जैसे उसे उसका रास्ता साफ़ नज़र आ रहा हो ।

लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ वह गगा-घाट की ओर चल पड़ा ।

: ८ :

पार्क में एक जगह अपनी गीली धोती सूखने के लिए करमू ने फला दी थी, कुछ भुने हुए चने के दाने लेकर उन्हें खा रहा था । आँखें उठा कर चारों ओर के मकानों को वह हैरत और आश्चर्य-भरी नजरों से देख रहा था ।

वह गाँव-देहात का रहने वाला था, शहर-वहर कभी देखा नहीं था । उसका अधिक-से-अधिक सबका अपने गांव के पास की बाज़ार से पड़ा था । वहाँ पर कई बार वह खरीदने गया था । नमक-तेल कभी-कभी खरीदने चला जाता था । रामलीला भी वहीं होती थी, जिसे बचपन से वह देखने जाया करता था, किन्तु वहाँ के मकान इतने बड़े नहीं थे । उस कस्बे को देखकर ही वह हैरान हुआ था, आश्चर्य में पड़ कर सोचने लगा था, बाप रे, इतने साफ़-साफ़ कपड़े पहनने वाले आदमी इस बाज़ार में रहते है । लड़के गुड्डी उड़ाते हैं लाल-लाल, नीली-पीली गुड्डियाँ और पतले डोरे के सहारे आकाश में उड़ती है । अगर कोई सर उठाकर उन्हें देखना चाहे तो सर की पगड़ी ज़मीन पर गिर पड़े, इतनी ऊँचे वह गुड्डियाँ आकाश में उड़ती हैं । उन लड़कों को वह धन्य समझता था कि जो इतने ऊँचे आकाश में गुड्डी उड़ा सकते हैं, और क़स्बे की दुकानें भला एक दो दुकानें थीं, कम-से कम बीसों दुकानें तो होंगी । कहीं चावल, दाल, नमक मिर्च, मसाला और क्या जिनिस नहीं बिकती ? कहीं कपड़े की दुकानें, एक-से-एक बढ़ कर कपड़े लाल, पीले, हरे, एक रगा छींट, चारखाना और जाने-क्या क्या ? भला कैसे ये दूकानदार इन कपड़ों का नाम याद रखते

होगे ? धन्न है कलेजा इन दूकानदारों का। आखिर सेठ महाजन जो ठहरे। और इतने रकम-रकम के कपडे भला खरीदता कौन होगा ? राजा-रईसो को छोड कर भला और कौन ऐसे कपडे खरीद सकता है ? तिवारी की बेटी की शादी थी तब उसके चढावे मे कैसे-कैसे कपडे आये थे। चमचम-चमक रहे थे। सारा मडवा जगमगा उठा था। वही लोग न खरीदेगे, और नही तो क्या हमारे ऐसे आदमी खरीद सकते है ?

बजाज की दूकान पर खडे-खडे कपडो को देखते-देखते उसका मन ललचा उठा। क्षण भर के लिए उसके मन मे आया था कि अगर उसके पास भी पैसे होते तो अपनी स्त्री को लाकर दूकान पर खडा कर देता और एक रईस की तरह बेपरवाही से कहता :

'अरी सुन ले-ले अपनी पसन्द का कपडा, जितना चाहिए। इसपर जगनी का चेहरा कैसा प्रसन्नता से चमक उठता। उसकी कल्पना मे ही उसकी स्त्री का प्रसन्नता से चमकता हुआ मुँह जैसे उभर आया था। स्तब्ध सा वह दूकान के सामने खडा रह गया। उसकी तन्द्रा तब टूटी, जब एक साइकिल वाले ने पीछे से टुनटुनी बजाना शुरू कर दिया था। हडबडा कर करमू इधर-उधर देखने लगा। उसके सामने साइकिल क्या आ गयी थी, जैसे कोई आफत आ गयी हो। जब साइकिल वाले ने बाँये को साइकिल मोडी तब वह बाये मुड गया, और जब दाये मोडी तब दाये। अन्त में घबरा कर उसने साइकिल का पहिया पकड लिया। और साइकिल वाले ने कुछ रोष मे कहा कैसा बनमानुस है, जरा भी समझ नही।'

कसबे के मकान भी उसे कम आश्चर्यजनक नही लगे थे। इतने मकान, और सब पक्के। एकदम ईंटो के बने मकान। कैसे भाग्यवान हैं इन मकानो मे रहने वाले।

शहर पहली बार उसने अपने मुकदमे के सिलसिले मे देखा। पुलिस की लारी मे बन्द कर के वह कचहरी लाया जाता था। उसी में से उसने शहर देखा था। कचहरी की लम्बी-चौडी इमारत देखकर

वह चकरा गया था। किसने भला इतना खर्च करके यह मकान बनवाया होगा ? बहुत रुपया खर्च हुआ होगा। और अपने मुकदमे की बात को भूलकर वह, कचहरी का मकान बनवाने मे कितने रुपये खर्च हुए होगे, इसका, तखमीना लगाने लगा था। अपने दिमाग की ऊँची-से-ऊँची उड़ान से उसने सोचा था कि तिवारी के मकान बनाने में जो सुनते हैं, उससे भी दस गुना रुपया इसमें खर्च हुआ होगा। फिर जेल की इमारत भी उसे कम आश्चर्यजनक प्रतीत नही हुई। इतने बड़े-बड़े मकान बनवाकर लोगों को कैद रखते हैं, बड़ा खर्च बैठता होगा। पर सरकार का राज है। राज-काज में खर्च तो पड़ता ही होगा।

और यह सब इतने बड़े-बड़े मकान सरकार ने बनवाये हैं। धन्य है वह सरकार जो इतने बड़े-बड़े मकान बनवा सकती है। पहले ये सब मकान अंग्रेज़ बहादुर ने बनवाया था। वही राजा था। फिर गाँधी बाबा ने लड़ाई लड़कर उनको हरा दिया और सारा राज-काज काँग्रेसी करने लगे। इन काँगरेसी लोगों की भी पूरब जनम की कमाई थी, जो राज-काज कर रहे है।

क्षण भर के लिए उसके दिमाग मे उसके गाँव के पड़ौस के काँग्रेसी नेता की सूरत घम गई। सफेद-सफेद खद्दर का कुरता, गाँधी टोपी और झोला।

और उसके मन में इन कांगरेसियों के भाग्य के प्रति ईर्ष्या हो आई, उसके मन मे आया. यह सब उनके पूरब जनम की कमाई का फल है। हाँ पूरब जनम की ही तो कमाई है; नही तो इस जनम में कौन नेकी धरम का काम किया है। उसके पड़ौस के काँगरेसी नेता ने। पहले उनके पास भी क्या था, बाबू बताते थे कि घर में भूनी भाँज भी नहीं थी। पर अब तो खुद अपनी आँखों से देखता हूं आटा पीसने की एक कल अपने घर के सामने गाड़ रखी है। पक्का मकान बनवा लिया। मकान तो खैर उन्होने अस्पताल के लिए सरकार की ओर से बनवाया है और फिर से अपना बैठकखाना बना लिया। अस्पताल के लिए उसी की बगल में

दो छोटे से कमरे बनवा लिए। और उसे खुद काम में ला रहे हैं। दस गाँव में मान-जान है। थानेदार तक उनसे डरता है। बड़े आराम से जिन्दगानी गुजार रहे हैं। और कोई पूछे कि क्या कर रहे हो तो क्या बतायेंगे ? खेती बारी उन्होंने कभी की नहीं, नौकरी-चाकरी कोई की नहीं और न कोई रोजगार किया। बस काँगरेसी बन गये और काँगरेस का काम किया। अब उनके धन की कोई ओर-छोर थोड़े ही है। लड़की की शादी की तो सुनते हैं दस हजार रुपया खरच किया। भला इतना खरच क्या कोई राजा रईस भी करेगा, जितना उन्होंने किया। और यह सब उसी काँगरेसी होने की बरकत है।

उसका मन क्षण भर तक इन्हीं भावनाओं में भरा रहा। जैसे उसके मन के किसी कोने में एक हसरत जमा रही हो; काश, वह भी काँगरेसी होता।

किन्तु जेल से निकलने पर जब वह लोगों से पता पूछते-पूछते गंगा-घाट पर पहुँचा था तो रास्ते के बड़े-बड़े मकानों को देखकर वह हैरान होगया। 'इतनी बड़ी सड़क और एकदम पलस्तर की हुई। मिट्टी की सड़क पर भी लोग चल सकते थे और बहुत होता कंकड़ वाली पक्की सड़क बनवाली होती। जैसा कि उसके गाँव के कसबे की सड़कें हैं। कंकड़ की बनी हुई, और वह तो, जैसी इन लोगों की सड़क है वैसा तो गाँव में किसी के मकान का आँगन भी नहीं होगा। भला गाँव वाले क्या खाकर ऐसा पलस्तर किया हुआ आँगन बनवा सकते हैं ? वहाँ तो मुन्शी रामसरन सहाय ने अपने आँगन में ईंट बैठवा लीं और अपने बैठके पर पक्की टिपकारी करवा ली तो दस गाँव में शोहरत मच गई। लोग देखने के लिए आये कि कैसा मकान मुन्शी रामसरन ने बनवाया है। और यहाँ शहर में मकान-घर कौन कहे, यह सड़क भी पलस्तर की हुई है। सुनता तो बहुत था कि शहर में यह है, वह है। हमारे साले ने बताया था कि शहर में पाखाने तक पक्के होते हैं। उस समय विसवास नहीं होता था। पर अब तो अपनी आँखों देख रहा हूँ कि चलने के

रास्ते तक पर इन लोगों ने पलस्तर करवा रखा है।

और बड़े-बड़े मकान, ये सजी हुई दूकानें, सामान से भरी हुई। कहाँ से ये सामान आता है, कौन इतना सामान बनाता है और कौन इतना सामान खरीदता है। वह देख-देख कर हैरान हो रहा था। इसी तरह सोचता-बिचारता और हैरान होता वह गंगा जी पहुँचा। वहाँ के लम्बे चौड़े घाट देख कर तो वह हक्का-बक्का हो गया। 'भला इन्हें किस आदमी ने बनाया होगा। कितना खर्च लगा होगा। कहाँ से इतने रुपये आये होंगे। और अब जब उसने पार्क की खाली जगह में अपनी गीली धोती सूखने के लिए फैला दी, तो उसके दिमाग़ में वही विचार चक्कर काट रहे थे। भला कहाँ से इतना धन शहर में आ जाता है कि लोग इतने बड़े बड़े मकान बनवा लेते हैं, और इतना साफ़-साफ़ कपड़ा पहनते हैं। हमारे यहाँ तो दो-दो पुश्त लोग खपते हैं तब कहीं मकान बनवा पाते हैं। हमां-सुमाँ की तो खैर बात ही दूसरी है, धोती हुई तो गंजी नहीं, और गंजी हुई तो धोती नही, हम लोग तो मजूर आदमी ठहरे, बिना जगह जमीन के। दूसरों की घर-मजदूरी कर के एक जून नमक-रोटी पाजाते हैं तो अपना बड़ा अहोभाग्य समझते हैं। पर जो खाता-कमाता गृहस्थ है, जिनके घर में दो चार लोग है, एक आध परदेश निकल कर काम-धाम करते हैं, वे लोग भी तो दस-पाँच वर्ष खपते हैं, तब कही मकान-धाम बनवा पाते हैं और वह भी कच्चे गारे की जुड़ाई करवाते हैं और बस गाँव में शौहरत मच जाती है। पर यहाँ शहर में आकर कोई देखे तब उसकी आँखें खुलेंगीं। तब उनको मालूम होगा कि मकान किसे कहते हैं।

उसके मन में विचार-पर-विचार उठ रहे थे। 'भला कौन आदमी वहाँ रहते होंगे। इन मकानों में रहने वाले बड़े राजा-रईस होंगे, जमीदार बाबू होंगे, हाकिम अमला होंगे। भला साधारण मनई इनमें कैसे रह सकता है?

उसके ध्यान में आया कि इसी शहर में तो उसके गाँव का नाई भो

रहता है, उसके तो कपड़े कभी अच्छे नहीं देखे। क्या वह भी उन्हीं मकानों में रहता होगा ? पर वह क्या खाकर इन बड़े-बड़े मकानों में रहेगा। और हमारा एक साला भी तो इसी शहर में रहता है। लोगों के जूते बाँधता है, कौन वह बड़ा धन्ना सेठ हो गया है। मैं तो जानता हूँ। जैसी हमारी हालत थी, वैसी ही उसकी भी थी। वह क्या पाता होगा ? रुपया आठ आने, बस यही। और भी हमारे जानी पहचानी तो इसी शहर में रहते हैं, वह घुरबिन भी यहाँ इसी शहर में रहता है, सुनते हैं किसी कपड़े के कारखाने में काम करता है, रुपया बारह आना मजूरी पाता है। और देवसरन जो स्टेशन पर कुली का काम करता है। और वह भरथ कहार किसी मारवाड़ी के यहाँ चौका बासन का काम करता है। उसकी हालत तो मुझ से छिपी नहीं, खूब जानता हूँ। शहर से जाता था तो बहुत करता था दो चार दिन एक दो चिलम गाँजा पी लेता था और अपने साथियों को बटोर कर भी गाँजा भाँग पिला देता था। कपड़े तो वह साफ़ जरूर पहने रहता था, पर देखने में उसके लगते नहीं थे। किसी दूसरे के दिये मालूम होते थे। शायद उसके मारवाडी मालिक के रहते रहे होंगे। भला ये छोटे-छोटे आदमी इन मकानों में कैसे रहते होंगे ? ये मकान तो बड़े-बड़े लोगों के ही होंगे। भरत अपने मालिक की बड़ी तारीफ़ करता था। कहता था कि मारवाड़ी लोगों का धन दौलत में कोई क्या मुकाबला करेगा ? बड़े अगड्ड धनी हैं। उनकी लक्ष्मी का कोई ओर-छोर नहीं है। घी-दूध का तो यहाँ कोई मोल ही नहीं है, कनस्तर-के-कनस्तर घी खरीद कर लाते हैं, खाने पीने में इतने रईस होते हैं कि दूध पर की मलाई छान कर भरत को दे देते थे और खुद केवल दूध पीते थे। मलाई के लिए कहते थे कि वहचर्बी बढ़ाती है। और भरत तो यहाँ तक बताता था कि रोज रोटी में घी लगा कर खाते हैं। वह सुन कर हैरान हो गया था। यह तो तीज-त्यौहार को कड़ू तेल में दाल-भरी पूड़ी मिल जाय और इसके साथ कोंहड़ौरी की तरकारी मिले तो धन्य समझते हैं।

करमू के मन में भरत की ये बातें सुनकर बड़ा आश्चर्य होता था। और कभी-कभी तो वह सोचता था, शायद भरत झूँठ बोल रहा है। बढ़ा-चढ़ाकर बता रहा है कि कौन जाकर शहर में पता लगायेगा।

आज शहर के इतने बड़े-बड़े मकानों को देखकर उसने सोचा कि जरूर इन बड़े-बड़े मकानों में मारवाड़ी सेठ रहते होंगे। बड़े-बड़े राजा रईस रहते होंगे। शायद भरत का मालिक सेठ भी इन्हीं में रहता होगा।

इन्हीं विचारों के जाल में वह ऊलझा हुआ था कि इसी समय उसे जोर-जोर की आवाज़ सुनाई दी। उसे लगा जैसे उसके यहाँ गाँव में ईख बोते समय जय-जयकार बोलते हैं या माता माई की पूजा करते समय जयकार बोलते हैं, उसी तरह की गूंज की आवाज आ रही है।

कुछ आदमी सड़क पर से आ रहे थे, लम्बे-लम्बे झंडे उनके हाथों में थे और बड़े ज़ोर-ज़ोर से वह आवाज लगा रहे थे। दूर होने के कारण पहले वह कुछ नहीं समझ सका। आदमीयों के पास आने पर उसे मालूम हुआ कि कोई जुलूस है। जुलूस तो उसने अपने गाँव-देहात में भी देखे थे। कांगरेस का राज होने के पहले बड़े-बड़े जलूस उसने देखे थे। झंडे और उनके साथ गांधी महात्मा की जय-जयकार बोलते हुए लोगों का हजूम। वह तो खैर उसमें शामिल नहीं हुआ, क्योंकि अगर शामिल होता तो तिवारी के यहाँ का काम कैसे चलता। वह अक्सर खेत जोतता रहता, खेत में पानी देता रहता या और कोई काम करना रहता तो कुछ देर के लिए काम को करना बन्द कर देता, खड़ा-खड़ा जुलूस देखता रहता। उसके भी मन में आता कि वह उनमें शामिल हो जाये और वह भी महात्मा गांधी की जय-जयकार बोले। वह भी ज़ोर ज़ोर से भारत माता की जय मनाये। पर आखिर काम पर से वह जा कैसे सकता था। मन मसोस कर रह जाता था। और आज उसने दूर से आता हुआ आदमियों का हंगामा देखा तो पहले

तो उसने समझा कि शायद जैसे काली माई की पूजा का जुलूस हो, पर जरा भीड़ कुछ पास आगई तो उसने समझा कि यह तो काली माई की पूजा का नहीं, कोई दूसरा ही जुलूस है। पर यह जुलूस ऐसा नहीं था जैसा उसने देखा था, न ये लोग महात्मा गांधी की ही जय बोल रहे थे, खैर गाँधी जी मर गये, तो क्या पंडित जी की ही जय-जयकार बोलते, क्यों अब तो राजा वही हो गये हैं। उसे याद है कि जब जवाहरलाल राजा हुऐ थे तो गाँव-गाँव में जुलूस निकला था। गाँधी बाबा ने सुराज लेकर जवाहरलाल को दे दिया था, मुन्शीजी बताते थे कि गाँधी जी ने जवाहरलाल को अपना बेटा बना लिया है। उसने सोचा कि और न ये आदमी भारत माता की ही जय-जय कार मना रहे हैं। उस तरह के ये आदमी भी तो नहीं है। कितने भले-अच्छे जलूस लगते थे। सर पर सफेद गांधी टोपी, बगुले की पाँख की तरह सफेद खद्दर का कुर्त्ता, और आगे-आगे तिरङ्गा झण्डा। ऐसे लोग शहर से आते थे। उनके मुँह पर एक रौब रहता था। आंख मिलाने की भी हिम्मत नहीं पड़ती थी। बड़ा अच्छे गाते भी थे वे लोग। पर ये लोग तो बड़े विचित्र लग रहे हैं। यह क्या झण्डा है चौड़ा-चौड़ा, दो लट्ठे में जिसे बाँध कर दो आदमी पकड़े हैं और जाने उस पर क्या लिख मारी है? एक नहीं, दो नहीं, ये तो कई झण्डे इसी तरह लिये हुए हैं। और कुछ लोग लम्बा झण्डा लिये हैं। असली झण्डा शायद वही मालूम होता है। पर वह तो उन झण्डों की तरह नहीं है जिनको लेकर गाँवों में कांगरेसी लोग जुलूस निकालते हैं। उसमें तो तीन-तीन रंग हैं। पीला है, हरा है, सफेद है और कभी चरखा, और कभी गाड़ी के पहिए का फोटो उस पर बना लेते हैं। यह झण्डा तो बस एक रङ्ग का है, लाल-लाल। जैसा काली माई का एक रङ्ग का लाल झण्डा होता है। और इस पर वह कुछ तारे बनाये हैं। और बीच में खेत काटने वाला हँसिया और लोहारों वाला हथौड़ा।

हसिए की बनावट देख कर उसका मन ललचा गया। 'हमारे गाँव

का लुहार जो हँसिया बनाता है, वह इतना अच्छा नहीं बना पाता। शायद उसको लोहा अच्छा नहीं मिलता। कहता था कि स्टेशन पर का लोहा और रेल का कोयला लेकर बनाने मे बड़ा अच्छा हँसिया बनता है। पर तो भी वह ऐसा नहीं बना पायेगा'।

हँसिये का उसने काफी उपयोग किया था, ज्वार, बाजरा, धान, अरहर, सन, मकई, जौ, गेहूँ क्या नहीं हँसिये से उसने काटा था ? इस कपड़े पर बने हँसिये को देख कर उसका मन ललचा गया।

और इनके बदन पर के कपड़े। किसी का कुर्ता फटा है, किसी की कमीज फटी है, किसी की धोती फटी है और गन्दी अलग। भला शहर मे पहनने लायक हैं ये कपड़े ? सबके चेहरे गन्दे हैं। किसी के हाथ मे कालिख और तेल लगा है। किसी के हाथ जैसे रंग में रंगे-रंगे हैं। मोटे-मोटे हाथ पाँव हैं। ये तो हठी लोगों की तरह के आदमी मालूम होते हैं, न देखने में हमसे अच्छे, न सुनने में। जैसे हमारे कपड़े होते है, जैसे हमारा देह-तन होता है ठीक वैसे ही ये भी हैं। ये क्या इन बड़े-बड़े मकानों मे रहते होंगे ?

जुलूस अब करमू के सामने सड़क पर से गुजर रहा था, इसलिए उन आदमियों को वह बड़े गौर से देख रहा था। अब उनकी बातें भी उसे साफ़ सुनाई दे रही थी, उनमें जो लोग आगे-आगे चल रहे थे, उनकी मुट्ठियाँ बधी हुई थीं। उनके चेहरे पर जो तनाव था, वह भी करमू स्पष्ट रूप से बोध कर रहा था। और ये चिल्ला-चिल्ला कर बोल क्या रहे हैं: मजदूरों का राज हो, किसानों का राज हो। यह अन्धेर नही चलेगा। रोटी, कपड़ा, मकान दो।

अब तो करमू नही समझ सका। लेकिन जो कुछ उसने समझा उस मे उसे यह अच्छी तरह मालूम हो गया कि ये लोग किसी कारखाने में काम कर रहे हैं, अपने मालिकों से तनख्वाह बढ़वाना चाहते हैं। रहने के लिए मकान माँगते हैं, शायद इनमें से कुछ लोग काम पर से निकाल दिये गये हैं, उन्हें ये फिर से काम पर रखवाना चाहते हैं।

अन्य बातों का तो करमू के हृदय पर उतना असर नहीं हुआ, क्यों कि उसने सोचा कि मालिकों का अपना धन है, उनकी अपनी दौलत है, उनका अपना कारबार है, जितना सपर रहा है, उतनी तनख्वाह देते हैं और अधिक वे कैसे दे सकते हैं ? कहते हैं कि तुमने गरीबों को रोटी नहीं दी, कपड़ा नहीं दिया, रहने को मकान नही दिया, इसलिए राज करना छोड़ दो। तो क्या यह राज करना गरीबों को कपड़ा देने के लिए है, उनके काम देने के लिए होता है, उनके लिए मकान बनवाने के लिए है। भला ऐसा कभी किसी ने किया है, राज करने वाला तो राजा होता है, चाहे वह कोई भी हो, राजा की मरजी, जैसा चाहे वैसा राज करेगा। पहले अंगरेज का राज था, वह कुछ लोगो को नौकरी देता था, फौज में, पुलिस में, कचहरी में, सब जगह वह आदमी नौकर रखता था। पर जितने आदमी की दरकार होती रही होगी उतने ही आदमी तो नौकर रखता रहा होगा। अब गाँधी बाबा ने अंगरेजों से राज छीन कर काँगरेस को दे दिया तो कांगरेस भी तो वही करेगी जो राजा करता है। जैसा पहले अंगरेज करते थे, कांगरेस ने भी तो लोगों को नौकरी दी है। पुलिस, फौज, कचहरी सब जगह तो उसने भर दिया है। अब आगे वह कहाँ से लोगों को नौकर रख कर तनख्वाह देगी ?

'रही बात कपड़ा देना, खाना देना, और मकान। सो भला सरकार यह काम किस लिए करेगी ? हमने तो कभी नही सुना कि सरकार कपड़ा और खाना भी देगी। अभी तक तो हम यही देखते आ रहे हैं कि सरकार के आदमी को ही लोग खाना पीना देते रहे है। थानेदार आता है, चौधरी खुशहाल के दरवाजे पर ठहरता है तो खाना-पीना, दूध-दही से चौधरी उसे बोर देता है। बड़े-बड़े हाकिम हुक्काम जब गाँवोंमें अपना राज-काज देखने आते हैं तब सारा गाँव उनके लिए खाने पीने का सामान जुटाते जुटाते परेशान हो जाता है। मजदूर अलग बेगार करने के लिए पकड़ लिए जाते हैं, यही पहले भी होता था और अब

भी यही होता है। यह तो गाँव-देहात के लोग ही सरकार को खिला-पिला रहे हैं। उलटे यहाँ सुन रहे हैं कि सरकार खाना, कपड़े का इन्तजाम करे। सरकार कोई खेतीबारी करती है कि कोई कल कारखाना चलाती है, जो सब के लिए खाने पहिनने का प्रबन्ध करे।

और यह मालिकों से जबरदस्ती की बात! क्या जबरदस्ती उनसे मजदूरी वसूल की जायेगी? जबरदस्ती क्या उनके यहाँ काम दिया जायेगा? मालिक की मरज़ी, काम दे, न दे। कोई कौन होता है बोलने वाला? बड़े-बड़े सन्त महात्माओं ने कहा है कि मालिक की इच्छा भगवान् की इच्छा होती है। मालिकों के मुँह से भगवान् ही बोलता है। क्या इसमें अजाब नहीं पड़ेगा, मालिक के खिलाफ़ चलना। हमारे गाँव के फकू पण्डित कितने बड़े जानकार हैं, उन्होंने सभी पोथे-पुरान पढ़ रखे हैं। सुनते हैं उन्होंने इतना अधिक पढ़ लिया था कि एक बार पागल हो गये थे। शायद किसी की खोपड़ी का बल लेख उन्होंने पढ़ लिया था, ऐसे पढ़ाक हैं वे, और वे पण्डित जी कहते थे कि जो अपने मालिक के खिलाफ़ जाता है, उसके काम को बिगाड़ता है, उसके कहने को नहीं मानता, वह सीधा नरक को जाता है। जाने किस नरक का नाम वह ले रहे थे, अच्छा भला सा नाम था, हाँ, कुम्भी नरक। पण्डित जी सुना रहे थे कि वहाँ आदमियों को गर्म तेल में खौलाया जाता है। आरे से उसका शरीर सर पर से आधे-आध चीर कर रख दिया जाता है। खाने के लिए निखिद्ध चीजें मिलती हैं। जो मालिक की हुकुम अदूली करते हैं, उसे तो अवश्य करके यही भयानक नर्क मिलता है। मालिक और भगवान् दोनों बराबर होते हैं।'

किन्तु ये आदमी कैसे हैं जो अपने मालिकों के खिलाफ़ भी ज़ोर ज़ोर से चिल्ला रहे हैं। इन्हें क्या अपने धर्म-कर्म का ख्याल नहीं है? इनको क्या अपने पूर्वजन्म के बिगड़ने का भय नहीं है? इन्हें क्या नर्क में पड़ने का डर नहीं?

किन्तु उनकी बातें पर उसका मन अटक गया। 'उन बातों में कुछ

ऐसा आकर्षण था कि नर्क की तमाम भावना और पूर्वज बिगड़ने की आशंका के बावजूद मन बार-बार उधर खिंच जाता है। बार-बार उसके मन में यह वाक्य टकरा जाते, काम पर वापस लो। रोटी दो, कपड़ा दो, काम पर वापस लो।'

उसके मन में विचारों की एक श्रृंखला जुड़ने लगी। आखिर वह भी तो काम पर से छुड़ा दिया गया है। वह भी तो तिवारी के यहाँ दो पुश्त से काम करता आ रहा था। और उसे भी काम पर से अकारण हटा दिया गया था। इस काम-धाम के छूट जाने के कारण ही तो उसे बुखार आ गया था। इसी काम पर से हटने के कारण ही तो जब घर में दाने नहीं रह गये, तब बीमारी में जूस देने के लिए पाव भर चावल माँगने जगनी तिवारी के घर गई और जब वहाँ से कुछ नहीं पा सकी तो रास्ते में तिवारी के खलिहान से धान उठा लिया था, जिसके लिए बेचारी पर इतनी मार पड़ी कि उसका पेट तक गिर गया और खुद मरते-मरते बची। काम पर से अगर वह नहीं हटाया गया होता तो क्यों वह चौधरी की संगत में पड़ता? क्यों वह चौधरी के साथ मिलकर बैलों की चोरी करता? और क्यों उसे जेल काटनी पड़ती? क्यों कुल में दाग लगता और लोक-परलोक दोनों ही बिगड़ता?

करमू सोच-समझ नहीं पाया। आखिर यह क्या बात है? ये कैसी दोहरी बातें हैं? एक तरफ़ पंडितजी हैं, शास्त्र-पुरान है, और सदा से चले आये रीति-रिवाज हैं और एक और ये लोग हैं जो सबसे अलग बात कह रहे हैं; जो सबसे विचित्र बात कह रहे हैं; जो सबसे नई रीति चलाना चाहते हैं।

इनकी बातें सुनने में तो बड़ी अच्छी लगती हैं, कितनी अच्छी बातें कहते हैं: सब को 'रोटी दो। सबको काम दो, काम से छुड़ाये हुए लोगों को फिर से काम पर रखो।'

उसके मन में आया 'अगर वह काम पर फिर से रख लिया जाय

तो ? तो कैसा अच्छा हो ? अभी क्या बिगड़ा है, हमारे पास बिगड़ने के लिए था ही क्या ? केवल यह शरीर ही तो अपना था, कुछ कमज़ोर ज़रूर हो गया, पर अगर फिर काम-धाम मिल जाये, फिर काम करने लगूँ, फिर जगनी काम करने लगे और फिर बापू घड़ी दो घड़ी छोटा-मोटा काम-मज़दूरी करने लगे तो जिन्दगी पहले जैसे गुजरती थी, गुजरने लगे। काम छूटने पर जैसे दो-दो दिन मुँह में दाना नहीं जाता था, वैसा तो नहीं होगा। कुछ न होगा तो एक जून तो सत्तू-पानी मिल ही जायेगा। इतना ही क्या कम है हमारे ऐसे लोगों के लिए ? जिनके पास न जगह-ज़मीन है, न माल-मिलकियत है, न बाप-दादों के समय की कोई मौरूसी है, न रहने के लिए कोई घर है और न गाय-बैल-भैंस हैं। उन हमाँ-सुमा को दिन में एक बार भी पेट में डालने के लिए दाने मिल जायें और तन बदन ढकने के लिए फटा पुराना कपड़ा, किसी का उतारा भी मिल जाये तो क्या कम भाग्य की बात है ?

एक अव्यक्त भावना के वशीभूत होकर करमू उठ खड़ा हुआ। अपनी धोती जो उसने सूखने के लिए डाल रखी थी, उसे समेट कर कन्धे पर रख लिया और जुलूस के साथ-साथ, एक तरफ़ हट कर चलने लगा। उसके मन में आया : ज़रा देखे वे कहाँ जाते हैं, क्या करते हैं ?

जुलूस के साथ-साथ एक किनारे हट कर इस तरह वह चल रहा था जैसे कोई भूखा लड़का किसी के हाथ में मिठाइयों का थाल देखे और आकर्षित होकर उसके पीछे-पीछे चलने लगे। किन्तु भय के मारे पास जाकर उसे छूने की हिम्मत न करे।

: ६ :

जुलूस के पीछे-पीछे करमू चलता रहा। पहले तो वह एक आशंका और भय से, एक अपरिचय और अनजानेपन की भावना के भय से जुलूस की बगल से चल रहा था। जुलूस के आदमी दो-दो

की दोहरी कतारों में चल रहे थे। जुलूस से जो नारे उठ रहे थे, वह करमू को बड़े भले लग रहे थे, बड़े लुभावने मालूम हो रहे थे, जैसे कोई उसके ही मन की बात कह रहा हो; जैसे यही बात उसके मन में किसी परदे के पीछे छिपी थी, पर जिसे कभी भी उसने सुना समझा नहीं था, जिसका हलका आभास भी उसके दिमाग़ में नहीं आया था। जिसकी कोई रूप-रेखा की झलक भी उसके दिमाग़ में नहीं आई थी। यद्यपि वह बात ठीक उसी की थी, ठीक उसके मन में समाई हुई थी। जैसे अबोध शिशु भूख के कारण रो रहा हो, उसका शरीर छटपटा रहा हो और वह स्वयं नहीं जानता-समझता कि वह क्या चाहता है, क्यों वह रो रहा है? क्यों वह परेशान है, और माँ उसके मुँह में अपना स्तन लगा देती है। बच्चा चुप हो जाता है। उसे बोध होता है, ठीक यही चीज़ जिसकी उसे आवश्यकता थी। उसका प्राण मौन मूक जैसे परम सन्तुष्टि की भावना से भर उठता है। और उस सन्तुष्टि की भावना उसके मुँह पर उभर आती है। इसी तरह करमू को लगा कि ठीक यही भाव उसके मन-प्राण में समाये हुए थे।

अनजाने ही वह भी जुलुस की पाँत में शामिल हो गया। उसे पता भी नहीं चला कि कब वह जुलुस की, बगल की जगह को छोड़कर, पांत में आकर शामिल हो गया। कब वह जुलुस के साथ-साथ कदम पर कदम मिलाकर चलने लगा। कब वह अपनी गैरजानकारी में ही जुलूस का एक अभिन्न अंग बन गया।

जब उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ तो वह जुलूस की पंक्ति के साथ-साथ चल रहा था। क़दम पर कदम मिलाता हुआ, एक दम नपे तुले, सधे क़दम, जैसे वह भी जुलूस का एक अंग हो।

वह जुलूस का एक अंग बन चुका था। जाने कैसे, किन भावनाओं से, वह अभी उनके नारे लगाने में शामिल नहीं हुआ था, केवल उनके साथ एक अजनबी अनजाने किन्तु दुर्निवार आकर्षण के सहारे आकर

साथ-साथ चलने लगा तो उसके मन में आया कि आवाज़ बुलन्द करे। परन्तु उसका साहस नहीं होता था। उसके सामने जैसे संकोच और अनजानपन की एक दीवाल खड़ी हो जाती थी। जाने कौन हैं ये ? कहाँ के रहने वाले है, कहाँ काम करते हैं, क्या काम करते हैं।

परन्तु उस समय भी उसे यह स्पष्ट लग रहा था कि यद्यपि इन आदमियों से कभी भेंट-मुलाकात नहीं हुई तो क्या, कभी इनसे सुख-दुख में बातचीत नहीं की तो क्या, कभी इनके साथ उठे बैठे नही तो क्या, पर जैसे इनका चेहरा जाना-पहिचाना हो, जैसे इनकी बात कानों को जानी-पहिचानी हो और सब से बड़ी बात कि जैसे इनके हृदय की धड़कन उसके हृदय की धड़कन हो, ठीक उन्हीं भावों को व्यक्त करने वाली। और साथ ही ये जो इतने सारे आदमी साथ चल रहे हैं वे सभी किसी-न-किसी आफ़त-विपत में पड़े हैं। वे किसी न किसी परेशानी में पड़े है वे सभी दुर्दिन और दुर्भाग्य के मारे हुए हैं, वे सभी जमाने के सताय हुए हैं। उनके कपड़ों से, उनके शरीर के ढाँचे से, उसे यह अच्छी तरह समझ में आ रहा था कि ये आदमी खाते-पीते आदमी नहीं है। ये आसूदा आदमी नही है, ये उसी के तरह के आदमी हैं। हो सकता है, मुझसे कुछ अच्छी-अच्छी स्थिति के हों। शायद हमारे साले की स्थित के हों, जो मोची का काम करता है, और जूते बाँधता है। शायद उस घुरबिन शरीखे हों जो यही किसी मिल में काम करता है। शायद देवसरन की स्थिति के हों जो स्टेशन पर कुली का काम करता है। शायद उस भरत की स्थिति के हों जो कि किसी मारवाड़ी सेठ के यहाँ चौका-बासन माँजने का काम करता है। शायद इनमें वे भी हों। इतने आदमियों के हुजूम में कहाँ पता लगेगा ? या हो सकता है कि कुछ खाते-पीते लोग भी हों, पर यह बात तय है कि ये आदमी राजा बाबू नहीं ह, सेठ महाजन नहीं हैं, हाकिम हुक्काम नहीं है। और जो ये लोग रोटी कपड़े की माँग में चिल्ला रहे है, नौकरी पर फिर रखे जाने के लिए चिल्ला रहे हैं, अगर इनका पेट भरा

होता, इनको पहिनने के लिए कपड़े मिलते रहते, तो फिर क्यों इस तरह वे घूम-घूम कर रोटी-कपड़ा चिल्लाते ? कौन ऐसा है, जो अपनी बे-इज़्ज़ती कराता है। जिसका पेट भरा रहेगा वह क्यों लोगों के सामने खुले आम सड़क पर रोटी-रोटी चिल्लाकर अपनी और भी बेइज़्ज़ती करायेगा। यह तो मैं अपने से ही समझ सकता हूँ, कि एक जून उपवास करने पर भी तो हिम्मत नहीं पड़ती थी कि किसी के सामने मुँह खोलूँ। किसी से कहूँ कि हमारा पेट जल रहा है। जब अति हो गई होगी तभी तो ये लोग इस तरह परेशान हैं। मैंने ही, एक जून उपास किया, दो जून उपास किया और तब भी नीयत नहीं डोली। पर जब भूख से हमारा सारा घर परेशान हो गया तब चाहे कुछ भी किया हो, तभी तिवारी के बैल खोलने की नौबत आई। जब भूख के मारे आत्मा विकल हो गई, तभी पाप सूझने लगा था, नहीं तो कभी मन डिगा ही नहीं। अगर हमारा मन न रहा होता, तो चौधरी कोई जबरदस्ती हमसे थोड़े ही बैल खुलवा लिए होता। पहले भी तो उसने कई बार इशारे किये थे। दूसरे लोगों ने भी तो कहा था कि तिवारी का खलिहान उठवा दो, तुम्हें भी कुछ मिल जायेगा। तिवारी के खेत से बोझ ढो कर लाते समय दो-चार बोझ हमारे खलिहान में पटक दो, कुछ-न-कुछ तुमको मिल ही जायेगा। पर हमारा एक जून पेट भर ही जाता था इसलिए उधर मन गया ही नहीं। मरता क्या न करता। बड़े-बड़ों का मन डोल जाता है, मेरी क्या बिसात थी, मैं तो खोटी जात का ठहरा। पूर्वजों के पुन्न-धरम से अपनी सेत पर टिका हुआ था। और तो और वह जो रामकली थी, अभी मरे उसे कितने दिन हुए ? हमारे लड़कपन की ही तो बात है, अच्छी तरह याद है, बेचारी राँड़-रेवा थी, भले अच्छे खाते-पीते घर की। और जात की ब्राम्हन। जब फेकू पंडित ने उसका सारा हिस्सा हड़प लिया तो वह दाने-दाने को मरने लगी। आखिर क्या करती बेचारी ? जात-बेजात. जिसका मिला, उसका छुआ खाने लगी। नहीं तो बापू बताते थे कि

जब उनका आदमी जिन्दा था तब यह इतने नेम धरम से रहती थी कि लकड़ी-ईंधन को भी पानी छिड़क कर शुद्ध कर लेती थी। तब कहीं चौके में ले जाती थीं। परन्तु जब दिन बिगड़े तो छतीसों जात का छुआ खाने पीने लगी। यह पेट किसी का नेम-धरम बचा रहने दे तब तो!

कुछ देर तक के लिए करमू जैसे स्तब्ध-सा हो गया। वह जुलूस के साथ-साथ चल रहा था, किन्तु उसके पैर जैसे एक आदत से चल रहे हों। उसके मन में विचारों का क्रम चलता रहा :

ये लोग भी तो परेशान हो गये होंगे; तब इस तरह सड़क पर गली-गली में घूम-घूम कर रोटी-कपड़े के लिए चिल्ला रहे हैं। ये तो खैर अच्छे आदमी मालूम होते हैं, कोई कुकर्म तो नहीं कर रहे, केवल लोगों को सुना रहे हैं कि हम भूखे हैं। हमारी तो नीयत ही डोल गई थी और मैंने निवारी के बैल खोल लिये। पेट जलता है तो आदमी क्या नहीं करता, वह जो हमारे घर की बगल में बिपतू दुसाध है, बेचारा कितना सीधा-साधा था। हमारे साथ का तो खेला खाया है, हमारा हमजोली है, कितना सीधा था छोटा था तो गऊ की तरह किसी के खेत से एक छीमी भी तो नहीं तोड़ता था। और किसी के बगीचे से कभी आम और बेर तक नहीं तोड़ता था। उसके पास दो बीघे ज़मीन थी। साझे में खेती कर लेता था। थोड़ी बहुत मजदूरी कर लेता था और उसमें मजे में अपना गुजर बसर करता था। उसका नेम-धरम देख कर कुछ लोग तो कहने लगे थे कि वह घर-बार छोड़कर साधू-महात्मा हो जायेगा। पर न जाने किस कुसाइत में मुन्शी रामसरन से उसने दस-पाँच रूपये उधार लिए थे कि उसका तो सर्वनाश ही हो गया। वह मुन्शी जी बनते तो बड़े महात्मा हैं। सबेरे उठकर नहाते हैं। पूजा पाठ करते हैं और तिलक ऐसा चटकार कर लगाते हैं कि क्या कोई महात्मा भी वैसा तिलक लगायेगा। पर है पूरा कसाई। न जाने कागज़ पर क्या लिख रखा था और बेचारे बिपतू से

उस पर अंगूठा लगवा लिया। उस बेचारे को क्या मालूम कि यह हमारा गला काट रहे हैं। कहा तो मुन्शी जी ने यही था कि दस रूपया तुम ले रहे हो, उसका दस्तखत दे दो। इस तरह याद रहेगा, नहीं भूल-भाल जायेगा। कितनी ही जगह रूपये देकर भूल गया। वह बेचारा उनकी बातों में आ गया। न जाने क्या किया उन्होंने कि सूद-पर-सूद लगा कर सैकड़ों रूपये उस पर लाद दिया और इधर-उधर से फँसा दिया कि बेचारे को अपना एक बीघा खेत बेचना पड़ा। फिर एक बीधा बचा था सो वह भी उसके हाथ से चला गया। यह करतूत गजराज सिंह की थी। बहुत लम्बा दास्तान है और इस तरह से वह बेचारा दाने-दाने को मुहताज हो गया। उसकी औरत जाकर दूसरे के घर बैठ गयी। एक लड़का छोटा था, वह भी उसी के साथ चला गया और बिपतू पक्का चोर हो गया। काम तो उसने ठीक नहीं किया, पर जब वह भूखों मरने लगा तो दूसरों के खेत से मटर उखाड़ने लगा था, खलिहान से अनाज उठाने लगा था, खेत से अनाज काटने लगा। शुरू-शुरू में तो ऐसी ही छोटी-मोटी चोरियाँ उसने कीं और ऐसा तो सभी कर लेते हैं। जिसका वश चलता है, नज़र बचाकर हाथ मार देते हैं। यहीं तक रह जाता तो किसी क़दरगनीमत थीं। पर बिपतू की सङ्गत मुसहरों से हो गयी और फिर क्या था, वह पायल चोर होगया। सुनते हैं अब तो वह इतना सच्चा चोर है, कि दिन दहाड़े घर में घुस जाय और सामान निकाल लाये। न जाने कैसे-कैसे औजार रखता है कि मोटी-से-मोटी दीवाल में सेंध लगा देता है। कई-कई बार जेल भी गया, मारा-पीटा भी गया, पर उस पर कोई असर नहीं हुआ। अब तो उसे लगता है कि कोई बहुत अच्छा काम कर रहा है। वह कैसा बखान करके बात बताता रहता है। अब की बार जब वह जेल से छूट कर आया था तो अलाव तापते-तापते हम सब लोगों से बता रहा था कि वह शहर में भी चोरी करने चला जाता है। तीन-तीन दिन तक एक-एक कोठी में छिपा रह जाता है, और

कोई उसका सुराग नहीं पा सकता। बड़े गर्व से ये बातें बताता है।

राम जाने, सच या झूठ, पर वह तो यहाँ तक कहता था कि एक बार थानेदार से भी उसकी बाज़ी लगी थी। थानेदार से उसने बाजी बदी कि हम थाने में से सामान चुरा लेंगे और थानेदार ने कहा था कि हम ऐसे-वैसे थानेदार नहीं हैं। आदमी तो क्या, भूत भी हमसे बचकर निकल नहीं सकता। अगर तुम थाने से सामान चुरा लो तो हम उसी दिन से थानेदारी करना छोड़ देंगे। और ठीक उसी दिन के दूसरे दिन सबेरे बिपतू थानेदार साहब के सामने खड़ा हो गया। और सलाम करके उनके सामने एक घड़ी रख दी। थानेदार साहब ने देखा तो अवाक रह गये और फिर उसकी पीठ ठोक कर कहा "शाबाश बिपतू, तू अपने फ़न का उस्ताद है।"

करमू को याद आया कि कैसे बिपतू की इस बात को सुनकर उसने कहा था कि पुलिस-थानेदार से तुम इस तरह बातें करते हो। उन्हीं का सामान चुराकर उनके सामने खड़े होते हो तो किस तरह बिपतू ने हंसकर कहा था 'तुम इसे नहीं समझोगे। घोड़ा घास से यारी करेगा तो खायेगा क्या? थानेदार पुलिस जब सब चोरों और डकैतों से दुश्मनी कर लेंगे तो थानेदारी क्या करेंगे? फिर तनख्वाह से जो रूपल्ली मिलती हैं उनसे तो मियाँ-बीबी का पेट भी नही भरेगा।'

मेरा तो मन उससे घृणा से भर जाता था। चोरी-चमारी कोई धरम का काम थोड़े ही है जो इस तरह से वह मजे ले-लेकर सबको सुनाता था जैसे कोई लड़ाई जीत कर आ रहा हो। एक बार तो उसने बताया कि वह तीन तरफ़ से आदमियों से घिर गया और आगे नागफनी की बाढ़ लगी हुई थी। कोई पाँच-सात हाथ चौड़ी और ऊँची। आदमी तो क्या, हिरन भी छलाँग मार कर पार नहीं जा सकता। जब भागने का कोई रास्ता नहीं रह गया तो वह उस नागफनी की बाड़ को छलाँग मार कर कूद गया और पीछा करने वाले सारे आदमी

खड़े-के-खड़े रह गये। भला कौन ऐसा जवाँ मर्द होता कि उस बाड़ को पार कर सकता। और उसे पार करके वह ठहर गया था। उसने ललकारा कि जो अपनी माँ का दूध पीने वाला हो वह आ जाय पार, और फिर हम आज से चोरी करना छोड़ देंगे। ऐसा पक्का और साहसी चोर हो गया है वह। इसी को कहते हैं 'बड़ियरा चोर सेंध में गावे।' पर अभी दस वर्ष की भी तो बात नहीं है कि उससे बढ़ कर नेम-धर्म वाला हमारे पूरे इलाके में कोई नहीं था। सन्त-महात्मा भी उसकी तरह क्या रहते होंगे। और अब जैसा चोर वह हो गया है वैसा चोर भी दस गांव में कोई क्या होगा? जिनकी उसने शागिर्दी की थी, वह अब उसे अपना गुरू मानते हैं। कहते है कि गुरु गुड़ ही रह गये और चेला शक्कर हो गया।

लेकिन यह बात मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि अगर उसके खेत उसके हाथ से नही निकल गये होते, अगर वह दाने-दाने को मुहताज नहीं हो गया होता तो वह पराई चीज़ की तरफ़ आँख उठाकर भी नहीं देखता, हाथ से उसे छूना तो बात ही दूसरी थी। और यह सब किया कराया है, मुन्शी जी का। ये जो लोग बड़े बड़ुआ बनते हैं, बस कहने भर को ही बड़े बड़ुआ हैं, नहीं तो उनके पेट में हाथ भर की पैनी छुरी है, कब किसे पायें और गला रेत दें। मैं तो कहता हूँ कि मुन्शी जी की नज़र बिपतू पर न पड़ी होती तो वह कभी भी कुपथ पर पैर न रखे होता, कभी भी इस तरह चोर चंडाल न हुआ होता। और वह बूढ़ी औरत सम्पत की माँ बेचारी पागल हो गई है। गली-गली घूमती है। उसका मरद मर गया, जवान बेटा उठ गया। उसको इस बिपतू में पड़े देख उसके दामादों ने भी उसे दाग दिया। जो कुछ लेई पूंजी थी वह भी उसके हाथ से निकल गई और वह बेचारी पागल हो गई।

करमू के सामने जैसे वह बूढ़ी पागल औरत आकर खड़ी हो गई और वह सिहर उठा।

उसका मन हटकर फिर जुलूस के आदमियों पर आ अटका । ये लोग भी तो बिना काम-धाम के हो गये हैं, बे रोटी कपड़े के होगये हैं, बे घरबार के होगये हैं । इसीलिए ये इस तरह अपने मालिकों के खिलाफ़ हो गये हैं। उसके मन में आया वह स्वयं भी तो वे घर-बार का हो गया हैं, बे आसरे का हो गया है । जगह-ज़मीन तो उसके पास खैर कभी नही रही, अपना तन ही था, परिश्रम करके गुज़र-बसर चला लेता था । पर जब मेहनत मजूरी करने का भी कोई आसरा नहीं रह गया तो वह कुमार्ग पर आगया और चोरी तक पर उतर आया। और अब जब वह जेल से छूट कर आ गया है तो फिर बेकार है, घर जायेगा तो क्या करेगा ? क्या काम-धाम करेगा, अब तो उस पर दाग भी लग चुका है । कौन उसे काम पर रखेगा ?

उसके कानों में ज़ोर की आवाज़ गूँज पड़ी । नारे के गगन-भेदी स्वर ने जैसे उसे चौंका दिया हो : काम पर वापिस लो, काम पर वापिस लो ।

एक प्रबल भावना उसके मन में आई :

अगर वह फिर अपने काम पर वापिस ले लिया जाय तो, तो कैसा रहेगा ?

एक अव्यक्त खुशी उसके चेहरे पर फूट पड़ी, उसकी आँखों में एक चमक आगई । तो अभी क्या बिगड़ा है, अगर वह काम पर फिर आ जाय, तो साल भर में फिर वही पुराना ढर्रा हो जाय, फिर उसी तरह ज़िन्दगी की गाड़ी चलने लगेगी, फिर उसी तरह जगनी हमारे साथ खेत पर काम करने जाने लगेगी । फिर बापू को भी घड़ी-दो-घड़ी का छोटा-मोटा काम मिल जायेगा और तब दोनों जून न सही तो एक जून तो पेट में दाने जाँयगे ही ! फिर किसी की ओर नज़र उठाने की ज़रूरत नहीं रह जायेगी । फिर वही हँसी-खुशी के दिन लौट आयेंगे । फिर वही क्रम चलेगा, सन्ध्या को काम से लौटकर वह हुक्का चढ़ा कर अपने बापू को देगा । उसकी स्त्री रोटियाँ पकाती रहेगी, उसकी बेटी

आँगन में उछल-कूद करती रहेगी और हुक्का पीते हुए बापू पुराने ज़माने की बातें कहते रहेंगे। अपने बाबा के समय तक की बातें याद हैं। तब की बातें वह सुनाते रहते हैं जब कि रेल भी नहीं चली थी। यह मोटर गाड़ी तो थी ही नहीं। हवाई जहाज़ का तो नाम नहीं सुना था। वे तो यहाँ तक बताते हैं कि पहले यह गंगाजी पर शहर-बनारस में पुल नहीं था। नाव चढ़कर पार करते थे और फिर जब पुल बनाया गया तो सरकार पुल पर से जाने वालों से एक-एक पैसा टिकट का वसूल करती थी। और भी बहुत सी बातें बापू को याद हैं, जो उन्होंने बाबा के मुँह से सुनी हैं।

इन कल्पनाओं में करमू के मन में एक उल्लास का स्वर गूंज पड़ा। उसे लगा कि अभी साल भर दुर्दिन का दिन जो गुजरा है वह तो जैसे एक दुस्वप्न की तरह था। और उन्मत्त की तरह जुलूस वालों के साथ उसने भी गगन-भेदी स्वर में आवाज़ बुलन्द की :

"काम पर वापिस लो, काम पर वापिस लो। रोटी दो, कपड़ा दो, दुनियां के मेहनत कशो एक हो।"

: १० :

शहर की गलियों और सड़कों पर चक्कर लगाकर अन्त में जुलूस एक पार्क में एकत्रित हुआ और सभा के रूप में परिणत होगया। करमू भी जुलूस वालों के साथ एक तरफ़ बैठ गया। उसे यह ख्याल भूल गया कि अभी-अभी वह जेल से छूट कर निकला है, सो भी चोरी करने के अपराध में जेल गया था। उसे यह भी भूल गया कि किस तरह जेल से निकलने पर उसके मन में पश्चाताप की भावना उठी थी। किस तरह उसने यह निर्णय किया था, शपथ लिया था कि अब चाहे जो कुछ भी हो वह किसी का विरोध नहीं करेगा, किसी का प्रतिरोध नहीं करेगा, किसी का अहित नहीं करेगा। वह चाहे उसका दुश्मन ही क्यों न हो, उसने चाहे उसका सर्वस्व ही क्यों न नष्ट कर दिया हो, वह किसी से भी बदले की भावना नहीं रखेगा। फिर उसने यह भी निश्चय

किया था कि मालिकों का विरोध वह कभी नहीं करेगा। तिवारी के साथ जो उसने व्यवहार किया था उस पर उसे बहुत पश्चाताप हुआ था। यहाँ तक कि तिवारी ने उसे जो काम पर से निकाल दिया था, जो उसकी स्त्री को पीट-पीट कर मरणासन्न कर दिया था, उसके प्रति भी उस समय उसने तिवारी के प्रति कोई दुर्भावना नहीं रखी थी। उस समय उसका मन पश्चाताप की भावना से भरा था, उसे लगा था कि जो कुछ दूसरे कर रहे हैं उस तरफ़ उसे नजर डालने की ज़रूरत नहीं है, ज़रूरत उसे सिर्फ इसी की है कि वह स्वयं कैसा है। दूसरे जसा करेंगे उसका फल वे भोगेंगे। उनसे बदला लेने वाला वह कौन है ?

किन्तु इस समय उसके मन में दूसरी ही बात उठ रही थी। उसके मन में बार-बार विचार आ रहे थे कि ये जो इतने लोग जमा होकर अपने मालिकों से काम पर रखे जाने की माँग कर रहे हैं क्या ये सही नहीं है ? ऐसा करके क्या ये सभी गलत रास्ते पर जा रहे हैं ? क्या ये इतने सारे आदमी अच्छे नहीं हैं, जो इस तरह अपने मालिकों के खिलाफ़ उठ खड़े हुए हैं ? तो क्या ये सभी बुरे आदमी हैं ?

इन भावनाओं से प्रेरित होकर अपने आस-पास बैठे लोगों पर उसने एक नज़र डाली। उसे जहाँ तक वह दीख सकता था, सभी चेहरों पर चोरी-चमारी करने वालों के से लक्षण नहीं मालूम हुए। किसी के चेहरे पर भी उसे बदमाशों के चेहरे का सा भाव नहीं लगा। बुरे काम करने वालों का मुँह क्या किसी से छिप सकता है ?

सभी के चेहरों पर से उसकी नज़र गुज़रती हुई, आकर अपने पर टिक गई। उसे बोध हुआ कि चोर बदमाश तो नहीं पर सभी के चेहरे दुर्दिन के मारे लग रहे हैं, चिन्ता और परेशानी की छाप इनके मुँह पर पड़ी हुई है। उसने देखा कि इनमें सभी आदमी तो प्रायः उसी की तरह के हैं। कोई भी प्रसन्न नहीं मालूम होता। किसी के चेहरे पर भी आसूदगी के लक्षण नहीं मालूम हो रहे। किसी का भी तो मुँह देखने से यह प्रतीत नहीं होता कि यह भविष्य की चिन्ता से युक्त

है। सभी के चेहरों पर चिन्ता की रेखाएँ खिचीं हुई हैं, सभी के मन-प्राण पर एक बोझ पड़ा हुआ है। सभी रोटी और कपड़े के लिए परेशान हैं, सभी भविष्य के लिए जीवन क़ायम रखने के लिए व्यग्र प्रतीत हो रहे हैं। कुछ यही भाव उसके मन में उठ रहे थे, यद्यपि इन भावों को वह मूर्त्त रूप देने में असमर्थ था, किन्तु उसके इसी तरह के भाव थे।

उसके मनमें सवाल उठ खड़ा हुआ, तो इस बड़े शहर में, इन ऊँची-ऊँची अटारियों के बीच में इनका कहाँ बास है, कहां रहते हैं। कैसे खाते-पीते है, कैसे जीवन का गुजर-बसर करते हैं? इनमें देखने में तो कोई भी ऐसा नही मालूम होता जिसकी हालत मुझसे अच्छी हो। हो सकता है ये एक जून पेट में डालने के लिए रोटियाँ पा जाते होंगे, पर इससे क्या होता है। इससे यह तो नहीं कहा जा सकता कि ये खाते-पीते लोग है। प्यासे आदमी को एक चिल्लू पानी मिल गया तो इससे प्यास तो नही बुझेगी हो सकता है, थोड़ी देर और जी लेगा।

और जो वह मंच पर खड़ा हुआ है, वह कौन है? देखने-सुनने में तो यह आदमी भी ऐसा नहीं मालूम देता कि इनसे भिन्न हो।

उसने कई सभायें अपने गाँव में देखी थीं। उसे याद आया कांग्रेस की वह सभा, जो उसके गाँव के पास के बाजार में हुई थी, जिसमें शहर के कोई बहुत बड़े नेता आये थे। उन नेता को भी करमू नहीं जानता था। किन्तु उनके और सुनने वालों के बीच में बहुत बड़ा अन्तर था जो सभा में भाषण सुनने के लिए आये थे उनमें किसी का बदन नङ्गा था; किसी का शरीर सूखा था, किसी का अँगोछा फटा था और किसी का पेट खाली था किन्तु वे नेता जो भाषण दे रहे थे शहर से मोटर गाड़ी पर चढ़ कर आये थे। उनके कपड़े कितने साफ़ थे, बगुले की पाँख की तरह, और उनके चेहरे पर कैसा भाव था, देखने से मालूम होता था कि कोई राजकुमार हैं। उसे याद आया कि किस

तरह उनके खाने के लिए दूध इकट्ठा किया गया था। उनके सोने के लिए जहाँ इन्तजाम किया गया था वहाँ पंखा झलने के लिए दो कहारों की रात भर की ड्यूटी बाँधी गई थी। और भी बहुत-बहुत बातें थीं। किन्तु आज जो यह आदमी सामने खडा है, उसमें और सुनने वालों में कोई तो फर्क नहीं नज़र आता है। कुछ भी तो देखने में ऐसी विशेषता नहीं है कि जिससे मालूम हो कि वह कोई बड़ा आदमी है। वह सबका नेता है, और बातें कितनी सीधी-सीधी समझा कर कहता है। सब बात साफ़-साफ़ समझ में आ रही हैं, और कहता क्या है, कोई तूल-कलाम नहीं। बस यही कि अब हम लोगों को कोई दबा नहीं सकता। बहुत दबाया गया। अब हम लोगों को अपना हक़ लेना ही होगा, चाहे जिस तरह से मिले। मालिकों की धाँधली अब नहीं चल सकती। अब यह नही हो सकता कि जो सुबह से शाम तक काम करे, उसके पास कल के लिए कोई आसरा न रह जाय। उन्हें खाने-पीने का भी ठिकाना न रहे। उनके तन पर कपड़े भी नही रहें। उनके रहने के लिए जगह भी न हो। उनके बाल-बच्चे भूखे रह जाँय। पढ़ाई-लिखाई की तो बात ही दूसरी है, उनके खाने पहरने तक का भी इन्तजाम न हो। और ऊपर से उनके मालिकों की धौंस अलग। उनके लात-जूते अलग। कितनी सीधी और सच्ची बात कहता है, कि जो कपड़ा बनाता है वह नङ्गा रह जाता है। जो घर बनाता हैं वह उसके दरवाज़े पर भी पैर नहीं रख पाता। जाड़ा, गरमी, बरसात खुले आकाश में उसे काटनी पड़ती है। जो खेत जोतता है, अनाज उगाता है, पानी देता है और फसल पैदा करने के लिए जो अपना तन गला देता है, जो बरसात को बरसात नही, जाड़े को जाड़ा नहीं, और गर्मी की लू-को-लू नही समझता, अपने खून के जोर से जो मिट्टी में पड़े अनाज को पाल-पोसकर दाने पैदा करता है, वह भूखा है, नङ्गा हैं, और तो बेघर-बार का है, वह भी बेआसरे का हैं। इस तरह जो मेहनत कर रहे हैं वे चाहे शहर में हों, चाहे देहात में, या कारखाने

में काम कर रहा हो, चाहे खेत में, केवल मेहनत करना भर उसके हाथ में है बाकी और किसी चीज़ पर उसका अधिकार नहीं है। वह सब तो दूसरों का हो जाता है, और मेहनत करने वाला ताकता रह जाता है। उसका बच्चा दाने-दाने के लिए तड़पता दम तोड़ देता है, उसकी स्त्री बीमारी में एक खुराक दवा भी नहीं पा सकती, इस अंधेर को हमें मिटा देना है, जो काम करेगा वह पहले खायेगा। खाने पहनने की पहली शर्त होगी, और मेहनत करने की दूसरी।

करमू को लगा कि ये बातें जैसे उसके मन के कोने में बहुत पहले से छिपी हुई थीं। कभी-कभी उसके मन में भी ऐसे विचार झलक दे जाते थे। पर वह समझता था कि उसके मन का यह पाप है जो उसे ललचा रहा है। यह पाप है जो उसे खा डालेगा, दूसरे की चीज़ पर नज़र डालना, मालिक के खिलाफ़ सोचना अपने को धर्म से गिराना है। अपने को नीच बनाकर जन्म-जन्मान्तर के लिए नर्क के गड्ढ़े में गिराना है।

अब नेता की बातें सुनकर उसे ऐसा लगा जैसे कोई आदमी रास्ता भूला हो और सहसा कोई उसका हाथ पकड़ कर दिखा दे कि रास्ता तो यह है। उस समय जो खुशी और तसल्ली मन में आती है कुछ-कुछ वैसे ही भाव इस समय उसके मन में आ रहे थे।

अभी तक उसने किसी से एक भी बात नहीं की थी। किसी से कुछ भी नहीं पूछा था। जुलूस के साथ-साथ वह हो लिया था। फिर वैसे ही अनजाने में उनकी पंक्तियों में शामिल हो गया था। फिर वैसे ही सहज भाव से बेखबरी से जुलूस वालों के साथ नारे लगाना शुरू किया था। फिर उसी तरह से चुपचाप वह सभा में आकर सम्मिलित हो गया था। अब उसके मन में आया कि वह अपने आसपास के आदमियों से पूछे कि तुम कौन हो, कहाँ काम करते हो, और ये जो तुम्हारे नेता हैं, कौन है ? क्या करते हैं ? तुम्हरा उनका आपस का क्या सम्बन्ध है ? किन्तु इन प्रश्नों को वह प्रगट नहीं कर पाता था।

उसकी समझ में कुछ नहीं आया जिसे वह प्रश्न की वाणी का रूप दे सके।

उसके मन में आया कि वह भी क्यों न अपना दुखड़ा इनके पास रखे, ये आदमी तो अपने ही से मालूम हो रहे हैं। मन में ऐसा लगता है कि जैसे ये अपने ही आदमी हों; अपने सुख-दुख को समझने वाले है। सकुचाते-सकुचाते उसने पास के आदमी से पूछा :

"भय्या' ये कहाँ मिलते है ? मैं इनसे मिलना चाहता हूँ। मुझसे मिलेंगे क्या ?"

पास के आदमी ने एक बार गौर से उसकी तरफ देखा, जैसे कोई बात आँक रहा हो; फिर कहा :

"मिलेंगे क्यों नहीं ? क्या ये कोई दूसरे आदमी है ? अपने ही है। हमी लोगों के साथ काम करते है।"

करमू : "तो मुझको उनसे मिला दो। मैं भी एक दुखी आदमीहूँ।"

आदमी ने उससे कहा : "अच्छा सभा खतम होने दो।"

करमू के मन मे बार-बार उठ रहा था कि यह आदमी तो ऐसा है, जैसा कभी नही देखा था। उसकी बात ऐसी मालूम हो रही है जैसे कोई अपने सगे सम्बन्धी के दुख से दुखी हो और उसके लिए जी-जान से उपाय बन्दोबस्त करने मे व्यस्त हो। इनके सामने अपना दुख-सुख खोल देने मे कोई हर्ज नही होगा। अपनी तकलीफ़ कहूँगा तो इनसे कुछ नही छिपाऊंगा। ये आदमी ऐसे नही मालूम होते कि सुनकर हँसी-खिल्ली उड़ाते फिरें या सुन कर घृणा से मुँह फेर ले। और हाँ तिवारी के बारे मे भी इनसे कहूँगा। रामसरन के बारे में भी इनसे कहूँगा। गजराज सिंह और चौधरी खुशहाल सिंह के बारे में भी इनसे कहूँगा। सारी करतूत सबकी खोल कर रख दूँगा ; इनसे अरज करूंगा कि एक बार हमारे गाँव चलो, तुम खुद चल कर एकबार वहाँ की हालत देखो। तुम जो बातें कह रहे हो वह हमारे दिल की बातें हैं। लगता है जैसे तुम सबका दुख-दर्द समझने वाले हो, जैसे

तुम्हारे मन में गरीबों के प्रति बड़ी सहानुभूति है। जैसे तुम इन्हें अपना ही आदमी समझते हो, उनके प्रति तुम्हारे मन में घृणा की भावना नहीं है। एक बार हम लोगों की भी तो सुनो, चल कर देखो और बताओ कि हम अब क्या करें? किस तरह हम लोग जीयें, हम लोगों के पास अपना कुछ नही है, घर नहीं, जमीन नहीं रूपया नही, अनाज पानी नहीं, बस हम लोगों का अपना तन है और अपनी मेहनत है। उसके बल मे हम क्या कर सकते हैं, चल कर हमें बतलाओ तो सही।

: ११ :

उस दिन सभा में शामिल होने पर उसके मन में भावों का जो उद्वेग उठा था, एक अव्यक्त अनजाना भाव, जो उसके प्राणों में फूट उठा था वह अपना समाधान चाहता था। उस घटना ने उसकी जन्म-जन्मान्तर की मान्यताओं पर प्रहार कर दिया था। अभी तक धर्म और न्याय, कर्त्तव्य और अधिकार की उसके मन में जो अव्यक्त अस्पष्ट धारणा थी, वह यह कि सुख और दुख, मान और सम्मान, ऊंच और नीच की व्यवस्था, ईश्वरीय है, परम्परा से चली आने वाली, जिसकी स्थापना किसी दैवी शक्ति की प्रेरणा मे हुई है, और वह दैवी शक्ति उसकी नज़रों में ईश्वर था। इस तरह ईश्वरीय विधान को चुपचाप सह लेने के सिवाय और कोई चारा नही था। क्योंकि ईश्वरीय-विधान में मनुष्य को दखल देने का कोई हक़-अधिकार नहीं है। मनुष्य अपने पूर्वजन्म के कर्मों का फल भोगता है।

किन्तु उस दिन की घटना ने जैसे उसके इन विचारों की नीव को एकबार ही झकझोर दिया।

पढ़ा-लिखा तो वह नहीं था, पर बात को समझने में उसे देर नही लगती थी। किसी भी बात को चाहे कितना भी घुमाकर उसके सामने रखे अपनी बुद्धि से वह उसके तथ्य तक पहुँच ही जाता था। इसलिए पढ़ा-लिखा न होने पर भी मोटी-मोटी बातें वह समझ जाता

था। उसे बोध हुआ कि अभी तक वह कितने अंधेरे में था, कितने भुलावे में था। अभी तक ग़रीबी और अमीरी, सुख और दुःख उसके लिए पूर्व जन्म के फल थे, जिसने पूर्व जन्म में अच्छा काम किया है। भगवान का भक्त रहा है, इस जन्म में वह राजा-रईस बन कर लोगों पर शासन कर रहा है। विभिन्न प्रकार के भोग भोग रहा है और जो ग़रीब है, दाने-दाने को मुहताज है, दर-दर भटक रहे हैं उन्होंने पूर्व जन्म में पाप किये थे, जिसके परिणाम-स्वरूप उन्हें गरीबी का नर्क भोगना पड़ रहा है। और इस जन्म में ग़रीब हो कर जो पराये धन-सम्पत्ति की कामना करे वह नर्क में पड़ेगा, क्योंकि ग़रीबी भगवान् की देन है। यही बात वह अपने बाप के मुँह से सुनता आया है। बड़े बूढ़ों के मुँह से सुनता आया है, पड़ोसियों के मुँह से सुनता आया है। पण्डित-ब्राह्मणों के मुख से सुनता आया है। इसके विरुद्ध एक शब्द भी मुँह पर लाने का मतलब है सीधा जमपुर का वास, और इस पाप से कोई मुक्ति नहीं दिला सकता।

उसके मन में उठा कि यह दुनिया कैसी है। कोई ग़रीब है, दाने-दाने को मुहताज है तो कोई राजा-रईस है, सोने से लदा हुआ है। कोई पुश्त-दर-पुश्त से परिश्रम करता आ रहा है, खून-पसीना करता आ रहा है, फिर भी न उसके पेट में दाने हैं, न उसके शरीर पर कपड़ा है और कोई है कि ज़मीन पर पैर भी नहीं दिया, फिर भी लक्ष्मी पैर तोड़ कर उसके यहाँ बैठी हुई है। कोइ दूसरों का भार वहन करते-करते अपनी जिन्दगी गुज़ार देता है और कोई पैदा होने से लेकर मरने के दिन तक दूसरों पर शासन करता है। मानो वह दूसरों पर शासन करने के लिए ही पैदा हुआ हो।

तो क्या यह ईश्वरीय विधान नहीं है? तो धरती की ये सारी कठिनाइयाँ, ये सारी परेशानियाँ, ये ऊंच-नीच, धनी, गरीब, शासक शोषित सब मनुष्य-कृत हैं और इसका निराकरण भी मनुष्यों द्वारा ही हो सकता है।

जो नेता उस दिन सभा में भाषण कर रहे थे उनसे उसने मुलाकात की। डरते-डरते अपने मन के भावों को उनसे प्रगट किया।

सभी बातों की शंका-समाधान तो वह नहीं कर पाया किन्तु यह बात उसके मत में बैठ गई कि यह धनी-गरीब, अमीर-उमराव, भगवान् की मरज़ी से नहीं हैं बल्कि आदमियों की बनाई हुई व्यवस्था है। ताक़त वालों ने उस धन-सम्पत्ति को हथिया लिया है और उसी के बल पर ग़रीबों को पालते है। यह धनी और ग़रीब की समस्या पूर्व जन्म से नहीं, इसी जन्म से ताल्लुक रखती है। इसका निराकरण ईश्वर की कृपा से नहीं, गरीबों की ताकत से होगा। और यह कि आदमी को अपने जीवन की समस्याओं को सुलझाने के लिए ईश्वर अथवा अन्य किसी अलौकिक शक्ति की सहायता की आवश्यकता नहीं, अपितु उसे स्वयं अपनी ही शक्ति पर भरोसा और विश्वास रखना होगा।

अभी तक तो उसने गाँव ही देखा था। वहाँ की ही ग़रीबी अमीरी देखी थी। वहाँ के बड़े छोटों के भेद को उसने देखा था। वहाँ की भूख-दरिद्रता से उसका पाला पड़ा था। गाँव के बाहर उसकी दृष्टि भी नहीं जाती थी। वह सोच भी नहीं पाता था कि इस गाँव के, इस समाज के बाहर भी कोई दुनियाँ है, जहाँ दुख दरिद्रता है, मान-अपमान है, लूट-खसोट है। अभी तक तो उसकी नज़रों में सबसे बड़ा आदमी वही था जिसके चार छः बैल हों, दो-चार गाय-भैंसें हों, अपनी खेती-बारी हो और उसके यहाँ इतना अनाज पैदा होता हो कि साल भर मजे से खाये-पीये और दस पाँच मन उधार-बैहर पर दे दे। घर का कोई आदमी बाहर निकल कर नौकरी-चाकरी भी करता हो, जिसमें साल में सौ-पचास रुपया नक़द घर में जमा होता जाय। बस इससे बड़े आदमी की कल्पना भी उसके दिमाग़ में नहीं आ सकी थी।

और ग़रीबी में ही तो वह पैदा हुआ था। उसी ग़रीबी में वह पला था। वही नहीं, उसके सरीखे सैकड़ों। खाते-पीते घर तो गाँवों में सैकड़े पीछे दस पाँच से अधिक नहीं होते। उसे मालूम था घर में

अनाज का एक भी दाना न हो, बच्चे भूख से चिल्ला रहे हों और स्त्री उदास मुँह से, सर झुकाये, आँखों में सफेद-सफेद आँसू भरे बैठी हो तो दिल पर क्या बीतती है। उसे मालूम था कि लम्बी बीमारी के बाद जूस देने के लिए भी घर में दाने न हों तो कैसा होता है, उसे मालूम था कि दो सेर भी अनाज पास-पड़ोसी से उधार ले-लेने पर जब उसे वापिस करने की ताक़त नहीं रहती तो पड़ोसी के व्यङ्ग-विद्रूप और अवहेलना की चोट कितनी मार्मिक होती है। उसे मालूम था, कि बूढ़ा बाप बीमार हो, और वह फटी-फटी दीन आँखों से बेटे की ओर देख रहा हो, वह बेटा जिसके पास एक पाई भी न हो, एक दाना भी न हो, यहाँ तक कि दो घड़ी समय भी न हो कि अपने बाप के पास बैठ कर उसे ढाढ़स बंधा सके, जमीदार के आदमी उसे बेगार में पकड़ कर ले जारहे हों, तो उन आँखों की पुकार कितनी ज्वलन्त होती है कि पत्थर का भी हृदय गला दे।

उसे गुमान तक न था कि गाँवों के बाहर की दुनियाँ में भी दुःख-दर्द हो सकता है। उसके प्रति उसका भाव कुछ ऐसा ही था जैसा बच्चे का मेले की चहल-पहल की ओर होता है।

किन्तु शहर में उसने देखा कि यहाँ भी वही हालत है। यहाँ भी लोग दाने-दाने के लिए मुहताज हैं, यहाँ भी कपड़े के बिना लोग नंगे बदन गुज़ार देते हैं। यहाँ भी रहने के लिए लोगों के पास मकान-घर नहीं हैं, और जिन बस्तिओं में ग़रीब लोग रहते हैं, वे बस्तियाँ भी ऐसी ही हैं, जैसी गाँव में चमार धमारों की बस्तियाँ, बदबू, सील, सड़ांध, और गन्दगी का ढेर सब कुछ वहीं है। यहाँ भी दिन रात परिश्रम करते हैं, पर न भर पेट खा सकते हैं, न पहन सकते हैं, एक बात जरूर है कि इनमें कुछ लोगों में एका है, कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनकी निगाह इनके दुख-दर्द की ओर गयी है। और इनमें भी आपस के दुख-दर्द में मिल-जुल कर रहने की आदत है, वहाँ गाँवों में तो और भी बदतर हालत है। कोई मर रहा है, मरे! किसी के मन में सहानुभूति हुई

भी तो क्या, दूसरों की मदद करने के लिए उसके पास धरा ही क्या है, जिनके पास कुछ है वे बड़ी जातियों के आदमी हैं। उन नीचों और ग़रीबों के पास काम के सिवाय और क्या धरा है, जरा काम पर जाने में देर हो गई तो मार-गाली अलग। वे आदमी तो हमें मानते ही नहीं हैं। दुख-तकलीफ़ में भी अगर काम पर नहीं गये तो जान आफ़त में। लाठी लिये पहुँच जाँयगे। वे तो कहते ही हैं कि जैसे खोभार से सूअर निकालना वैसे चमटोल से एक चमार निकालना। जैसे हम आदमी नहीं सूअर हैं और बिना लाठी के जोर के काम पर नहीं जाँयगे।

उसे लगा कि अभी जो ज़िन्दगी उसने व्यतीत की है, वह तो ऐसे बीती जैसे उसका कोई अस्तित्व ही न रहा हो। एक ढर्रा पकड़ कर जैसे रेल चलती रहती है, इसी तरह वह चल रहा था। भूख में, अपमान में, दीनता में, अशिक्षा में, और वही नहीं उसके सरीखे गाँवों के तीन चौथाई आदमी नंगे भूख और फटे हाल।

वह पढ़ा लिखा कतई नहीं था, इसका उसे बहुत अफ़सोस हुआ। पहले उसे अपने न पढ़ने का कभी ख्याल भी नहीं आया था। उसने कभी यह भी नहीं सोचा था कि पढ़ना-लिखना किसी काम का भी है। उसे तो यही मालूम था, कि उस पढ़ने की क्या ज़रूरत, पढ़ना लिखना तो बड़े-बड़ों का काम है, जिन्हें राज काज चलाना है, जिन्हें कागज-पत्र देखना है, जिन्हें पटवारगीरी, मास्टरी करनी है, जिन्हें मामला-मुकद्दमा बूझना है, जिन्हें वकील-अमला होना है। उसे पढ़ने की क्या जरूरत है, वह तो जात का चमार है। उसके लिए तो हल जोतना ही सब से बड़ी पढ़ाई है, बनी मजूरी का काम ही सब से बड़ा काम है। और इसमें वह किसी से पीछे नहीं था।

उसके मन में एक अव्यक्त भावना उठी : अगर वह पढ़ा-लिखा होता। उसने सोचा अभी क्या जिन्दगी बीती है, यही तीस वर्ष। तीस वर्ष क्या होते हैं ? जो नेता जी हैं, उन्होंने कहा है कि बिना पढ़े-लिखे हम अपने अधिकारों को नहीं पा सकते। हम समझ ही नहीं पायेंगे

कि हमारे क्या हक हैं, हमारे क्या अधिकार हैं और हम क्या चाहते हैं। न हम यही समझ पायेंगे कि हमारे कौन दोस्त हैं, और कौन दुश्मन हैं। किस काम में अपनी भलाई है और किस में अपनी बुराई। जब तक हम पढ़ लिख नहीं लेंगे तब तक कुछ मालूम भी नहीं हो पायेगा। तो यह पढ़ना जरूर है और उसके लिए वह कुछ दिन यहीं शहर में रह लेगा। पेट भरने के लिए वह कुछ काम कर लेगा। हमारा साला जो यहाँ जूते गाँठने का काम करता है, वह तो मुझसे बार-बार कहता है कि अब गाँव देहात मे क्या जाओगे, वहाँ क्या रखा है? काम तो तुम्हें कोई देगा नहीं। सब यही कहेंगे कि तुम नम्बरी हो गये, तुम्हारे ऊपर दाग़ लग चुका है और जेल काट आये हो। तुम्हें कोई भी अपने यहाँ काम पर नहीं रखेगा।

उसने सोचा : किन्तु आखीर तक वह शहर में टिकेगा नहीं। कुछ पढ़ाई-लिखाई करेगा, समझे-बूझेगा और फिर अपने गाँव को चला जायेगा। गाँव में वह पढ़ नहीं पायेगा। काम मजदूरी कहीं मिलेगी नहीं। यहाँ शहर में कुली-मजूरी का काम मिल जायेगा, उसी से गुजर-बसर चला लूँगा। कुछ भी हो, यह पढ़ाई तो करनी ही है।

किन्तु अभी वह जेल से छूटा है, घर तक नहीं गया। बापू और जगनी को मेरे छूटने का ठीक दिन तो मालूम नहीं होगा, किन्तु जगनी इतना तो जरूर समझती होगी कि अब छूटने के दिनों में ज्यादा देरी नहीं होगी। यहाँ शहर रहने के पहले वह दो चार दिन गाँव में हो आये। जाकर कह दे कि अभी तुम लोग समझ लो कि मैं जैसे जेल में ही हूँ और गाँव में रह कर करूँगा भी तो क्या? मेरा साला कहता है कि यहीं कुछ-न-कुछ तो करा ही देगा। फिर आखिर पेट तो भर ही जायेगा।

आखिर वह एक दिन अपने गाँव में आया। गाँव छूटे उसे एक साल भर ही हुआ था, किन्तु उसे ऐसा लगा कि वह वर्षों के बाद आ

रहा है। गाँव के बाहर ही उसे कुछ लड़के बगीचे में खेलते हुए मिले। वह उनसे गाँव का हाल चाल पूछता रहा। उसे लग रहा था जैसे सभी कुछ उसके लिए अजनबी सा हो। उसके मन में एक हल्का सा उल्लास भी था कि आखिर इतने दिनों के बाद वह अपने गाँव आ रहा है। किन्तु वह जेल से छूट कर आ रहा है। इसके लिए उसके मन में संकोच था। साथ ही उसके मन में ये भाव भी उठ रहे थे कि ठीक है, मैंने चोरी ज़रूर की थी, मगर उसमें मेरा हाथ उतना नहीं था। अगर पहला समय रहा होता तो गाँव में लाज के मारे पैर रखने में भी हिचकता, पर जो वह दस-पन्द्रह दिन मजदूरों के बीच और उनके कार्यकर्त्ताओं के बीच गुज़ार आया था उससे उसके मन में यह भाव तो ज़रूर था कि उसने जो चोरी की, वह काम अच्छा नहीं किया। किन्तु उस चोरी के लिए जितना ज़िम्मेवार वह अपने को समझता था उतना ही रामलखन तिवारी को भी। अगर वह काम पर से नहीं हटाया गया होता, अगर उसका सारा परिवार भूखों नही मरने लग गया होता, तो वह कभी भी कुमार्ग पर पैर नहीं रखे होता। पहले कभी तो भूल कर भी वह इस तरफ़ नहीं जाता था। कभी भूल कर भी उसने नहीं सोचा था कि दूसरे की चीज़ की तरफ आँख उठाये।

जब वह अपने घर पर पहुँचा तो जैसे वह सन्न रह गया; इस साल भर के बीच में उसके बाप ने खटिया पकड़ ली थी। केवल एक साँस भर बाकी थी, लगता था जैसे चारपाई पर कोई सूखा हुआ काल पड़ा है, जिसमें केवल साँसों का आना-जाना भर बाकी है। आँखें गढ़े में धँसी हुई थीं, एक दम कोटर में बैठी हुई, दाढी तो वैसे भी दस पन्द्रह दिन के पहले नहीं बन पाती थी, अब तो लगता था जैसे महीनों से उस पर उस्तरा नहीं चला हो। ढीली चारपाई पर वह अटका हुआ था। एक तो उसका बुढ़ापे का शरीर, दूसरे दो दिन, तीन दिन पर एकाध रोटी का प्रबन्ध हो जाता था, आखिर बेचारी जगनी कितना क्या करती। कोई उसे काम भी नहीं देता था, उसको भी बुखार

आता रहता था। जब कुछ अच्छी हो जाती थी तो किसी के यहाँ कुछ काम कर लेती थी। धान कूटने, अनाज पीसने आदि का काम वह कर लेती थी और उसी से वह तीन प्राणियों की गुज़र चलाती थी। उसका बूढ़ा ससुर, वह स्वयं और उसकी लड़की। रोज़ को तो बात ही दूसरी, दूसरे तीसरे दिन पेट में दाने किसी तरह पड़ जाते थे। केवल साँस भर किसी तरह लस्टम-पस्टम चल रही थी।

करमू अपने बाप को देखकर जहाँ-का-तहाँ खड़ा रह गया। उसे मालूम तो सभी कुछ था कि कहा से अनाज आयेगा जो खाने-पीते होंगे। पर फिर भी, जान बूझकर भी, जैसे उसका मन विश्वास करना नहीं चाहता था और उसकी स्त्री जगनी. करमू को देखकर वह रोने लगी थी। अपने मन में जाने किन-किन देवताओं को वह मना चुकी थी, कितनी उसके मन मे लालसा थी कि उसका मर्द लौट कर घर आये। यह जो इतने दुर्दिन मे अपने दिन गुजारे हैं, यह जो तीन-तीन प्राणियों का बोझ लेकर अभी तक वह जीवित रह सकी है, इसीलिए कि उसका मर्द आये तो जैसे गुर्गी के बच्चे पर झपट्टा मारने के लिए जब चील ऊपर आकाश में मंड़राती रहती है तब कैं-कैं करते हुए बच्चे मां के चारों तरफ चक्कर काटने लगते हैं और फिर दुबक कर माँ के सीने मे जैसे छिप जाना चाहते हैं उसी तरह जगनी को लगता था कि जैसे उसे नोंच खाने के लिए गरीबी, बीमारी, और पास पड़ोसियों के ताने और व्यङ्ग उसे मर्मस्थल तक भेद रहे हो। उसका मर्द वापिस लौट आये तो, तो वह उसकी परिधि मे समा जाय।

करमू के रहते हुए भी वैसे उसे कभी खाने-पीने की आज़ादी नहीं थी, किन्तु तब की बात दूसरी थी। करमू काम करता, वह भी काम करती थी और उसका ससुर भी घड़ी-दो-घड़ी के लिए काम कर लेता था। इसके साथ ही उसके मन में कितना भरोसा रहता था कि अपना मर्द तो साथ है, सुख में, दुख में, चाहे किसी भी हालत में रहती है तो क्या, सहारे के लिए वह साथ तो है। किन्तु उसके जेल चले जाने

से उसे बड़ा धक्का लगा था और वह भी चोरी करके जेल जाने से। पहले तो मारे शर्म के वह किसी की ओर आँख उठाकर देख भी नहीं पाती थी। यद्यपि उसके पड़ोस में ही सिरिया थी, जिसका पति भी जेल काट चुका था। कितनी उसकी लानत-मलामत हुई थी, पर वह लोगों से झेंपती नहीं थी। उसका पानी मर चुका था, किन्तु जगनी के लिए यह बात नहीं थी। उसका घर ग़रीब था तो क्या, वे लोग जात के चमार थे तो क्या, दस गाँव में उसके ससुर का नाम था कि चमार होकर इतना धरम-ईमान किसी में देखा नहीं गया। लोग कहते थे कि वह तो कोई खोटा करम हो गया कि चमार के घर में उसका जनम हो गया नहीं तो किसी बड़े घर में उसका जनम होता। और उसके मर्द की भी ईमानदारी का बखान होता रहता था। लोग कहते थे कि ये बाप-बेटा चमार होकर भी बड़े-बड़े सन्त महात्माओं की तरह ईमान और धरम से रहते हैं। कोई क्या ऐसा महात्मा भी न होगा।

जगनी जब इन बातों को सुनती थी तो उसकी छाती गर्व से फूल उठती थी। किन्तु जब करमू जेल गया तो लोग उस पर ताने मारते थे कि अरे, चमार भी कहीं सन्त-महात्मा हुआ है। यह तो उसको बेईमानी का मौका नहीं मिलता था. इसलिए सन्त-महात्मा बना हुआ था, और उसने तिवारी के खेत-खलिहान से अनाज-पानी चुराया भी हो तो कौन देखता था, तिवारी तो उसके ऊपर सब कुछ छोड़े बठे थे।

जगनी जब इन बातों को सुनती तो जैसे शूल उसकी छाती में चुभ जाता। रोज़-रोज़ के ताने, लोगों की हिकारत की नजरें और भूखमरी, इस समय वह सूखकर ऐसी हो रही थी जैसे पानी न पड़ने से खेत में खड़ी फसल सूख गयी हेा, एक दम मुरझाई, सूखी और बे जान सी। और उसकी लड़की, जिस लड़की को वह अपने प्राणों से बढ़कर चाहता था, जिसकी हँसी में जैसे उसे स्वर्ग प्राप्त था, वह आज जैसे घरे पर पडी उस बिल्ली सी हो जो अधमरी हालत में बस

कराह भर रही हो कि दम अब टूटा, और तब टूटा।

करमू को लगा किस का दिल बैठ जायेगा। कुछ देर तक वह चुपचाप खड़ा-खड़ा अपने बाप को, अपनी स्त्री को, अपनी लड़की को देखता रहा। जैसे वह समझने का प्रयत्न कर रहा हो कि वह यह क्या देख रहा है। उसकी ज़बान जैसे जड़ हो गई हो। एक शब्द भी वह बोल नहीं सका।

: १२ :

करमू जिस गाँव में रहता था उसका नाम था रामपुर। सब मिलाकर मुश्किल से पचास-साठ घरों की आबादी थी। कुछ घर राजपूतों के थे, दो-तीन घर ब्राह्मणों के और कुछ कायस्थों के। इसके अलावा अहीर, काछी, लोहार, धोबी, नाई, तेली, कोइरी आदि के घर थे।

चमारों की बस्ती गाँव से थोड़ी दूर के फ़ासले पर थी जिसमें चमारों के पन्द्रह-बीस घर थे। कुछ दुसाधों और भरों के थे, उनसे भी थोड़ी दूर पर दो-एक घर मुसहरों के थे। सब मिलाकर पचास-साठ घर होते थे। सभी घरों का एक दूसरे से सम्बन्ध था। लेना देना था, गाँव में हर एक-एक दूसरे को पहिचानता था, पहिचानता ही नहीं सबको यहाँ तक मालूम रहता कि आज किसके घर क्या बना है? आज किसने क्या काम किया है, किससे किसकी क्या बातें हुई हैं, किसके घर कौन आया गया है।

गाँव छोटा था और आदमियों की संख्या सीमित थी। उनकी बातें भी ज्यादा नहीं थी। आपस का सुख-दुख, निन्दा शिकायत, प्रतिस्पर्द्धा और लागडाँट, साल में काम के समय कम रहते, बेकारी के ज्यादा और इसीलिए जब बातें खत्म हो जाती तो उनकी फिर से पुनरावृत्ति हो जाती। आखिर व्यस्त रखने के लिए उनके पास खेती के सिवाय और कोई काम था भी नहीं, और न मनोरंजन वगैरह के ही कोई साधन उनके पास थे। फ़सल के मौके पर तो हर गृहस्थ अपने काम-

धाम में व्यस्त रहता। खेत खलिहान पर रहना। पर जब काम नहीं होता, लोग बेकार-ठाले बैठे रहते। आपस में एक दूसरे की निन्दा-शिकायत करते रहते, अपने सुख-दुख का रोना रोते रहते। खेती बारी का काम तो बारहों महीने रहता नहीं। खेत वैसे भी कम लोगों के पास थे। आधे से ज्यादा आदमियों के पास तो जगह-ज़मीन थी ही नहीं। वे या तो अपने पेशे करते और उसके एवज में फ़सल के दिनों में किसानों से अपना हक मंजूरी पा जाते, और उससे अपना गुज़र बसर करते। लोहार, नाई, धोबी आदि इसी तरह के थे। उनके पास खेत नहीं था। लोहार किसानों के हल खुरपे बनाता, उनकी खेती के काम में आने वाली चीज़ों की मरम्मत करता, हल, कुदाली, फरसा, खुरपा, हंसिया, दराती आदि बनाता। लोहा और कोयला वह बाजार या मेले से खरीद कर लाता और अपनी भट्टी में उसे गरम करके किसानों के काम में आने वाली चीज़ों को बनाकर उनको दे देता और उसके कुछ अनाज उसे तत्काल मिल जाता और कुछ फसल के दिनों में खेत और खलिहान में मिल जाता। इस तरह उसका गुजर बसर चलता। इसी तरह नाई, गाँव के लोगों की हजामत बनाता। धोबी लोगों के कपड़े धोता और उसे इसके एवज में भँदई और चैती फसल के काटने पर खेत और खलिहान से कुछ अनाज मिल जाता। इसीसे उनके घर का काम-काज चलता। शादी-ब्याह के मौके पर वे काम करते और इसके लिए भी उन्हें कभी कुछ पैसों के रूप में और कभी धोती कपड़े के रूप में मिल जाता। अहीर लोग गाय-भैंस पालते। इसके सिवाय थोड़ी बहुत जमीन जिसके पास होती वह खेती-बारी करके अपना गुजारा करता।

सबसे ज्यादा संख्या गाँव में चमारों और दुसाधों की थी। दुसाध सूअर पालकर और उन्हें बेचकर अपना गुज़र चलाते थे; फिर कभी बनी मज़दूरी करके अपना काम चलाते थे। गाँव में सबसे अधिक संख्या चमारों की थी, पूरे बीस पच्चीस घर, जिसमें किसी के पास भी

जगह-ज़मीन नही थी। इनका मुख्य पेशा किसान-गृहस्थो के खेतों पर काम करना। ये सभी चमार खेतिहर मज़दूर थे। बालिग़ पुरुष हल जोतने का काम करते, बैलों-गायों के लिए चारा काटते, पानी भरते, मोट-पूर करते और जितने भी कड़े और मेहनत के काम होते उन्हे करते। उनकी स्त्रिया गृहस्थों के घरो मे गोबर पाथने का, घर लीपने का, चावल कूटने का, दीवालों मे मिट्टी लगाने आदि का काम करती। कटनी के दिनो मे खेत मे अनाज काटती, दाने निकालती, मोट छीलती, आदि इसी तरह के हल्के-हल्के खेती के काम करती। सुबह, पड़ी रात रहते वे अपने मर्दों के साथ उठती। उनके मर्द जब अपने किसान-मालिकों के घर बैलो को खिलाने-पिलाने तथा खेतो मे काम पर चले जाते, तब वे अपने घर का काम करती। बरतन मांजती, आंगन बुहारती और फिर अपने किसान-मालिकों के घरो मे गोबर-पानी का काम करने चली जाती। इसी तरह सारा दिन वे भी काम मे लगी रहती और जब वे खेत मे काम करती होती तब तो वे अपने मर्दों से भी पहले उठती और घर का काम-काज खत्म करके खेत पर चली जाती। बड़ी रात गये घर लौटती तब कुछ मजदूरी मे पाये हुए अनाज को पीसने बैठती। फिर रसोई बनाती। मर्दो और बच्चो को खिला-पिला लेती और तब जो कुछ रूखा सूखा थोड़ा बहुत बच जाता, उसी पर सन्तोष कर लेती। एक पहर रात बीत गई होती। छोटे-छोटे बच्चों को वे अपने साथ खेत पर ले जाती। एक किनारे उन्हे लिटा देती और अपना काम करती रहती। जो ज़रा कुछ बड़े होते, वे किसानो के गाय भैंसो को चराते, बकरियां चराते। इसके एवज मे उन्हे दोनो वक्त खाना मिल जाता। यही बहुत होता।

गाव मे ऐसे किसान, जिनके पास जमीन थी, उनकी सख्या भी मुश्किल मे पन्द्रह-बीस रही होगी। किन्तु उनमे दो चार को छोड़ कर किसी के पास भी इतनी ज़मीन नही थी कि साल भर के लिए खाने-पीने को बचा लेने के बाद तथा मालगुज़ारी अदा करने के बाद कुछ

अनाज घर में बच रहे। जब कभी किसी साल सूखा पाला पड़ जाती तब तो और भी बुरी हालत हो जाती। मालगुज़ारी देना भी मुश्किल हो जाता और लगान बाक़ी रह जाता। कुछ लोग कार्तिक में जो सवाये-ड्यौढ़े पर लेकर अनाज बोते थे, उसका देना नहीं हो पाता था और उसका सूद बढ़कर बनिए का अगले साल तक दूना-तिगुना तक हो जाता था। खेती-बाड़ी ठीक से हो भी जाती तो भी इतना अनाज नहीं हो पाता कि लगान देने और खाने-पीने भर को रख लेने के बाद कपड़े वगैरह खरीद लेने के लिए बच रहे। इसके अलावा गृहस्थी में और भी खर्च लगे ही रहते। शादी-ब्याह, कथा-पुराण, पुलिस-पटवारी, लगान, और अगर कभी लड़ाई झगड़ा हो जाता तो मुकदमे बाज़ी अलग से।

खेतों में जब काम नही रहता, तब जितने मज़दूर काम करते होते, वे भी बेकार हो जाते। आख़िर जब काम ही नहीं रहता तो कौन रखकर मज़दूरी देगा। और इसी तरह किसान भी जब फ़सल का मौक़ा रहता, तब तो उनके लिए खेतों पर इतना काम रहता कि खाने-पीने के लिए भी मौक़ा नहीं मिल पाता। पहर रात रहते ही उठना पड़ता और पहर रात गए तक काम करना पड़ता। परन्तु ऐसे मौके कम होते। पहले जब खेतों में जुताई का मौक़ा आता, खरीफ़ की फ़सल के बोने का समय आता, तब काम बढ़ जाता। खेत की मेंड़ बाँधना, हल चलाना, धान बोना, ज्वार, बाजरा, सन आदि बोना और फिर धान रोपना। इसके बाद जब रबी की फ़सल बोने का समय आता तब भी काम बढ़ा रहता। नहीं तो सब मिलाकर चार-पाँच महीने ठाली बैठे ही कट जाते। खेती के सिवाय और किसी काम के करने का साधन उनके लिए था ही नहीं, और खेती में भी एक हल की खेती होती तो जिसके घर में पाँच-छः आदमी रहते; सभी उसमें लगे रहते, इसके सिवाय उनके पास और काम ही क्या था कि जिसमें वे लगते। आमदनी बढ़ने का और कोई ज़रिया उनके पास नहीं था। खेतों में काम हो तो किसान और

मज़दूर दोनों मिलकर काम करते, उस समय दोनों इतना काम करते कि थक कर चूर हो जाते, नहीं तो बेकार ठाली बैठे रहते। बहुत कोई उद्योगी होता तो सन की सुतली तैयार करता, चारपाइयाँ बुनता, खांचियाँ वगैरह बना लेता। परन्तु इससे क्या होता-जाता है? खेती के सिवा और कोई आसरा न होने के कारण किसी की समझ में आता ही नहीं था कि वह और क्या करे जिससे दो पैसे मिलें।

बेकार बैठे रहने पर तो दूसरों की निन्दा-शिकायत के सिवाय और कोई काम रह ही नहीं जाता था। कभी आपस में गाली गलौज, लड़ाई झगड़ा और अगर कभी संगत बैठ गई तो रामायण हो जाती। रामलीला के दिनों में पास के बाज़ार में रामलीला होती वहाँ जवान लड़के रामलीला के दिनों में, रामलीला देख आते।

गाँव में पढ़े-लिखे के नाम पर बहुत कम आदमी थे, मुन्शी रामसरन लाल पटवारी थे और पढ़ने-लिखने में सबसे बढ़े-चढ़े वही समझ जाते थे। रामलखन तिवारी सत्यनारायण की कथा बाँच लेते थे, होम वगैरह कर सकते थे, फेकू पण्डित का भी इन लोगों में काफ़ी नाम था। उनके टक्कर का कोई पण्डित उस जवार में नहीं था, इसके सिवाय कुछ लड़के शहरों में पढ़ रहे थे, एक आदमी पास के गाँव में प्राइमरी स्कूल का अध्यापक था। किन्तु ये पढ़ने-लिखने वाले लोग सभी बड़ी जातियों में से थे। छोटी जातियों मे से शायद ही ऐसा कोई हो जिसे पढ़ना लिखना मालूम हो, चमारों में केवल एक सेवक का लड़का था जो दो-चार अंग्रेजी अक्षर पढ़कर रेलवे में पटमैन हो गया था, और जब वह अपनी नीली पैन्ट और नीला हाफ़ कमीज पहन कर गाँव में आता तो लोग ललचाई नज़रों से उसकी ओर देखते। नहीं तो सभी अशिक्षित थे। पढ़ने-लिखने की जरूरत ही उन लोगों को नहीं मालूम होती थी और न तो उनके पास इतना साधन या फुरसत ही थी कि स्कूल में जाकर पढ़-लिख सकें।

गाँव के लोगों की दिनचर्या प्रायः यही थी। उनकी जिन्दगी का

क्रम इसी तरह चलता था। पहाड़ी नदी की तरह कभी तो उनका जीवन बड़े वेग से, पूरी ताक़त से, संघर्षों के बीच से प्रवाहित होता और कभी जैसे चट्टानों से टकरा कर नदी की धार मुड़ जाती है, और पानी एक जगह जमा होने लगता है, उसी तरह कभी परेशानियों और कठिनाइयों से उनकी जिन्दगी में गतिरोध पैदा हो जाता था। और जैसे नदी में आवर्त्त उठता है, उसी तरह उनकी जिन्दगी घुटने लगती थी। उन्हें बोध होता था कि अब सारा जीवन सिमट सिकुड़ कर परेशानियों और बेकारी के नीचे मर-खप जायेगा। परन्तु फिर भी जिन्दगी का क्रम आगे बढ़ता जाता था।

हर एक आदमी किसी-न-किसी तरह एक दूसरे से सम्बन्धित था, एक दूसरे की गति-विधि से वाकिफ़ था और एक दूसरे की अच्छाई-बुराई से परिचित था। यहां मामूली बातों की कड़ी-से-कड़ी आलोचना हो जाती। पुरुषों की नजरों से बच जाय तो औरतों की नजरों से बचना तो और भी मुश्किल था। खास करके बड़ी जातियों की औरतें। गरीबों और नीच जातियों की स्त्रियां तो काम-धाम में लगी रहतीं, उन्हें जब कभी ही मौका मिल पाता कि इधर-उधर की बातों में समय गुजारें। पर बड़ी जातियों की स्त्रियों के लिए तो कोई काम-धाम रहता नहीं, खाना बनाना, खिला-पिला देना और बस, पानी भरने के लिए कहारों की स्त्रियां आ जातीं, लीपने-पोतने तथा गोबर पानी का काम करने के लिए चमारों की औरतें आ जातीं। कपड़े लत्ते धोने का काम धोबिनें करतीं। और जो छोटे-मोटे काम रहते वह नाउने आकर कर जातीं। इसलिए दिन भर ये खाली बैठी रहतीं, मर्द काम पर चले जाते, लड़के बच्चे स्कूल चले जाते या खेल-कूद में लग जाते और चौके का काम निपटा कर ये किसी के घर अड्डा जमा लेतीं। फिर क्या था, दोपहर की बैठी-बैठी शाम कर देतीं, और उनकी अखंड मीटिंग चलती रहती। बाहरी ज्ञान तो इनको कुछ था नहीं। दिन भर एक दूसरे की निंदा शिकायत में गुजारतीं। किसका लड़का कैसा

है, उसकी उसके बहू से कसी बनती-बिगड़ती है। किसका किससे क्या सम्बन्ध है। किसकी पतोहू गाय के सरीखे सीधी है, किसकी कुत्ते के सरीखे लड़ती-झगड़ती है। किन पास पतोहो में माँ बेटी की तरह मेल-जोल है और कौन आपस में दिन-रात हाँव-हाँव करती रहती है। आदि आदि बातों का रस लेकर विवेचना और मीमाँसा होती रहती। अपनी तरफ से फ़तवे दिये जाते।

बूढ़ी स्त्रियों की बात-चीत का ढर्रा दूसरा ही रहता। वे हुक्के पीते हुए अपने लड़के-पतोहू की निन्दा के सिवाय और अपने भाग्य को रोने के सिवाय और कोई बात ही नहीं कर पाती। आज के बेटे बहुओं की निंदा और अपने ज़माने की तारीफ़ करना इनकी मुख्य दिनचर्या थी। ज़बान औरतों की बातों का विषय अलग ही रहता, यहाँ अपनी सासो की निंदा और अपने बेटे बेटियों की तारीफ से फ़ुरसत नहीं मिल पाती। इसके सिवाय और बाते भी की जाती। किसके नैहर-ससुरे से क्या आया-गया है, किसके पास कितने गहने कपडे हैं, किसके नैहर वाले बहुत धनी हैं, किनका नैहर कगाल है, किसका भाई जब अपनी बहिन के यहाँ आता है तब अपनी बहिन को दस पाच रुपये दे जाता है या अपने भानजों को रुपया, दो रुपया दे जाता है, आदि बातो की विवेचना चलती रहती। संध्या तक इसी तरह मजमा बैठा रहता और फिर रसोई-पानी बनाने के लिए अपने-अपने घरो को चली जाती।

लोगों के सामने बातों के विषय बहुत कम थे, पुरानी बातों को ही रोज़-रोज, नये-नये मुँहों से, नये-नये तरह से दुहराया जाता और जब कभी उनके सामने कोई नया मामला आ जाता तो महीनों के लिए जैसे बात चीत करने, आपस में बहस-मुबाहिसा करने का एक मसाला मिल जाता। कुछ दिनों तक वही चर्चा चलती रहती।

: १३ :

कई दिनों से गाँव में करमू लोगों की चरचा का विषय बना हुआ था। वह जेल से छूट कर आया था और लोग उसीकी बातों को

लेकर आलोचना-प्रत्यालोचना कर रहे थे। जब कभी दो आदमी आपस में मिलते, खेत पर, खलिहान पर, करमू की ही बातें उठ जातीं। चरवाहे, गाय भैंसे, चराते हुए, स्त्रियाँ कुओं पर पानी भरती हुई, करमू को लेकर ही आपस में बातचीत करती रहतीं। बुढ़िया अपनी बहू-बेटी की निन्दा की प्रिय वार्ता को रोक कर और बहुएँ अपने घर-गृहस्थी तथा मर्द बच्चों की नित्य चलने वालीं आलोचना-प्रत्यालोचना को रोककर वही बात करते।

यों गाँव के लिए यह तो नई बात थी ही कि कोई चोरी की सजा काट कर आये और उसके बारे में लोग बहस-मुबाहिसें कर, बातचीत करें। ऐसे ही मौकों पर तो गाँवों में बातचीत के सिलसिले में कुछ ताज़गी आ जाती है, कुछ नयापन महसूस होता है। नहीं तो लोग उन्हीं पुरानी बातों को ही दुहराते रहते हैं। इस तरह जब कोई नई घटना हो जाती है तो लोगों का उत्साह जैसे बढ़ जाता है।

परन्तु करमू में अब जैसे एक और विशेषता लोगों की नज़रों में आगई थी, जिसे लेकर बहस-मुबाहिसे चल रहे थे। चोरी की सज़ा में जेल काट कर और भी कई आदमी गाँव में आ चुके थे। वैसे फौज़दारी की सज़ा मे भी जेल काट आने वाले दो चार आदमी गाँव में थे किन्तु जेल से लौट कर आने के बाद किसी के भी मुँह से इस तरह की बातें नही सुनी गई थीं, न किसी को इस तरह एकदम बदल जाते देखा था। फ़ौज़दारी की सज़ा में साल भर की सज़ा काट कर जब रामजगसिंह गाँव मे लौटे थे तब लज्जा अपमान का भाव उनके मुँह पर भी नही था। बड़े रौब से उन्होंने कहा था कि कोई चोरी डकैती मे जेल तो हुई नहीं। फौज़दारी म सज़ा काटी है। फौज़दारी में जेल काटना भी जवांमर्दी की निशानी है। हम राजपूत हैं, जिसका धरम ही लड़ना-भिड़ना रहा है। अब तो खैर ज़माना चला गया नहीं तो लड़ाई में अगर कोई क्षत्री न लड़ तो उसकी मुक्ति ही नही होती थी। हम कोई कायथ या बनिया हैं कि दिमाग के बल से सारी धरती के कुलाबे

मिलाते रहें और रात में ज़रा सा भी खटका हो तो घर के कोने में दुबक रहें। फिर हम न फ़ौजदारी में जेल काटेंगे तो और कौन काटेगा ?

रामजगसिंह यह बात मुन्शी रामसरन सहाय के बैठके पर कर रहे थे। भीतर दालान में उनका कोई रिश्तेदार ठहरा हुआ था। रामजग की बातें सुनकर वह भी बाहर निकल आया। पँचहत्था जवान, चौड़ी छाती, बड़ी-बड़ी आँखें, रानों की मछलियाँ ऐंठी हुई, और घनी छतनार मूँछें देखकर लगता था जैसे महाभारत के समय का कोई पौराणिक बीर हो। रामजग की और तीव्र नज़रों से घूर कर उसने कहा था :

"ठाकुर, तुम पछाँह के कायरों की बातें करते हो, जिन्हें हर वक्त नोना लगा रहता है। हम पूरब के हैं, शाहाबाद जिले के। तुम्हरे ऐसे दो चार आदमी को मैं कुछ गिनता नहीं। जितना तुम दो दिन में खा कर हजम करते होगे यहाँ उतना सवेरे नाश्ते में खतम हो जाता है। चार सेर भैंस का कच्चा दूध सवेरे पेट में उड़ेल लेता हूँ और पूरा चार सेर का बकरा काट कर खा डालता हूँ और वह जाने कहाँ भसम हो जाता है, समझे !"

और रामजगसिंह चुप हो गये थे।

इस बात को लेकर भी गाँव में काफ़ी चरचा हुई थी। पन्द्रहियों दिन तक लोग इसी बात को उलटापुलट कर कहते सुनते रहे थे।

और जब जेल की सजा काटकर बिपतू लौटा था तब उसकी बातों को लेकर भी काफ़ी बहस चली थी। कैसी-कैसी बात वह सुनाता था। किस तरह वह गले के नीचे गड्ढ़ा बनाकर पैसे छिपा लेता था। क्या मजाल कि जेल का सिपाही उसका सुराग भी पाजाय। किस तरह सिपाहियों को वह चकमा देता था। आदि तरह-तरह की बातें उसने बताई। और गाँव में उनकी चर्चा चल रही थी। किन्तु जब से करमू जेल से छूट कर आया था वह दूसरी ही तरह की बातें

करता। ऐसी बातें कि जैसी इन लोगों ने कभी सुनी नहीं। उसकी बातें बड़ी विचित्र लगतीं। कोई कहता कि उसकी बाते तो देखो : भला यह भी कोई बात है, चोरी करने से ही कोई चोर नहीं हो जाता, पेट न भरने पर भूखा क्या न करता ? चोरी करना कोई अच्छा काम तो नहीं है, पर आदमी का मन ठीक रखने के लिए उसे खाने पहिनने की भी सुख-सुविधा चाहिए। कोई कहता भला यह कैसी अधर्म की बात है कि ऊंच-नीच, और धनी-गरीब भगवान् ने नहीं बल्कि आदमी ने बनाये हैं। इसको आदमी ही दूर कर सकता है। कोई कहता कि जेल मे छटने के बाद उसे किसी औघड़ सन्त महात्मा का दर्शक हो गया और उसने इसे ऐसा यंत्र मार दिया है कि वह अब बहकी-बहकी बातें कर रहा है। या तो वह कुछ दिन में पागल हो जायेगा, नहीं तो कुछ दिनों में घर बार छोड़ कर संन्यासी हो जायगा।

मुन्शी रामसरन की बैठक में रामखेलावन तिवारी बैठे हुए सुरती मल रहे थे। मुन्शी जी का नौकर जोखम अलाव में पड़ी आग की राख झाड़ कर तम्बाखू चढ़ा रहा था। एक तरफ़ गजराज सिंह चारपाई पर बैठे हुए थे। गाँव के कुछ और आदमी भी वहाँ बैठे हुए थे।

मुन्शी रामसरन ने हुक्के का एक कश खींचा और धूएँ को एक तरफ़ फूँकते हुए कहा :

"क्यों रे, जोखन तू कहता था न कि करमू अब सब लोगों को आपस में मिलकर रहने का उपदेश दे रहा है। कहता है कि दूसरों की बुराई नहीं करनी चाहिए। मालूम होता है कि कोई बड़ा नेता बन गया है।"

इतना कह कर वह एक व्यंग की हँसी हँसने लगे। उनके चेहरे पर घृणा जैसे नाच रही थी। उनकी घनी छतनार खिचड़ी मूछों की कोर उनके ओठों के तनाव से कुछ और भी खिच गई थी। फिर एक विचित्र घृणा की भावना से, अपने स्वर को खींच कर उन्होंने कहा :

तिवारी जी, सुना आप ने। वह करमू अब बड़ा लीडर बन रहा है।

मालूम होता है जवाहरलाल बनकर ही तो छोड़ेगा। चोरी को, जेल गया और अब आकर सब को उपदेश देने बैठा है।"

रामलखन तिवारी ने सुर्ती की एक लम्बी पीक थूकी। फिर अपने होठों को हाथ से पोंछ कर कहा :

"कलजुग के यही तो लक्षण है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण में लिखा है कि घोर कलजुग के आने पर नीच कौम के लोग बड़े लोगों को धरम करम का उपदेश करने लगेंगे। वही अब हम अपनी आँखों से देख रहे हैं। और यह करमू तो जात का चमार है, जिसे छूने से आदमी अपवित्र हो जाता है। तिस पर जेल काट आया और वह भी मार-फौजदारी मे नहीं, चोरी करने के अपराध में। अब वह न धरम का उपदेस करेगा तो कौन करेगा ?"

"गजराज सिंह : जितनी ढिलाई हम लोग करेंगे, उतनी ही ये नीच जातियाँ सर पर चढ़ती जायेंगी। ये तो लात के देवता है, बात से नहीं मानते। हमारे दादा कहा करते थे कि इनको तो सुबह-शाम जैसे कलेवा किया जाता है, उसी तरह दो लात लगा दी जायें रोजाना, तब कहीं ये रास्ते पर रहते है। और इनका पेट जहाँ भरा नही कि ये ऊधम करेंगे। कहा भी है 'भादों, भैंसा, चइत, चमार।' सो चमारों का जब पेट भरेगा तो वे तो इस तरह की बातें करेंगे ही। इनके लिए कहा गया है, जब अनाज की मजदूरी दी जाये और वे जब अंगोछे में अनाज रखें तब अंगोंछा इतना फटा रहे कि उनके घर तक अनाज के दाने गिरते चले जायें तब कहीं इनका दिमाग दुरुस्त रहता है और तब ये मन लगा कर काम करते हैं। नहीं तो जरा पेट भरा तो देख लो उनकी मगरूरी।"

रामगरन : "पर इस करमू के पास तो खाने को दो दाने भी नहीं है। अभी-अभी वह जेल से निकल कर आया है। इसका पेट कहाँ से भरता होगा ?. कहता है टोकरी बनाने का काम सीखा है, उसमें गुजर करेंगे। और फिर मुर्गी पालेंगे। पर इससे क्या होने वाला है ? बाप तो दाने के

बिना चारपाई पकड़े हुए है और उसकी स्त्री जगनी भी भूखों मर रही है। कल हमारे यहाँ आँगन लीपने के लिए आई थी तो घिसट-घिसट कर काम कर रही थी। घन्टा भर में तो उठती थी, मुझसे देखा नहीं गया। बनी, मजदूरी दो और ऊपर से ये हरामी-पना, दो लात मैंने लगायीं और भगा दिया। अब बताइए वे कौन खाते-पीते हैं, उसके घर की हालत हम लोगों से छिपी तो है नहीं। सब साले दाने-दाने को मर रहे हैं, उसके पेट भरने का यह गुन नहीं है, हमारी समझ में तो जेल में किसी नेता वगैरह को देखा होगा। बस उसके दिमाग़ में आ गया होगा कि चलो, चमारों में हम लीडर बन जायेंगे और अपना पाँव उनसे पुजवायेंगे, ऊपर से धौंस अलग जमायेंगे।

हुक्के की चिलम उतार कर उन्होंने गजराजसिंह को दी। वे अपना हुक्का साथ लाये थे और हुक्का पीने लगे, रामसरन आगे कहते गये :

"आज-कल का जो जमाना है, वह इन नीच कौमों का ही है। देखा नही है, कांग्रेस का जब से राज हुआ है, इनका दिमाग़ और भी बढ़ गया है। सीधे किसी की बात ही नहीं सुनते! और जो लोग राज काज कर रहे हैं, वे इनको सर पर चढ़ाते जा रहे हैं, ताकि वोट इनसे ले सकें। उनका इससे क्या बिगड़ता है, उनको तो शहर में रहना है, मोटर, गाड़ी-घोड़ा उनके पास है, बिगड़ता तो हम लोगों का है, जिनको इनसे काम लेना पड़ता है। इनकी बदतमीज़ी के मारे नाक में दम हो गया है, और यह करमू सुनते हैं जेल से छूटने के बाद शहर में दस-पन्द्रह दिन कहीं किसी के साथ रहा था, जिसने अपना मतलब गाँठने के लिए इसे यह सब सिखा-पढ़ा कर भेजा है।

पढ़ने का नाम सुनकर जोखन बोल उठा :

"मालिक वह तो आज-कल रोज़ पढ़ रहा है। शहर बनारस से वह एक किताब लाया है। जब देखो तब उसी को देखता रहता है, और पड़वैया लड़कों से पूछ कर आगे खुद भी पढ़ता रहता है। सुना है कि वह जगनी काकी को भी पढ़ने के लिए कह रहा था, लेकिन उसने

इनकार कर दिया।

मुन्शी रामसरन लाल ठठा कर हँस पड़े, किन्तु इस हँसी में उनके हृदय का उल्लास नहीं, बल्कि घृणा और व्यंग फूट रहा था। उन्होंने कहा :

"हाँ, ये लोग तो पढ़ेंगे ही ! अब हम लोग तो इनकी सेवा करेंगे। इनकी मजदूरी करेंगे, हाथ-पैर जोड़ेंगे, और ये लोग बाबूजी बने, राज-काज बूझेंगे।" व्यंग से उनका स्वर और भी तीखा हो गया। बोले :

"तो अब कलक्टर, गवर्नर और मन्त्री यही लोग बनेंगे। सुना है, हर सूबे में एक दो नीच आदमियों को मन्त्री बना रखा है। वे लोग सबकी बराबरी में बैठते-उठते हैं, खाते-पीते हैं, और अब मालूम होता है कि यह करमू राष्ट्रपति बनकर ही तो छोड़ेगा। क्यों तिवारी जी ?"

तिवारी अभी तक मुन्शी जी की बातें ध्यान से सुन रहे थे, ये बातें जैसे उनके मन की ही थीं। वही विचार उनके मन में भी था, उनका अगर वश चलता तो इस तरह गुस्ताखी करने वालों की खाल खिचवा लेते। किन्तु मुन्शी जी की आखिरी बातें सुन-कर जैसे उन्हें विश्वास नहीं हुआ। बोले :

"लाला जी आप क्या कह रहे हैं, सुना तो मैंने भी यह है, कि बहुत सी नीच कौम वाले भी मन्त्री बन गये हैं। पर उनको क्या बड़े-बड़े लोग अपने बराबर उठाते-बैठाते होंगे ? उनके साथ क्या खाते-पीते होंगे।" फिर जैसे कुछ गुन कर बोले :

"आज-कल के आदमियों का क्या ठिकाना, यह जो अंग्रेजी पढ़-लिख लेते हैं, उनके मन से तो पाप-पुण्य निकल ही जाता है। तिस पर लोग कहते हैं कि दो-चार गाँव के बीच में स्कूल होना चाहिए। अरे, स्कूल में जाकर क्या पढ़ें-लिखेंगे। हमारा लड़का छुट्टी मे शहर से आया था, एक दिन हमसे बहस करने लगा कि चमार और ब्राह्मण बराबर हैं। ब्राह्मणों ने लोगों पर बहुत जुल्म किया है, अगर किसी के हाथ का

पानी नहीं पीना चाहिए तो वह ब्राह्मण ही है। सुनकर मुझे तो बहुत क्रोध आया था, इच्छा भी हुई कि आज ही स्कूल से नाम कटवा लूँ। पर सोचा, जब चारों ओर अधरम फैला हुआ है, तब अकेले हमारे रोकने से तो रुकेगा नहीं।

गजराजसिंह : "यह सब शरारत चाहें तो एक दिन में मिट सकती है, सरकार कुछ न बोले ? थाना पुलिस चुप बैठी रहे, फिर यह अन्धेर मिटाते कितनी देर लगती है ? मार के आगे तो भूत भी भाग जाते हैं। फिर इन लोगों की क्या बिसात, गाँव-के-गाँव फूंक कर रख दिये जाँय, न खाने का ठिकाना रहेगा, न पहिनने का, और न रहने का, तब जो दिमाग़ आसमान पर चढ़ा हुआ है, वह अपने आप उतर जायेगा। तब किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकलेगी। पर सरकार तो इनको दबाने के बजाय और सर पर चढ़ा रही है, सुना है कि नौकरी पहले इनको मिलती है, तब दूसरों को। इनको सर पर चढ़ाकर वे लोग राज कर रहे हैं और इधर देहात के भले-मानसों का जीना हराम करा दिया है।

इसी समय रामजगसिंह वहाँ आ पहुँचे, जब उन्हें मालूम हुआ कि करमू की बात-चीत चल रही है तो उन्होंने सोचा, वहीं क्यों और लोगों से बिछड़ जाँय। करमू के नाम से उन्हें वैसे भी चिढ़ थी, एक तो वह चोरी करके जेल से आया था, दूसरे बे-सर-पैर की बातें कर रहा था। कहीं लोगों को पढ़ने के लिए कह रहा है, तो कहीं धरम-करम को बे-मतलब बताता है। कहीं ऐसी बातें करता है जिसमें बड़ी जातियों की हेठी हो। कुछ तीव्र स्वर में उन्होंने कहा :

"उसके तो अब पर निकल आये हैं, जब स्यार की मौत आती है तब वह गाँव की ओर भागता है। उसी तरह अब उसका होश ठिकाने हुआ ही समझो। किसी भी दिन पूरी लाठी उसके सर पर पड़ेगी। यहाँ तो बजरंगबली का प्रताप है कि जिसके सर पर मेरी लाठी बैठ गई, वह वहीं सर पकड़ कर बैठ जायेगा और छः महीने तक हल्दी-बगई पीयेगा। तब

कही हिल-डुल सकेगा।

इतना कह कर उन्होंने एक नजर उपस्थित आदमियों पर डाली जैसे आँक रहे हों, कि उनके इस वीर वचन का और लोगों पर क्या असर पड़ा। उन्होंने आगे कहना शुरू किया :

"अब उसकी शेखी अगर कोई ठंडी करेगा। भला यह भी बरदाश्त करने की बात है। सुना है कि वह शहर बनारस जाने वाला है। वही काम-धाम करेगा, और सुना है कि वही पढ़ेगा। हमारी घर वाली से मुनिया कहारिन कह रही थी कि अभी जब वह शहर मे गया था तो किसी नेता से उसकी बात पक्की हुई कि वह गाँव मे आयेंगे और सब छोटी कौमो को पढ़ाये-लिखायेंगे। उनको ऊँचा बनायेंगे, जगह-जमीन दिलायेंगे।

रामजगसिंह का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। बोले :

"अब यहा कोई आये तो उसे मालूम होगा कि रामजग की लाठी मे कितनी ताकत है। और यह साला करमुआ शहर मे जाकर पढ़ेगा! मै सच कहता हूँ जो पढ़ाई पढ़ेगा वह मुझे आज ही से मालूम है। किसी पक्के चोर से साँठ-गाँठ हो गई होगी। और उसी को जाकर अपना गुरू बनायेगा। बस यही उसकी पढ़ाई होगी।

काफी देर तक उन लोगो मे करमू को लेकर चर्चा चलती रही।

: १४ :

चैत का महीना चल रहा था, किन्तु तो भी अभी सर्दी कम नही हुई थी। हवा मे ठंडक भरी हुई थी। इसमे लोगो ने अभी तक अपने जाडे के कपडे उतार कर नही रखे थे। हवा अब भी तीर की तरह सनसनाती हुई बहती थी। आम, महुआ, नीम, पीपल आदि पेडो की गिरी हुई पत्तियाँ इधर-से-उधर खडकती हुई उड रही थी। नीम के फूलो की सुगन्ध से हवा जैसे भर उठी हो। छोटे-छोटे सफेद-सफेद फूल बड़े भले मालूम दे रहे थे। हवा के झोके से जब नीम की टहनियाँ हिलती, उनमे हरे-हरे पत्ते और उनके फुनगो पर लगा हुआ कोमल और

नर्म छोटे-छोटे फूल, लगता है जैसे छोटी बच्ची को बेंड़ी गूंथ कर किसी ने सफेद झालर बाँध रखी हो, जो बच्ची के सर हिलाने, उछलने-कूदने, बोलने-हँसने में हिल हिलकर अपनी खुशी प्रकट कर रहे हों, कि भला किया इस बच्ची की चोटी से मुझे गूंथकर। इस समय भला कोई मेरे सौभाग्य का मुक़ाबला कर सकता है? आमों में नये पत्ते निकल चुके थे, और उनके लाल किशलयों पर हरा रंग चढ़ चुका था। किसी-किसी पेड़ में बौर लग चुका था। लम्बी-लम्बी पत्तियों में मुस्कराते बौर। जाने कौनसी मादकता का सन्देश लेकर ये आम के बौर धरती पर अवतीर्ण होते हैं कि दिग्-दिगन्त जैसे उनके आगमन पर मँहक उठता है, कि हवा में एक मस्ती छा जाती है। उसके उन्माद से कोकिल-पंचम स्वर स्वतः ही फूट उठता है, कूऊ···कूऊ···।

बगीचा, चमटोल से लगा हुआ था। इस बगीचे के एक तरफ कोने पर डोमन भगत का बैठका था। बैठका क्या, फूंस की लम्बी झोंपड़ी थी। जिसमें एक साथ पन्द्रह-बीस आदमी बैठ सकते थे। सामने काफी सहन था। जहाँ वक्त-जरूरत काफ़ी आदमी बैठ सकते थे। झोंपड़ी से लगा हुआ बगीचा होने के कारण एक साथ कितने ही आदमी वहाँ बैठ सकते थे। यहाँ पर इसी मँढ़ई के सामने, बगीचे में चमारों की बड़ी-बड़ी पंचायतें बैठी हैं। एक बार तो जब एक चमार ने किसी की स्त्री को रख लिया था और उसका फेरवट भी नहीं देना चाहता था तब इसी बात को लेकर जो पंचायत बैठी थी, वह यहीं पर ही, इसी बगीचे में बैठी थी। और डोमन भगत ने कहा था कि चाहे महीना बीत जाये, साल बीत जाये, पर इस पंचायत का निपटारा किये बिना वे वहाँ से नहीं उठेंगे। बात भी वही हुई, बारहों के चमार एकत्रित हुए थे और पंचायत होते-होते तीन दिन बीत गये थे। कई मन चावल दाल लग गये थे। पंचों और निमंत्रितों को तमाकू पीने में ही चार पंसेरी तम्बाकू खतम हो गया था और चिलम के लिए आग जुटाने में एक पूरा गोहरौर लग गया था। इसी बगीचे में एक बड़ा सूअर काटा था। सूअर

काटने में काफ़ी दिक्कत उठानी पड़ी थी। खुद पंचों ने कुछ मदद की। पहले सूअर को पकड़कर जमीन पर पटक कर लिटा दिया गया था। चार आदमियों ने उसकी एक-एक टांगें पकड़ रखी थीं और उसके गले पर एक मोटा बाँस रखकर दो आदमी दोनों ओर से दबाये हुए थे। फिर सूअर की पसलियों में लोहे का लम्बी बरमा धँसाया जाता था, उसकी पीड़ा से सूअर की चिल्लाहट उठ कर सारे बगीचे को गुँजा देती थी। सूअर की वह कराह जैसे अनवरत शंख का स्वर हो, जिसमें पीड़ा और वेदना साकार बोलती हो। शोर-गुल इतना हुआ था कि पंचों को बात-चीत करना कठिन हो गया था। जब सूअर अधमरा हो गया तो उसे घास-फूस इकट्ठी करके फूंक दिया गया था, ताकि उसके शरीर के बाल झुलस जायें। उसके बाद उसके चौड़े-चौड़े चकत्ते काट लिये गये। वे चौड़े चौड़े सफेद चकत्ते, चर्बी की अधिकता से एकदम सफेद-सफेद जैसे उनपर किसी ने भैंस का सफेद घी जमा रखा हो। इसी तरह पंच लोग खाते-पीते थे, हुक्का तम्बाकू पीते थे और उनकी बहस चलती रहती थी, पर आखिर तक, जब बहस से कुछ तय नहीं हो पाया और मुलजिम ने पंचों की राय मान कर बारहों का खिलाना पिलाना और सौ रूपया पंचायत के लिए दण्ड देना मंजूर नहीं किया तो डोमन भगत ने अपने हुकुम से मुलजिम को उल्टा मुश्क चढ़वा दिया था और उसकी छाती पर चक्की रखवा दिया था। तब कहीं जाकर उसने पंचों के फैसले को मंजूर किया था।

सो मँढ़ई के सामने हर वक्त दो-चार चमार खाली समय में बैठे ही रहते। मँढ़ई की बगल से लगा हुआ एक कूंआ था, जिसमें चमटोल की औरतें पानी भरतीं थीं। यही एक कूंआ था जिसमें चमार पानी भर सकते थे। दूसरे कूओं से उन्हें पानी लेने की मुमानियत थी, जिन कूओं से बड़ी-बड़ी जातियों के लोग पानी पीये, जिस कूंए का जल देवता पर चढ़े, जिसका जल भोग लगाने के काम आये, उस कूंए में अगर चमार अपनी गगरी डाल देंगे तो भला पानी शुद्ध कैसे रह

जायेगा। भला चमार भी कोई जात है, मुर्दार खोर।

मर्द काम-काज से छुट्टी पाकर दोपहर को यहीं स्नान करते थ हर वक्त पानी गिरते रहने से वहाँ कीचड़ हो गयी थी। पास ही छोटे से गड्ढे में पानी जमा होता जाता था जिसमें सूअरों के लोटने से पानी और भी गन्दा हो गया था। अब भी दो एक सूअरी अपने शरीर पर कीचड़ लपेटे लेटी पड़ी थीं। उनकी गर्दन के बाल लम्बे-लम्बे और कड़े थे। उनकी आँखें कुछ-कुछ लाल और सूजी हुई सी मालूम हो रही थीं, तथा उनकी छोटी सी पतली पूँछ मुड़कर लटकी हुई थी। उसके पास ही थोड़ी दूर पर सूअरों के रहने की खोमार थी। छोटी-छोटी नीची दीवालें और उन पर फूँस रखी हुई थी। जिसका दरवाज़ा मुश्किल से दो हाथ लम्बा और डेढ हाथ चौड़ा रहा होगा, हर एक खोमर में दर्जनों सूअरी बन्द रहती थी जो कि भीतर से धीरे-धीरे गुर्राती रहती थीं, कभी-कभी उनके आपस में लड़ने का स्वर भी सुनाई पड़ जाता था।

खोमर से थोड़ा हट कर कई घूरे दिखाई पड़ रहे थे जिनमें कूड़े का ढेर लगा हुआ था। दो एक मुर्गियाँ कूड़े को अपने पैरों से कुरेद रही थीं। चारों ओर कूड़ा-कर्कट बिखरा हुआ था। उस कूड़े में से वे दाने चुग-चुग कर खा रही थीं। अपने पंजों से वे कूड़े के ढेर को कुरेद देती। बड़े नाज़ो-अदा के साथ वे दाने को चुगतीं और फिर कभी अपने सर पर मोर्छल सी उठी कलगियों को शान के साथ हिलाकर दाने ढूढ़ने लगतीं।

कूंए की बगल से थोड़ी दूर पर कई लावारिस कुत्ते लेटे हुए थे। देखने से मालूम होता था कि दम भरे हुए पड़े हैं। एक मुर्गी उनके पास दाने को ढूँढ़ती जा पहुँची और कुत्ता अचानक उसके ऊपर झपट पड़ा, मुर्गी कें-कें करती हुई दूर भाग गई।

सूरज अभी-अभी पश्चिम में डूबा था। पश्चिम के आकाश पर अब भी सिन्दूरी ललाई छाई हुई थी। खेतों से उड़-उड़ कर कौवों का

झुण्ड बसेरा लेने के लिए बगीचे की ओर लौट रहा था। ताड़ और बबूल के पेड़ों पर बया पंक्षी के घोंसले लटके हुए थे और उनके छोटे छोटे बच्चे अपने डैने को निकालते हुए चें-चें कर के अपनी माँ का जैसे स्वागत कर रहे थे। उस समय ऐसा मालूम होता था जैसे छोटे-छोटे बच्चे अपनी माँ को देख कर किलकारी मार रहे हों।

धान के कटे खेतों और चरागाहों से गायों का झुण्ड गाँव की ओर लौट रहा था। गायों के रम्भाने की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। उनके जो बच्चे सयाने हो गए थे, जिनका दूध पीना छूट चुका था, वे भी साथ-साथ थे। वे बछड़े कभी चलते हुए एकाएक रुक जाते, कभी अपनी नीली-नीली निरीह आँख उठा कर गायों के झुण्ड की ओर देखते, और कभी बेतहाशा दौड़ पड़ते और गायों के झुण्ड के आगे निकल जाते। कभी कोई गाय रास्ते मे भटक कर अरहर की हरी-हरी पत्तियों से आकर्षित होकर खेत मे चली जाती या कभी जौ और गेहूं के जो खेत अभी कटने मे बाकी पड़े हुए थे, उधर भटक जाती तो ग्वाले दौड़ कर उनको हाँक लाते।

खेतों मे मटर की फसलें कट चुकी थी। जौ और गेहूं के खेत भी कुछ कट चुके थे। जो खड़े थे, उनकी बाले पक कर सोने के रंग की होकर झुक गई थी लगता था उनके टूंट सोने के खिचे तारों से मालूम हो रहे थे। सुनहरी झुकी बालों को अपने सर पर धारण किये पौधे ऐसे मालूम होते थे जैसे कोई लजीली दुलहिन सिर झुकाए, हल्का घूंघट काढे हुए खड़ी हो। खेतों के बीच यत्र-तत्र सरसों के पके हुए पौधे कभी-कभी हवा के हल्के वेग से हिलकर मन्द स्वर मे घुंघरू बजा जाते थे। मालूम होता था जैसे पवित्र विचारों से भरे कोई सन्त-महात्मा अस्फुट स्वर में मन्त्रोच्चार कर रहे हों।

अरहर के पौधे अब भी हरे-भरे खड़े थे। उनकी फलियों में दाना तो पड़ गया था, किन्तु अभी पका नही था। उनमें जो पौधे पक गये थे वे कभी-कभी हिल कर इस प्रकार बज उठते थे, मानों चांदी के

घुंघरूओं की करधनी पहने कोई बच्चा ठुमुक-ठुमुक कर चल रहा हो; जो कभी क्षण भर के लिए रुक जाता हो, कभी एकाएक चल पड़ता हो और इस तरह उसके घुंघरू एकाएक बज उठते हों।

ईख भी अभी खड़ी थी, यद्यपि ईखों के कुछ खेत कट चुके थे। पर अभी काफ़ी भाग कटने को पड़ा था। उनका अँगोला हरा-हरा था। और उनमें सफ़ेद ज़ीरा फूट कर पक चुका था। ईखों के पौदों की पत्तियाँ सूखी-सूखी कुछ लाल और बादामी रंग की हो गई थीं। इनके सफेद-सफेद ज़ीरे सरसराते हुए हिल रहे थे। लगता था जैसे धरती ने आकाश से सुलह के प्रतीक स्वरूप सफेद झण्डे उड़ा रखे हों। गन्नों के खेत के भीतर से स्यारों के भागने की सरसराहट सुनाई पड़ रही थी। कोई-कोई स्यार खेत से निकल मेंड़ पर आकर खड़े हो जाते थ। परन्तु आदमियों के पैरों की आहट पाकर फिर खेत में घुस जाते थे, या कभी दौड़ कर दूर भाग जाते थे। वहाँ से अपनी ललाई लिए नन्हीं-नन्हीं आंखों में भय और जिज्ञासा भर कर खड़े-खड़े देखते रह जाते थे। उनके खड़े होने का ढंग ऐसा था मानो अभी वे यह निर्णय कर पाये हों कि उनके शान्त और आबाध विचरण में बाधा उपस्थित करके इसमें दो पैर के आदमी ने जो गुनाह किया है, उसके लिए उसे क्या सज़ा तजवीज़ की जाय, या उसने स्वयं समय से पहले निकल कर ग़लती की है। कुछ देर तक इसी तरह खड़े-खड़े वे सोचते समझते कि क्या करना उचित है और फिर अपनी लम्बी-लम्बी पूँछों को लटकाये हुए भाग खड़े होते। उनकी पूँछ उछलती तथा लटकती। उस समय ऐसा लगता जैसे यह पूंछ उनके लिए बाधा-स्वरूप हो। किन्तु इन्हें जैसे अपनी पूँछों के प्रति एक मोह हो, एक आकर्षण हो और इसलिए उसे छोड़ सकने में वे असमर्थ हों। भागते हुए वे पीछे मुड़-मुड़ कर क्षण भर रुक रुक कर देखते जाते, जैसे वे इस बात का अंकन कर रहे हों कि वे जो इस तरह भाग रहे हैं, वह सही खतरे के कारण ही या केवल भय-वहम के कारण भाग रहे हैं।

अंधेरा धीरे-धीरे धरती पर उतर रहा था, जैसे चुपचाप कोई चोर दबे पाँवों से घर में प्रवेश करता है। दूर की चीज़ें अब धुंधली होती जा रहीं थीं। हल्के अँधेरे में बगीचे और पेड़ ऐसे मालूम होते थे जैसे आकाश में अँधेरे से हाथ मिलाने के लिए धरती से किसी काली छाया का पहाड़ उठ रहा हो। अरहर और गन्ने के खेत जैसे किसी काली चादर के समान मालूम हो रहे थे।

पश्चिम के आकाश पर एक तारा निकल कर झाँकने लगा, मानो देख रहा हो कि अभी बाहर निकलने का समय हुआ कि नहीं, कि अभी धरती पर अँधेरा फैला कि नहीं, ताकि अपने साथियों को वह यह शुभ समाचार दे सके कि बाहर निकलने का समय हो गया। देखते-देखते उसका मुँह चमकने लगा और उसके आस-पास दो-चार तारे और भी निकल आये। फिर सारे आकाश में छोटे-छोटे अनगिनत तारे निकल आये। देखने से वे ऐसे लगते थे जैसे मलमल की काली चादर पर सफ़ेद-सफ़ेद सितारे हों जो जगमग-जगमग चमक रहे हों।

दूर-दूर खेतों में से अब स्यारों का हुआँ हुआँ का स्वर सुनाई पड़ने लगा था। लगता था जैसे जीत की खुशी में हुलास से भर कर बिगुल बजा रहे हों। जैसे दिन को पराजित कर उन्होंने ही धरती पर यह अँधेरा ला दिया है, जिसमें रात में विचरण करने वाले प्राणी बिना किसी भय-बाधा के आनन्दपूर्वक विचरण कर सकें।

प्रकृति इस समय जैसे अपने शान्ति और मोहक रूप में चुपचाप धरती पर उतर रही हो। चारों ओर एक अजीब लुभावनी शान्ति और कोमलता परिव्याप्त थी।

: १५ :

डोमन भगत की मंढ़ई पर लोगों की भीड़ सी लगी थी, काम-काज से छुट्टी पाकर कुछ तम्बाकू पीने के लिए आ गये थे। कुछ लोग डोमन भगत के साथ बैठ-उठकर उनके साथ हँस-बोल कर अपनी बिरादरी के अन्य लोगों की नज़रों में यह बात जंचा देना चाहते थे, कि वे भी

साधारण आदमी नहीं हैं। उनकी विद्या-बुद्धि और अनुभव ऐसा है कि डोमन भगत, जो कि बारह गाँवों के चमारों के चौधरी हैं, उन को भी राय-सलाह उनसे लेनी होती है। कुछ अन्य चमारों का यह रोज का कार्य-क्रम था कि काम-काज से छुट्टी पाकर डोमन भगत की मढ़ई पर आ जाते थे। गाँव-भर की बातें वहाँ होती रहती थीं। किस व्यक्ति का किसमे क्या सम्बन्ध है, किसको खराब और सड़े अन्न की मजदूरी मिली है, किसने आज बन्नी बनाते समय अच्छी-अच्छी बालें छाँटकर बन्नी के बोझा में बाँध लिया था और उसके मालिक ने किस तरह यह भेद ताड़ लिया था। किस तरह किस आदमी की औरत अब घर रखने लायक़ नही है, वह छोड़कर दूसरे के यहाँ बैठ रहेगी अथवा किसके किसान मालिक की फ़सल अच्छी है, आदि अनेक बातें विभिन्न रूपों में यहीं पेश की जाती, और उन पर मनमाने ढंग से विचार-विनिमय किये जाते। अपनी तरफ़ से फ़ैसले दिये जाते, आलोचना-प्रत्यालोचना की जाती। डोमन भगत अपने पुराने अनुभवों को, अपने जमाने के हाल-चाल का लोगों से बयान करते रहते थे। वे इस तन्मयता से लोगों की बातें सुनते थे और इस गम्भीरता से अपनी राय पेश करते थे, जैसे उनकी बातों का काट इस धरती पर कहीं नहीं है। जैसे वे जो कह सुना रहे हैं वही ठोस सत्य है, अन्य बाते तो जैसे बेकार और बे मतलब की हों।

दो घड़ी रात बीत चुकी थी, काम-काज से निश्चिन्त होकर लोग डोमन भगत की मंढई पर आ चुके थे। उनमे कई तरह के लोग थे, कुछ बूढ़े थे, कुछ जवान। सभी उम्र के सभी विचार के, लोग उसमें थे।

अलाव के सामने डोमन भगत एक मूँढ़े पर बैठे थे, एक मैली सी दुपट्टी ओढ़े हुए। उनके हाथों में एक हुक्का था, जिसे वे धीरे-धीरे गुड़गुड़ा रहे थे, और बीच-बीच में खाँसते भी जाते थे। उनके चेहरे पर एक अजीब गंभीरता छायी हुई थी, लगता था जैसे कोई बात उनके दिमाग़ में चक्कर लगा रही हो और उसका निदान वे नहीं

ढूँढ़ पा रहे हैं। अन्य लोग भी जो अलाव को घेर कर आग ताप रहे थे, उनके चेहरों को देखने से भी यही मालूम पड़ता था कि जैसे वे किसी ऐसी समस्या का समाधान ढूँढ़ रहे हों जिसका निदान उनके पास नहीं है। जैसे कोई ऐसी अघट-घटना घटी हो जैसी उन्होंने कभी देखी सुनी नहीं हो।

गोपी डोमन भगत के बहुत मुँह लगा हुआ था। किसी बात में अगर डोमन भगत चुप भी लगाये रहते, तो भी गोपी कोई-न-कोई अपनी राय देता ही रहता। उसे यह लगता कि अगर किसी भी मौके पर किसी भी बात को सुन कर होगा वह चुप लगा जायेगा, तो यह उसकी बुद्धि का अपमान है। तारीफ तो तब है कि जहाँ डोमन भगत भी पेच पकड़ न पायें, वहाँ वह खोलकर रखदे, जिस गुत्थी को डोमन भगत समझाने में हार जाये वह अगर गोपी समझा न दे तब तक गोपी के रहने से ही क्या हुआ। और जिस बात को वह कहेगा डोमन भगत मान ही लेंगे, क्योंकि डोमन भगत उसी के मुँह से बोलते हैं, कम-से-कम गोपी यही मानता था कि डोमन भगत जबान खोल कर भले कुछ न कहे, दिल में वह यह मानते हैं कि गोपी की अक्ल उनसे बढ़-चढ़ कर है। किसी मामले में जब डोमन के सामने कोई भी अपनी बात नहीं कह पाता तो गोपी ही भगत से पूछता था।

आज भी सभी लोग करमू की बातों को लेकर चुप थे। यद्यपि सभी यह चाहते थे कि करमू के बारे में बात-चीत पूरी तरह हो। करमू ऐसी बात करने जा रहा है जिसे न तो कभी सुना गया, न समझा गया, ऐसी बात जैसी न कभी हुई है, न कभी होगी, और न सही दिमाग़ वाला जिसे कह सुन सकता है।

अगर इन चमारों में कोई चोरी आदि में पकड़ा जाता, यदि कोई किसी की औरत को लेकर बैठ जाता, यदि कोई किसी के बैल गाय को किसी के बहकाने पर जहर-माहुर दे देता, तो यह उनके लिए कोई विशेष उत्तेजनात्मक बात नहीं थी। यह तो उनकी जाति में लग आया

था, ऐसा तो अक्सर होता ही रहता था। खासकर औरतों के विषय की कोई भी बात उन्हें उत्तेजित नहीं कर पाती। औरत को क्या, एक गई, दूसरी को रख लिया। और औरतें भी इन बातों से कोई विशेष चिन्तित, परेशान नहीं होती थीं। वे सोचती, आखिर कौन कोई रानी की तरह बैठा कर खिलाता-पिलाता है, जहाँ जाओ, जिसके साथ रहो, सब जगह एक ही बात है 'तर घरी न ऊपर तरी।' बस सब जगह अपने जाँगर के बल से खाना-कमाना है। कोई बहुत करेगा दो मीठे बोल बोल लेगा। फिर उसकी मरजी हो रखे, मरज़ी न हो छोड़ दे। जैसे उसे जोरू की कमी नहीं रहेगी, वैसे उसके लिए कोई घर मिल ही जायेगा।

चोरी-चमारी आदि अन्य बातों से भी लोग ज्यादा परेशान नहीं होते थे। अन्याय अंधेर का भी विशेष असर नहीं पड़ता था, ऐसा तो वे होश संभालते ही देखने लगते हैं।

किन्तु करमू तो बिलकुल बेढंगी बातें कर रहा है। सभी के मन में ये बातें उमस रहीं थीं और वे लोग भगत के मुँह से सुनना चाहते थे कि उनकी क्या राय है।

आखिर गोपी ने ही बात उठाई :

"भगत काका करमू की बात तो सुन ही रहे हो न।"

गोपी की बात सुनकर डोमन भगत को अपनी गुरूता का बोध हुआ। एक ज़ोर का तम्बाकू का कश उन्होंने खींचा। गड़गड़ाहट से हुक्का तड़तड़ा उठा। धूँए का गोला मुँह से बाहर निकाल दिया और फिर हुक्के को गोपी के हाथ में बढ़ाते हुए बोले :

"अभी छोकरा है, इसी से बे-सर पैर की बातें करता है, शुरू शुरू में तो लगता था कि यह लड़का बड़े नेम-धरम से जिन्दगी काट देगा। काम भी उसे तिवारी जी का मिल गया था दो पुश्त से उनके यहाँ काम करता था। मोलई तो उनके यहाँ से बूढ़ा हो गया और अपना नेम-धरम पालते हुए जब हाथ पैर जवाब देने लगे तो उसने इस करमू को

थमा दिया। पर इसने तो अपने हाथ ही अपने पैर में कुल्हड़ी मार ली। एक तो काम ठीक से नहीं करता था, खेती की नुकसानी की, और ऊपर से तिवारी से ज़बान दराज़ी की। फिर तिवारी क्यों सहेगा? वह तो मालिक ही है। क्यों किसी को सहने लगे तिवारी उनको कमी क्या है? भगवान् का दिया उनके पास सब कुछ है, फिर जो उनके मजूर हैं, उनसे भला वे क्यों दबने लगे? खुद करमू ही उनसे लड़ने लगा। इसी को कहते हैं 'आ बैल मुझे मार।' आखिर वही हुआ जो होना चाहिए था। ठोकर मार कर निकाल बाहर कर दिया और आखिर में यही करमू कुसंग में पड़कर अपना नेम-धरम तक बिगाड़ बैठा। तिवारी का बैल खोल लिया और जेल की सज़ा काटी अलग। हमने तो सोचा था कि अब उस छोकरे का दिमाग रास्ते पर आ जायेगा, पर वह तो न जाने कहाँ कहाँ की लम्बी चौड़ी हाँकने लगा है। पढ़ना-लिखना चाहिए, आपस में मिलकर रहना चाहिए, अगर हम लोग एका करके रहेंगे तो आज की दुनियाँ में मान बढ़ जायेगा, और न जाने कैसी-कैसी बातें करता है? पर बच्चू को यह नहीं मालूम कि लोमन भगत की उम्र इसी पंचायत को करते-करते बीत गई है। इस दुनियाँ को जितना उन्होंने देखा-सुना है, छोटे बड़ों से जितना उनका साबिका पड़ा है, जितना ऊँच-नीच उन्होंने देखा है, और ज़माने की नस जैसी वह पहिचानते हैं, वह कोई क्या खाकर समझे-बूझेगा। इस तरह लम्बी चौड़ी हाँकने से कुछ नहीं होता। अगर गुड़ का नाम लेने ही से मुंह मीठा हो जाये तो इस धरती पर क्यों कोई दीन-दुखी रहता, क्यों किसी को दुख दलिद्दर सताता? सब मौज से ज़िन्दगी गुज़ारते। परन्तु आराम और सुख तो भगवान् की मरज़ी से होता है। और भगवान् उसी को सुख साधन देगा जिसका पूर्व-जन्म के तप का फल संचित हो। अपना तो धर्म है कि भगवान् ने जो अपने भाग में लिख दिया है उसी पर सन्तोष करें। मानता हूं, पढ़ना-लिखना बुरा नहीं है, बल्कि मैं तो कहता हूं कि

बड़ी अच्छी बात है। पर यह पढाई-लिखाई है किसके लिए ? यह, तो उनके लिए है जो बड़ी जातियों में पैदा हुए हैं, जिनके पास खाने-पहनने की सुख-सुबिधा है। नौकर-चाकर जिनका काम-धाम कर रहे हैं, जो बस बैठे-बैठे हुकुम चला रहे हैं। उनके लिए यह पढ़ाई-लिखाई है, न कि हम्मा-सुम्मा के लिए, जिसे नून मिलता है तो रोटी नहीं, और रोटी मिलतीं है तो नून नहीं। मैं पूछता हूं दिन भर लोग काम करेंगे, बनी मजूरी करेंगे कि पोथी-पत्रा पढ़ेंगे ? हाँ, रात की ही बात लेता हूं, दिन भर के हाड़-तोड़ मेहनत करने के बाद आदमी थका माँदा जब घर आयेगा तो दिया जलाकर आँख फोड़ने बैठेगा कि रूखा-सूखा जो मिलेगा उसे खा-पीकर हुक्का तमाकू पीयेगा ?

रही बात कपड़े-लत्ते की, सो कपड़े भला कैसे साफ़ रहेंगे ? इतने कपड़े किसके पास है ही कि एक साफ़ करे और दूसरा पहिने। मान लेता हूं कि धोबी को न देकर रेह, सोडा से खुद साफ़ करे। पर मैं कहता हूं, इस तरह कपड़े कितने दिन ठहरेंगे। एक तो कपड़ा मिलता ही नहीं। एक धोती खरीदने जाओ तो पहले परमिट लो, पटवारी और पंच की सिफ़ारिश करो तो कहीं परमिट मिले, और फिर दुकान में जाने पर आँधी आ जाती है। झीना खद्दर कपड़ा और वह भी सोने के मोल बिकता है। मैं खुद अपनी कहता हूं। एक दिन परमिट लेकर दूकान पर गया। कपड़ा तो बहुत था। मुझे मोटा कपड़ा लेना था, लेकिन एक कपड़ा बहुत अच्छा था, मन लुभा गया। लेना तो था नहीं, लेकिन दाम पूछ बैठा। एक धोती का दाम बारह रुपये। अगर एक जोड़ा कोई ले तो चौबीस रुपये। मैं तो सन्नाटे में आ गया। वह तो तुम लोगों तक के समय की बात है कि रुपये-सवा-रुपये में वह धोती आती थी कि एक अंगोछा के सहारे साल-भर रगड़ कर पहनो और फटने का नाम नहीं लेती थी। पर मेरे लड़कपन में तो बारह रुपये का ऐसा बैल आ जाता था कि रगड़ कर दस माटी जोतो। हल में वह चले, कोल्हु में वह चले, पुर में वह चले और ज़रा भी मिनकता

नहीं था। अब तो बारह-बारह रुपये की एक धोती आती है, और तिस-पर हम कपड़े धोबी को धुलाकर और पत्थर पर पटक कर फाड़ दें। ऐसे धन्ना सेठ तो हम लोग हैं नहीं कि रोज बगुले की पाँख की तरह चमाचम कपड़े पहिन कर, राजा-बाबू बन कर बाहर निकलें। अभी कल की ही तो बात है। झेंगुर के घर चला गया था, उसका लड़का बीमार है, सोचा चलो, देख आयें। जाकर लड़के को देखा। झेंगुर ने चिलम भर दी, पीने लगा। फिर प्यास लग गई, पानी माँगा तो उसकी औरत लोटे में पानी लेकर आई। दीवाल की आड़ से, आँगन में से भीतर रख कर खड़ी हो गई। पहिले तो वह सामने आ जाती थी, हमसे क्या उसका परदा और हमारे यहाँ परदा करके कोई बैठे तो काम-धाम कैसे चले। जब वह दीवाल की आड से खड़ी हो गई तो कुछ अचरज लगा। आखिर पूछ बैठा, क्या बात है ? पहिले तो वह कुछ बोली नहीं, झेंगुर भी चुप चाप रहा। मैं हैरान हो गया कि क्या बात है। फिर पूछा अरे, कुछ बोली भी, क्या बात है ?"

बस झेंगुर का सर नीचा हो गया और फिर बोला :

"भगत काका, तुमसे क्या दुराव, कपड़े लत्ते उसके पास नहीं हैं। टाट लपेटे है।"

अब कोई बताये, कोई अपना हाड़ चाम साफ़ करेगा ?

"और साथ ही वह जो सफाई-सफाई चिल्लाता है तो यह चमटोल है। कोई राजा रईस की कोठी नहीं है कि हर वक्त चन्दन छिड़का रहेगा, आखिर सूअर तो अपने हैं, उन्हें कहाँ रखेंगे ? गाँव में ही तो। वह गली-गली घूमेंगे, उनको हम रोक तो सकते नहीं। घूरा हम कहाँ उठा कर रखेंगे। अपने पास न जगह है, न जमीन है। यह डीह ही अपना है, अपने घर के सामने घरे तो हम लगायेंगे ही।

"सुनता हूँ, जेल से छूटा तो वह कहीं इधर-उधर घूमा और अब भी आता जाता रहता है। कहीं सुन लिया है कि हम लोग पढ़-लिख जायेंगे तो हमी राज-काज करेंगे। हम लोग भी बड़े-बड़े के बराबर

हो जायेंगे और हम भी उनकी बराबरी करने लगेंगे। पर जात जो लग आई है, वह क्या हमारे चाहने से छूटेगी। अभी वह बड़ी लम्बी-लम्बी बातें हाँकता है, किन्तु कोई बड़ा-बड़ुआ पकड़ कर दो हाथ लगा देगा, फिर ठन्डा हो जायेगा। आदमी को वह करना चाहिए, जो उसकी जात में लग आया हो, और उसके बाप-दादों के समय से चली आ रही हो। तभी उसका कल्याण होता है। तभी वह तरक्की कर सकता है। अगर हम भी यही कहें कि नहीं हम भी ब्राह्मणों की तरह पोथी-पत्रा बांचेंगे, लाला जी की तरह सरकारी कागज़-पत्र संभालेंगे तो कितने दिन निबहेगा ? अपना काम करो, बस यही सबसे बड़ी बात है। हमको तो यह भी अच्छा नहीं लगता कि लड़के-बाले स्कूल जायँ। अब इसमे क्या धरा है। हम लोग छोटे-छोटे थे तब कितना काम करने थे। अब पाँच-पाँच, दस-दस क्या बारह-बारह तक की उम्र के लड़के हो जाते हैं, और बस पढ़ रहे हैं। इस पढ़ाई से क्या ? इस चमटोल से हो कुछ नही तो दस बारह लड़के पढ़ने जाते होंगे। इस पढ़ाई से क्या फ़ायदा होगा ? वही अगर घर पर रहते तो, किसी के गाय-बैल चराते और घास-पानी करते तथा और कोई छोटा-मोटा काम करते तो पेट चलता। घर वालों को भी एक आसरा रहता। अब सारा समय स्कूल में बिता रहे हैं और खेलने-कूदने से फुरसत नहीं।"

: १६ :

गेहूँ और जौ की कटनी शुरू हो गयी थी, पहर रात रहे ही लोग मजदूरों को लेकर खेत पर पहुँच जाते थे और ठंडे-ठंडे में खेत काटना शुरू हो जाता था। इससे एक फायदा यह भी होता था कि बालें ज़मीन पर टूट कर नहीं गिर पाती थीं। नहीं तो ज्यादा दिन चढ़ जाने पर सूरज की धूप में डंठल सूख जाने पर काटते समय जौ और गेहूँ की बालें टूट कर खेत में गिर पड़ती हैं और उनको खेत से इकट्ठा करने में काफ़ी समय और परिश्रम लगता है, साथ ही थोड़ा बहुत नुकसान भी

हो जाता है। क्योंकि चैत में पछुआ हवा शुरू हो जाती है दोपहर होते-न-होते जब पछुआ बबकारने लगता है, तब जौ और गेहूँ के कटे हुए डंठल हवा के झोंके से इधर-उधर बिखर जाते हैं। उस समय सर पर बोझ लेकर चलना भी कठिन हो जाता है। इसी से किसानों की यही कोशिस रहती है, कि पहर भर दिन चढ़ने के पहिले-पहिले कटनी खतम हो जाया करे और उसके बाद बोझ की ढुलाई शुरू की जाय।

आमतौर पर किसान, मज़दूरों से ही खेत कटवाते हैं। क्योंकि जब फ़सल पक जाती है, तब इतना समय नहीं रह जाता कि उन्हें खेत में ज्यादा दिन तक खड़े रहने दिया जाय। एक तो जो खेत कट गये रहते हैं, उनमें से गाय-भैंसों का आना-जाना शुरू हो जाता है : उनकी चराई शुरू हो जाती है। भेड़ बकरियाँ भी चरने के लिए आने लगती हैं और इस तरह खड़ी फ़सल के नुकसान होने का डर रहता है। दूसरे पकी फ़सल खेत में खड़ी रहे, और उसकी अगोराई में जरा भी कसर पड़े तो खेत से फ़सल कट जाय। कुछ न होगा तो ज़रा सा भोर पड़ते ही दस-पाँच बोझ कट जाना कोई मुश्किल नहीं है। आखिर सबके पास तो जगह ज़मीन होती नहीं। जिनके पास जगह-ज़मीन नहीं, खेती-बारी नहीं होती, मज़दूरी बन्नी पर गुज़र करते हैं, वे ज़रा सा मौक़ा पाने पर खेत से खड़ी फ़सल काट ले जाते हैं। आखिर किसी तरह पेट तो भरें! इसके साथ ही जब पछवा हवा चलनी शुरू हो जाती है, तब बालें टूट-टूट कर गिरने लगती हैं और फ़सल का भी नुकसान होने लगता है। इसलिए किसानों को जल्दी पड़ी रहती है कि फ़सल पकने पर खेतों में खड़ी न रहे। आखिर फ़सल जितनी जल्दी तैयार हो जाये, दायं-मीस कर अनाज निकाल लिया जाये, उतनी ही सहूलियत होती है। पौनी-परजा को देना, हाकिम महाजन को देना, लगान-पाती देना, कपड़ा-लत्ता लेना, सभी कुछ तो इसी पर मुनहसर करता है कि खेत की फ़सल तैयार हो जाय तो हाथ कुछ सरके। किसान के पास फ़सल के सिवा और कोई आसरा होता नहीं, जिसके बल से उसका खर्च चले। इसलिए जब फ़सल

पक कर तैयार हो जाती है, तब मज़दूरों से फ़सल कटवा ली जाती है। इन मज़दूरों में अधिकतर औरतें ही होती हैं, बोझ ढोने का काम उनके मर्द करते हैं। कभी-कभी औरतें भी बोझा ढोती हैं। कटाई के एवज़ से मेहनताने के तौर पर कहीं-कहीं उन्हें चौबीस बोझ फसल काटने पर एक बोझ मज़दूरी के रूप में मिल जाता है और कहीं पर अठारह बोझ या सोलह बोझ के पीछे एक बोझ मज़दूरी के रूप में मिल जाता है।

रामपुर गाँव की चामारिनें रामलखन के खेत में जौ की कटाई कर रही थीं। आस-पास के खेतों में कटनी हो रही थी, थोड़ी दूर पर मुन्शी रामसरन के खेत में भी कटनी हो रही थी। कहीं कोई स्वयं काट रहा था। परन्तु अधिकांश किसानों के खेत में मज़दूरिनें ही काट रही थीं। किसान अपने खेतों की मेंड़ पर खड़े होकर रखवाली कर रहे थे, जिससे मज़दूरिनें दाने निकाल कर कहीं छिपा न दें, या भोर पड़ते ही अपने लड़के बच्चों को छिपा कर दे-न दें।

घड़ी भर दिन चढ़ आया था, अभी पछुवा हवा धीरे-धीरे बह रही थी। उसके वेग से सोने के रङ्ग की पकी हुई गेंहूँ और जौ की बालें हलकी-हिलती काँपती, सरसरा रही थीं। जौ की बालों पर लम्बे-लम्बे बाल निकले हुए थे, लगते थे जैसे किसी बच्चे के सुनहले बाल हों, और प्रसन्नता में सर हिला-हिला कर हिल रहे हों।

मज़दूारेनियों में एक तरह की होड़ मची हुई थी, कौन ज्यादा कर लेती है। आखिर जो जितना काटेगी, उतनी ही ज्यादा उसे मज़दूरी भी मिल जायेगी। यही तो मौका है कि कुछ कमा लिया जाय। साथ में ऐसे मौके आते ही कितने हैं; मकई की फसल तो दस दिन से ज्यादा ठहरती ही नहीं : और इस इलाके में तो वह और भी कम होती है। यही चैती फ़सल है, कि महीना भर तक कटनी चलती रहती है। पहले मटर है, फिर गेंहूँ और जौ है और फिर चना वगैरह है। अरहर तो बहुत मामूली, थोड़ी बहुत ही होती है, जिसे किसान खुद ही काट लेते हैं

मज़दूर रखकर कटवाने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। इसलिए जब चैती फ़सल कटने लगती है, तब मज़दूरनियाँ इस प्रयत्न में रहती हैं कि अधिक-से-अधिक कटनी कर लें ताकि बैठकी में खाने-पीने के लिए कुछ बचा रह जाये।

दाहिने हाथ में दराती या हँसिया को लिए और बायें हाथ से फ़सल के पौधे को पकड़ कर भर-भर मुट्ठी वे काट रही थीं। खेत के काटने से एक चर-चर का स्वर हवा में गूंज रहा था। वह आवाज़ इतनी प्यारी और लुभावनी थी, कि उसे सुनकर खेत की मेंड़ पर खड़े किसानों का दिल खुशी और उल्लास से फूल उठता था, जैसे कोई माँ अपने छोटे बच्चे की तोतली बोली सुन-सुन कर खुश होती है और बार-बार निछावर हो जाती है। उसी तरह किसान लहालोट हो रहे थे, काटने वाली मज़दूरनियों का हृदय भी इस मर्मर स्वर से, एक पुलक से, एक आनन्द से, एक अव्यक्त खुशी से भर जाना था। उन्हें लगता था जैसे वे दूसरे के नहीं, अपना ही खेत काट रही हों। यह अनाज दूसरे के घर नहीं, बल्कि जैसे उनके अपने ही घर जायेगा और उनका दिल खुशी से भर उठता था। बहुत तेज़ी से मरक-सरक कर खेत काट रहीं थीं। कटे हुए पौधे थोडी-थोड़ी दूर पर एक कतार से रखे हुए थे। वे लहने देखने में ऐसे सुन्दर लगते थे, जैसे मानों थोड़ी-थोड़ी दूर पर सुख और शोभा की निधि उन लहनों में मिली बिखरी पड़ी हो।

खेत काटते समय मज़दूरनियाँ कभी-कभी कोई गीत गाती रहतीं थी। उस गीत का विषय किसी परदेश गये प्रीतम को वापस बुलाने के विषय में रहता था। कभी-कभी अन्न की देवी अन्नपूर्णा की अभ्यर्थना के विषय मे होता। वे आपस की घर-गृहस्थी की बातें करतीं। अपने सुख-दुख की बातें करतीं, अपने किसान मालिकों और मालिकिनियों की उदारता या कंजूसी के बारे में बातें करतीं रहतीं। कभी अपनी सासों के बारे में, ससुर के बारे में और कभी अपने पतियों के बारे में

बातें करती रहतीं।

आज तिवारी का खेत काटते समय उनमें उसी तरह की बातें हो रही थीं। जितिया ने एक गम्भीरता से अपनी अन्य साथिनियों की ओर देख कर कहा :

"अब तो जैसे सोलहों आने कलजुग आगया।"

क्षण भर के लिए हाथ चलाना बन्द करके उसकी साथिनियों ने उसकी ओर देखा, जैसे पूछ रही हों, कुछ कहो भी तो।

जितिया : झेंगुर की परानी 'औरत' नहीं आई है न, कल उसके घर पर दोनों भाइयों में लड़ाई हो गई।

धनिया : तो कौन नई बात होगई। पहर रात गये कुछ हल्ला-गुल्ला हो रहा था, पर मैं निकली नहीं। उसके घर तो रोज़-रोज़ यह लगा ही रहता है। आज भिनसारे उठकर चली आई, मालूम नहीं वे सब क्यों लड़ रहे थे ?

मँगरी : होगा कोई खाने-पीने का मामला। अब उन दोनों भाइयों में पटती नहीं है, जब देखो तब डोम-कचई मचाये रहते हैं।

जितिया : पर एक उसी के घर तो खाने-पहिनने की तक़लीफ़ नहीं है न। यह तो देश-परदेश, सब की बात है, पर उन लोगों जैसा कहीं किसी को नहीं देखा।

और फिर कुछ ठहर कर उसने कहा :

"जब बड़े जोर-ज़ोर से हल्ला-गल्ला होने लगा तब बरदाश्त नहीं हुआ। दिन भर बनी मज़दूरी करो और रोज़ रात को हल्ले-गुल्ले से नींद खराब करो। जब कल नहीं पड़ी, तब उठ कर घर के बाहर निकल आई, देखा जगेसरी अपने दरवाज़े पर खड़ी है। पूछा क्या है ? किस बात के लिए इस आधी रात पर रौला मचा हुआ है ? तो उसने कहा : क्या बताएँ बहना ! लाज-शरम की बात है। जानती हो घर में कुछ है नहीं। लड़का अलग गिराँ पड़ा हुआ है, उसे छोड़ कर कहीं कटनी-बटनी करने भी मैं नहीं जा सकती। अब तुम से क्या छिपाना ? अनाज

पानी हो, तब न खाना-पीना बने। थोड़ा आटा पड़ा था, बस एक टिक्कड़ बना दिया था। दोनों भाई खाने बैठे तो लड़ पड़े। उसने कहा : तुम्हारा टुकड़ा बड़ा है, उसने कहा तुम्हारा बड़ा है। बस इसी बात पर बात बढ़ गई। तुम तो जानती हो, इनमें कोई भी चुप मार कर बैठने वाला नहीं है। आखिर तराजू लेकर दोनों टुकड़ों को तौलने लगे। हमारे मरद का टुकड़ा कुछ बड़ा निकल गया। बस क्या था, मोर-तोर होते-होते हाथा-पाई हो गई। मुझे तो बड़ी गलान होती है।"

जितिया की बातें सुन कर सब एक-साथ हँस पड़ीं और मन लगा कर खेत काटने लगीं। यह हँसी जैसे उनमें एक और ताज़गी भर गई हो।

जितिया ने मुट्ठी का डंठल लहने पर रखते हुए कहा :

"मुआ चैत चल रहा है, पर जाड़ा अभी गया नहीं; भला यह भी समय जाड़े का है। मैं क्या बताऊँ तुमसे ? इस साल तो जड़वार भी हम लोगों को मालिक ने नहीं दिया। किसी तरह जाड़ा काट दिया। कल रात को तो तड़का-भिनसारा होते-होते ऐसा मालूम हुआ कि जैसे तुसार पड़ रहा हो। लुगरी को दोहरा करके ओढ़ा, तब भी जाड़ा नहीं गया। दाँत किटकटा रहे थे, मालूम होता था कि यह जाड़ा हाड़ फोड़ देगा।"

धनियाँ की उम्र इन सब में सब से अधिक थी। वैसे तो सभी तीस के आस-पास थीं, किन्तु उनका तन-शरीर ऐसा टूट गया था कि लगती मानो पेतालीस पचास साल के आस-पास की हों। उम्र अधिक होने के कारण धनियाँ अपने को सब से अधिक जानकार समझती थी। जितिया की बात सुन कर उसने इस तरह मुँह बनाया जैसे ये बातें तो बच्चों की हों। कहा :

"तुम लुगरी की बात करती हो, अरे चैत का जाड़ा किसी से कम थोड़े ही होता है। कभी-कभी तो माघ और पूस को भी मात कर देता है। तुमने वह किस्सा नहीं सुना कि एक आदमी ने सारा जाड़ा बिना

रज़ाई, कम्बल के ही काट दिया; लेकिन चैत का जाड़ा उससे भी नहीं सहा गया। चैत की जब ठंड लगी तो बाछी बेचकर उसने कम्बल मोल लिया।

जितिया को धनियाँ की ये बातें अच्छी नहीं लगी। कोई क्यों उसकी बात काटे। वह किसी से पीछे थोड़े ही है! और यह धनियाँ सदा अपनी ही हाँकती रहती है। इसे कुछ गुमान भी हो गया है। इसका मर्द गोपी, डोमन भगत का बड़ा मुँह लगा है। सब आदमियों में अपने को वह बड़ा होलकर मर्द समझता है। सब पर धौंस जमाता रहता है और उसकी मेहर होने के कारण इसको बड़ा ग़रूर है कि उसके मर्द के सरीखा न तो किसी का मर्द है और न उसकी तरह कोई औरत है। जब होती है तब सब की बात काट कर अपनी बात ही बड़ी करती रहती है। खासकर मेरे मुँह से कोई बात निकली नहीं कि इसने टोका। चिढ़ कर जितिया ने कहा :

तुम तो अपनी ही बात बड़ी करती हो। चैत में जाड़ा तो कभी-कभी पड़ जाता है। वह भी जब बदरी-झकड़ी हो तब; नहीं तो आधी रात गये तक वैसे ही पड़े रहो, कपड़े की कोई ज़रूरत ही नहीं और बहुत हुआ तो भिनसारे को एक चादरा ओढ़ लिया, बस बहुत है।

यह कह कर उसने धनियाँ के मुँह की ओर एकबार देखा, जैसे वह आँक रही हो कि उसके इस चैलेंज का उस पर क्या असर पड़ा है।

साथ ही उसने अन्य मजदूरनियों को एक नज़र से देखा, जैसे वह समझ लेना चाहती हो कि उसकी बातों का इन पर क्या असर है।

मंगरी और जितिया में काफी अपनाव था। दोनों एक उम्र की भी थी। एक दूसरी की बहुत बातें वे जानती थीं। जितिया की बात सुन कर मगरी मुस्करा रही थी, जैसे उसे बढ़ावा दे रही हो, कि खूब जवाब दिया तुमने। यह धनियाँ तो जब तक एक-दो नहीं सुनेगी तब तक इसके होश ठिकाने नहीं रहेंगे। परन्तु ऊपर से कहा :

जाने दो, क्या उसके मुँह लगती हो। उसकी तो यह आदत ही है कि

कुछ भी कहो, बस ले उड़ती है।

परन्तु उसके स्वर मे यह ध्वनि उठ रही थी कि खूब कहा तुमने। और भी दो-चार सुना दो तो ठीक है, यही मौक़ा है कि इसको खबर लो।

मंगरी के मौन आश्वासन पर जितिया ने फिर कहा :

"और मैं कहती हूं, जिस आदमी ने चैत में बाछी बेच कर कम्बल खरीदा था, वह एक नम्बर का निखट्टू रहा होगा, नहीं तो जब सारा जाड़ा तो ठिठुरते काट दिया और जब चैत का महीना आया, जाड़ा खतम हो गया, तब उसने बाछी बेच कर कम्बल खरीद लिया।"

फिर उसने एक सरसरी नजर से अपनी अन्य साथिनियों पर डाली और कहना शुरू किया :

"चेत में बाछी बेच कर कम्बल खरीदने की बात ठीक हो या न हो, पर यह तो सभी जानते हैं, कि 'आधे माघे, कम्बल काँधे'। माघ आधा बीतने पर जाड़ा खतम होने लगता है और लोग कम्बल रजाई का ओढ़ना बन्द कर देते हैं। मैंने तो उस मुसहर के बारे में कहावत सुनी है कि जिसके पास जाड़े में ओढ़ने के लिए कुछ नहीं था। पूस का महीना ठिठुरते-ठिठुरते बीत गया और माघ में भी जब एक दिन बीत गया, तब उसने कहा था कि 'गया माघ, दिन उन्तीस बाकी।' चलो अब क्या रखा है जाड़े में, माघ का एक दिन गया, अब जाड़ा कहाँ रहा। और यहाँ कहने वाले कह रहे हैं कि चैत में बाछी बेच कर कम्बल खरीदा। धन्य है इस अक़्ल को।"

मरछिया : मैं यह सब कहानी किस्मे तो नहीं जानती कि चैत में बाछी बेच कर कम्बल खरीदा, पर इतना तो सभी जानते हैं कि चैत में जाड़ा खतम हो जाता है। हाँ, किसी दिन पानी पड़ जाय, तो वह बात दूसरी है, नही तो जाड़े का मौसम तो नहीं रहता।

धनियाँ ने समझ लिया कि आज सब ने उसके खिलाफ़ एका कर लिया है। इसलिए चुप लगाकर रहने में ही अपनी भलाई है। उसने

अपना चेहरा गम्भीर बना लिया और चुपचाप खेत काटती रही।

कुछ देर इसी तरह गम्भीर वातावरण रहा। सभी चुपचाप खेत काट रही थीं। परन्तु देर तक वातावरण की यह गम्भीरता बनी नहीं रह सकी। आखिर खेत की कटनी हो रही थी, हँसी-खुशी का समय था और कटनी के समय वैसे भी दो-चार इकट्ठी रह कर चुप नहीं रह सकती थीं। चुप्पी से काम का बोझ और भी बढ़ जाता है। बात चीत होती रहती हैं, हँसी मज़ाक चलता रहता है, इधर-उधर की गप्पें लड़ती रहती हैं, तब काम भी खूब होता है और थकान भी नहीं मालूम होती।

मरछिया ने कहा : तुम लोग तो ऐसे चुप बैठ रही हो जैसे किसी ने बोलने पर हुकुम लगा रखा है। आपस की बात में मुंह फुला लेना ठीक नहीं है।

धनियाँ : क्या करें, चुप न बैठें तो अपना सर फुड़ायें। यहाँ तो कोई बात मुंह से निकलती नही, कि लोग पीछे पड़ जाते हैं। अरे! मैंने क्या कहा था? यही न कि चैत में जाड़ा कम नहीं पड़ता है। पर तुम लोगों को तो जैसे मेरी बात खल जाती है। वैसे तुम लोगों ने कल खुद यही बात कही थी कि चैत का जाड़ा माघ, पूस से कम नही होता है। जाते-जाते अपना बल दिखा जाता है। मुझे कौन पूस, माघ के जाड़े से छोटा कहता है, पर यही बात मेरे मुंह से निकली और तुम लोगों ने कौआ-रोल मचा दिया।

जितिया बात तो कह बैठती थी। उससे किसी की धौंस नहीं सही जाती थी। वह तुरन्त मुंहतोड़ जवाब दे बैठती थी। पर उसके मन में कोई बात देर तक टिकती नही थी। धनियाँ की बात को उसने काट तो दिया, परन्तु मन में सोच रही थी, कि बेचारी को बहुत झेंपना पड़ा। उसने बात कोई झूंठी तो कही नहीं थी और अब वह सोच रही थी कि किस तरह से बात चालू की जाये, जिससे धनियाँ के मन में जो ठेस लग गई है वह मिट जाये। अब फिर बात का सिलसिला चाल कर के हँस कर उसने कहा :

तुम तो बात-बात पर तुनक जाती हो, जैसे नई नवेली दुलहिन हो, सो तुम्हें कोई छेड़ रहा हो और तुम नखरा दिखा रही हो। जब तुम नई बहुरिया थीं, तब बात दूसरी थी। अब तो तुम्हारा वह ज़माना नहीं रहा जो तुम्हारे साथ कोई छेड़खानी करे।

धनियाँ के मन से मैल निकल गया। उसने सोचा कि मैं तो झूठे ही इस बेचारी पर झल्ला उठी थी। खुश होकर कहा : छेड़खानी करो न, मना कौन करता है और फिर कुछ सोच कर कहा :

तुम भी उस करमू की मेहरी जगनी की तरह पढ़ना शुरू कर दो न। साफ़-साफ़ कपड़े पहिनो, बाल संवारो और हिन्दी उर्दू पढ़ कर फ़ारसी बोलो।

करमू का नाम सुन कर सब हंस पड़ी।

करमू की बात को लेकर लोगों में बमचख मची हुई थी। हर कोई कुछ-न-कुछ अपनी राय इस पर प्रकट करता, अपनी रुचि के अनुसार उसकी हंसी उड़ाता, निन्दा-शिकायत करता। कोई-कोई दबी ज़बान से उसकी बात का समर्थन भी करता था, परन्तु समर्थन करने वालों की संख्या बहुत कम थी।

वैसे ही कटनी में जो गम्भीर वातावरण जितिया और धनियाँ की बात को लेकर आ गया था, वह करमू का नाम लेते ही काफ़ूर हो गया। छोटे बच्चे जैसे आपस में किसी बात पर झगड़ा कर बैठे हों और वसे ही उनके बीच में कोई बन्दर कूदता हुआ आजाय, तो लड़के उस समय खुशी से चहक उठते हैं। तरह-तरह से मुंह बना कर उसका मज़ाक़ उड़ाते हैं। वे भूल जाते हैं कि अभी अभी हम लड़ाई-झगड़े पर तुले हुए थे। जैसे वह लड़ना-झगड़ना इस हंसी का ही उपक्रम था।

हंसिए को ज़मीन पर रख कर, खेत काटना बन्द करके धनियाँ ने मुंह बना कर कहा :

पढ़ने की बात तो वह करता ही है और भी ऐसी-ऐसी बातें करता है कि सुन कर छोटे-छोटे बच्चे भी उसकी बुद्धि पर तरस खायें और

बात तो रहने दो, अब पढ़ने की ही बात लो ! तो अब हम लोग पढ़-लिख कर क्या करेंगीं ? कौन जंग जीत लेंगीं । पढ़ना-लिखना मर्द-मनई का काम है और वह भी बड़े-बड़ों का । अपनी जाति में पढ़ना-लिखना नहीं चलता । जो लड़के पढ़ रहे हैं, उन्हें देख रही हूं न, कि ठीक से भगई पहिनने की भी तमीज़ नहीं है । मेरे ही लड़कों को देखो । जगनती दस वर्ष का हो गया न, इसी चैत का उसका जन्म है । रामनवमी का एक दो दिन बाक़ी था, पर लड़का है बड़ा भागवान । पेट में था तब ज़रा भी तक़लीफ़ नहीं दी । मालकिन के यहाँ से घर लीप-पोत कर आई थी, कुछ पता ही नहीं चला कि दर्द कब कैसा होता है । हां, तो इसी राम-नवमी के आते-आते उसका ग्यारहवाँ साल लग जायेगा । स्कूल में जाता है, सब लोग पढ़ाई-पढ़ाई चिल्ला रहे हैं न । इसी से इसके बाप को भी शौक चर्राया है कि बेटवा पढ़ेगा । पढ़ कर जैसे कलक्टर ही बन जायेगा । मैं तो हट किये थी कि आज तक हमारे घर में किसी ने नहीं पढ़ा-लिखा और न हीं कोई स्कूल मदरसे ही गया जो अपने कुल में नहीं लग आया है, उसे नहीं करना चाहिए । अपनी ओर से नई रीति नहीं चलानी चाहिए । जाने सहे या न सहे, पर वह माने नहीं । एक हठी है, इधर की पिरथी उधर हो जाये, पर वह ऐसा हठी है कि जिस बात की उसे धत लग जायेगी, क्या मजाल कि बिना पूरा किए क्षण-भर के लिए भी साँस ले ले । आखिर उस स्कूल ले जाकर बैठा ही दिया । अब काम-काज का हर्ज अलग होता है । इतना बड़ा लड़का तो हम लोगों की जात में कमा कर खाता है । कुछ न करता तो किसी की गायें चराता, खाना कपड़ा तो मिलता न ! अब स्कूल जाता है, न कुछ काम न धाम । न उसके शरीर में ही कोई दम है । हकर-हकर साँस आती है और पढ़ने-लिखने में यह हाल है कि एक दिन उसके बाप ने एक हिसाब पूछ दिया : चवन्नी सूद पर पाँच रुपये मूल सूद मिला कर डेढ़ महीने में कितना हो गया ? महाजन का देना था । वह टुकुर-टुकुर मुंह ताकने लगा । मुझे तो बड़ा गुस्सा आया जी में

सोचा कि अभी बाँह पकड़ूं और घसीट कर स्कूल ले जाकर मास्टर के आगे पटक दूं कि यही तुमने पढ़ाया है कि छोटा-सा सवाल भी नहीं जानता। घर के काम-काज का अलग नुकसान कराते हो और लड़कों की ठीक से पढ़ाई-लिखाई भी नहीं करा सकते। अब बताओ इस पढ़ाई को लेकर क्या करें ? ओढ़ें कि बिछायें।

जितिया : वह तो खैर जगन अच्छा है। लड़के-बारे पढ़ें-तो-पढ़ें, पर वह मुआ करमू तो कहता है कि हम लोग भी पढ़ें। बताओ बूढ़े-सट्ठे लोग अब क्या करेंगे पढ़ कर ? उनके चमड़े की ढोल मँढ़ी जायेगी क्या ? फिर बूढ़ा सुग्गा राम-राम नहीं करता। पढ़ने-लिखने की भी एक उम्र होती है।

धनियाँ को लगा कि जैसे जितिया उसकी बात काट रही है। कोई क्यों मेरी बात काटे। सोचती होगी कि ठीक है, उसका लड़का पढ़-लिख कर खराब होगा। घर रहेगा तो दो दाने की मजदूरी करेगा। किसी का खाना-पीना इन लोगों से देखा नहीं जाता है। तुनक कर बोली :

लड़के-बारे क्यों पढ़ें, क्या उन्हीं की जान फालतू है ? अरे, जिन्ह कागज-पत्तर का काम देखना हो, वह पढ़ें। हमारे नैहर में एक ठाकुर हैं, उनके धन का ओर-छोर नहीं है। मैं तो कहती हूं कि वैसा धनी काहे को होगा कोई इस पिरथी पर। अनाज की तो बात क्या, घर में नोट और रुपया जमे पड़े हैं। मेरा छोटा भइय्या कहता था कि बहन, सरकार के पास भी क्या इतना खजाना होगा, जितना उस ठाकुर के पास है। पर उन्होंने अपने लड़के को नहीं पढ़ाया। मास्टर सर पटकते-पटकते मर गया, ठाकुर ने बस एक जबान निकाल दी सो निकाल दी। कोई मैंने लड़कों को पढ़ा-लिखा कर नौकरी-चाकरी करानी है ? मेरे घर में भगवान् का दिया इतना है कि सब जने पड़े खाते-पीते रहते हैं। जब ऐसा धन्ना सेठ तक अपने लड़के को नहीं पढ़ाता, तो हम क्या खाकर पढ़ायेंगे ? और फिर अपने पास पढ़ाने के लिए है ही क्या। फ़ीस माफ़ हो जायगा तो इससे क्या, कपड़े-लत्ते तो सरकार

नहीं दे देगी ? खाना-पीना तो नहीं चला देगी ? मै तो कहती हूं कि पढ़ना-लिखना सब का काम नहीं है। हमको कायथ नहीं बनना है, जो जगह-जमीन बेच कर अपने लड़कों को पढ़ाते हैं।

मरछिया ने देखा कि ऐसा न हो कि जितिया और धनियाँ में फिर ठन जाय, तो जो यह मजेदार बात करमू की निकली है, बन्द हो जाय और फिर इन लोगों की कौवा रौल शुरू हो जाय। बात का रुख बदलने के लिए उसने कहा :

खैर, पढ़ने-लिखने की बात को छोड़ो। वह तो कहता है कि हम लोग बहुत गन्दे हैं। कुएँ के पास पानी न गिराएं। कुएँ में गन्दे पानी का छिटका जाता है तो पानी खराब हो जाता है और उसी कुएँ के पानी को हम लोग पीते हैं, उसी से रसोई बनाते हैं। इसलिए उस कुएँ के पानी को साफ़ रखना चाहिए। अब बताओ यह अंधेर कब तक निबहेगा ? आखिर यह कुआ, तालाब, बने किस लिए हैं, नहाने-धोने के लिए ही न ! कि कोई कुएं की आरती उतारी जायेगी। आदमी नहाये-धोयेगा तो कुएं में पानी का छिटका तो जायेगा ही। आदमी कोई आकाश में थोड़ा ही नहायेगा !

फिर कुछ रुक कर बोली :

एक दिन क्या कर रहा था कि कुएं के पास ही घास छील रहा था, दाँतुनों की जो फाँकें पड़ी थीं, उन्हें उठा कर एक जगह कर रहा था। किसनी के बाबा ने हँसते हुए पूछा कि यह क्या कर रहे हो ? इन दाँतुनों को इकट्ठा करके क्या करोगे ? तो कहने लगा कि ये हवा में उड़ कर कुएं मे जाती हैं। इनसे पानी खराब होता है, बीमारी फैलने का डर है, इन्हें इकट्ठा करके जला दूंगा।

बीमारी का नाम सुनते ही मेरे तो तन-बदन में आग लग गई। देखो भला इसका दीदा, बीमारी-बीमारी चिल्लाता है, जैसे बीमारी की इसे बड़ी साध लग गई हो। ऐसी बात भला कोई होशियार आदमी जबान पर लायेगा ? तुरन्त मैंने काली माई और डोह बाबा की विनती

की और उससे कहा कि तुम्हारे मन में आये सो करो, पर यह बीमारी-बीमारी मत चिल्लाओ।

मरछिया की बात सुन कर सब अवाक् रह गईं। भला वह इस तरह से बीमारी-बीमारी चिल्लाता है, जैसे मज़ाक समझ लिया हो। उन सब का मन एक अव्यक्त भय की भावना से भर गया। धनियाँ ने आँचल पसार कर गम्भीर मुद्रा में विनती की :

हे काली माई, तुम बड़ी शक्तिवान हो। सब की रक्षा-पालन करना, पशु, प्राणी, डीह; डाँगर सब को भला चंगा रखना।

जितिया के मुंह पर भी भय की एक भावना उभर आई। भला कोई बीमारी के लिए भी मज़ाक करता है। बोली :

बताओ, अब वह कहता है कि दाँतुन की फाँक से कुएं का पानी गन्दा हो जाता है और उससे बीमारी फैलती है। यह भी कोई बात है? अभी क्या ज़्यादा दिन हुए, तुम लोगों को तो मालूम ही है; चारों ओर देश-देहात में हैज़ा फैला हुआ था। भवानी मैया का प्रकोप था, कोई चूक हो गई थी। इस गाँव में भी भवानी मैया की फ़ौज धुसने जा रही थी, पर काली मैया ने हुकुम नहीं दिया। तुम लोग तो जानती हो कि बिना काली माई और डीह देवता के हुकुम के कोई आपत्ति-विपत्ति गाँव में नही आ सकती। सो काली माई ने हुकुम नहीं दिया था, कहा कि इस गाँव के लोग मेरे सेवक हैं। चैत और क्वार में खस्सी चढ़ाते हैं, धार देते हैं और माता काली का रथ निकाल कर सालाना पूजा करते हैं। मैं इस गाँव की रक्षा-पालन करतो हूं, इस सिवाने में घुसने का हुक्म मैं नहीं दूंगी। तुम लोग तो सब जानती ही हो, अभी चैत में जब पूजा हो रही थी, नन्हकू भगत के सिर काली माई आई। खुद अपने मुंह से उन्होंने सब कुछ कह दिया। बोलीं कि सेवको निश्चिन्त रहो। जब तक हमें पूजा मिलती रहेगी, इस गाँव का कोई अहित नहीं होगा। धन्य है महारानी को।

उसका सर आप-ही-आप भावना से झुक गया। दोनों हाथ जोड़

कर उसने सर ज़मीन पर टेक दिया।

कुछ देर तक किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकली। केवल हंसिये से निकला मर्मर स्वर गूजता रहा। फिर धनियाँ बोल उठी :

डीह बाबा भी कम प्रतापी नहीं हैं। यह क्या किसी से छिपा है ? हंडार 'भेड़िया' का उत्पात फैला था। चारों ओर हंडहरों से हाहाकार मचा हुआ था। इस गाँव पर भी उसकी नज़र गई। लेकिन बिना डीह बाबा के हुकुम के, आये तो कैसे आये। डीह बाबा ने हुकुम नहीं दिया। सबेरे लोगों ने देखा कि डीह को अपने पंजे से हंडार रात को खुरचे हुए था। तब लोगों ने समझा कि डीह बाबा का हुक्म लेने आया रहा होगा। पर यहाँ के डीह बहुत बड़े धर्मिष्ठी हैं। वे क्यों अपने सेवकों को आफ़त में डालेंगे ?

उसका मन डीह के प्रति भक्ति की भावना से जैसे भर गया। कुछ रुक कर उसने कहा :

इसी से चाहे कुछ भी हो जाय, साल में डीह का पूजन करना नहीं भूलती। साल में एक माला 'सूअर का छौना' ज़रूर चढ़ाती हूँ।

वातावरण इतना आतंकमय हो उठा कि उसके बाद जैसे उन्हें दीन-दुनियाँ का होश नहीं रहा। एक आदत से वह खेत काटती रहीं। बहुत देर तक कोई किसी से कुछ बोल नहीं सकी। किन्तु जैसे भय धीरे-धीरे दूर हो गया। धनियाँ ने ही फिर करमू की बात शुरू की :

कुएँ की जगत के पास जो गड्ढा है न, उसमें पानी जमा हो जाता है। सूअर लोटते हैं, जिससे उनमें ताज़गी आती है; उनका दिल खुश होता है। एक दिन भगेसू के काका सूअर चरा कर आये, तो सूअर उस गड्ढे में लोटने लगे। सूअरों को तो कुछ नहीं बोला, लेकिन भगेसू के काका के पास जाकर कहने लगा कि भइय्या, सूअर कुआँ के पास लेटती हैं, पानी खराब होगा। कुएँ में छींटा जाता है, हम लोगों को यह गड्ढा पाट देना चाहिए। उसकी इस बचकाना बात पर भगेसू के काका हँस पड़े। तुम लोग तो जानती हो न कि वे कितने हँसोड़ हैं। करमू

से कहा कि तब इस पानी का क्या अचार पड़ेगा ? या इत्र बना कर बोतलों में बन्द कर दिया जायेगा, ताकि पाहुने-रिश्तेदार आयें तो उनको सूंघने के लिए दिया जाये। इस पर उसने कहा कि नहीं भइय्या, कुएँ का पानी खराब होने से तरह-तरह की बीमारियाँ फैलती हैं ? फिर लगा बीमारियों के नाम गिनाने : हैज़ा, प्लेग, माता और न जाने क्या-क्या ? मुझे तो सुन कर बहुत क्रोध आया और जी में आया कि कहूँ कि सारे गाँव को श्राप देते हो ? अभी तक सात पुश्त से लोग इसी कुएँ का पानी पीते आये हैं, इसी तरह लोग जगत पर नहाते रहे हैं, इसी तरह सूअर गड्ढों में लोटते-पीटते रहे हैं, कोई बीमारी पानी पीने से नहीं होती। वह तो अपने कर्मों का फल है और हैजा व चेचक भी कोई बीमारी है ? वह तो माता-माई का जब कोप होता है तब उनकी फौज फैलाती है, भवानी मय्या की सवारी चलती है तब हैज़ा फैल जाता है और जो उस सवारी के बीच में पड़ा नहीं कि फिर बचने की कोई उम्मेद नहीं और यह चेचक तो शीतला माई है। पानी-वानी में क्या रक्खा है ? माई का ऐसा इक़बाल है कि जिसे चाहें मारें, जिसे चाहें जिआयें, उनकी मरजी में कौन बाधा दे सकता है ? किन्तु मैं चुप लगा गई कि कौन उसके मुंह लगे।

जितिया ने अपने दोनों हाथों से नक़ल करते हुए कहा :

एक दिन वह झम्मन के बाबू से कह रहा था कि हम लोगों को सोच-समझ कर चलना चाहिए। बात यह हुई कि तुम लोग तो जानती हो, झम्मन के बाबू बड़े नेम-धरम से रहते हैं। बिना नहाए मुंह में दाना तक नहीं डालते। दोपहर बीत जाय, तीन पहर बीत जाय, मैं कहती-कहती हार जाती हूँ, पर वे मानते नहीं। बिना नहाए मुंह में दाना नहीं डाल सकते। सो जो आदमी इतना धरम-करम से रहता हो, वह भला दूसरों को कुमार्ग पर जाते देखेगा तो टोकेगा ही। उन्होंने किसी बात पर कहा कि जो किसी का घूरा, कूड़ा-करकट सर पर लाद कर खाद फेंकेगा उसका हुक्का-पानी बन्द कर देना चाहिए। यह काम

औरतों का है, मर्दों का नहीं। खाद फेंकना उन्हें छोड़ना पड़ेगा। इस पर वह कहने लगा कि इस काम में बुद्धिमानी नहीं है। हमें बड़ी जातियों की इस बात् की नक़ल नहीं करनी चाहिए। वे खाद खुद हाथ से नहीं फेंकते तो न फेंकें, हम लोगों को फेंकना चाहिए, नहीं तो हमीं लोगों की बनी मज़दूरी मारी जायेगी और न जाने क्या-क्या कहने लगा, कि हम लोगों को हर तरह का काम करना चाहिए, कूढ़ा सर पर उठा कर फेंकना बुरा नहीं है। कोई भी मेहनत मज़दूरी का काम छोटा नहीं है, काम तो सभी बड़े हैं।

, झम्मन के बाप से यह नहीं सहा गया। वे भला किसकी सहते हैं ? कोई एक कहे, तो वह दो सुनाने के लिए तैयार बैठे रहते हैं। तुरन्त तड़ाक से जवाब दिया कि रहने दो तुम्हारा यह उपदेश, हम लोग नहीं सुनना चाहते। तिवारी जी से लड़ाई की, बैल की चोरी की, जेल काटी, कुल में दाग़ लगाया और अब सन्त महात्मा बन कर दूसरों को धर्मोपदेश देते हो। फिर भी वह बातें बनाता ही रहा। तुम लोग तो जानती हो, अब कोई उससे कुछ कहे, अपनी ही बात वह बड़ी करना चाहता है। सो वह चुप नहीं हुआ, कहता ही गया कि हम लोगों को किसी काम को छोटा नहीं समझना चाहिए। कामों को छोड़ कर हम लोग बड़े नहीं होंगे। बड़े हम लोग तब होंगे, जब अपनी सब गन्दी आदतों को छोड़ देंगे।

धनियाँ ! बस, उसकी सब बातें निराली होती हैं। एक दिन मेरे भय्या नैहर से आ गये। तुम जानों पाहुन-रिश्तेदार घर आयेंगे तो अपनी ताक़त के मुताबिक खातिर-तवाज़ह तो होती ही है। ऐसे मौक़े पर पास में पैसा-कौड़ी न रहे तो भइय्या-बहन से माँग कर भी खरच किया जाता है। आखिर आने वाला कौन रोज़ आता है और तुम जानों जगन के बापू सा खिलाने-पिलाने वाला कोई नहीं जन्मा। उनका कलेजा बहुत बड़ा है। सो बाज़ार से जाकर एक अद्धा देसी दारू ले आये। मुर्गा काट कर बनाया, भय्या को खिलाया और खुद भी

खाया। दूसरे दिन आकर वह कहने लगा कि हम लोगों को शराब-ताड़ी नहीं पीना चाहिए। कहता रहा कि एक तो हम लोगों के पास वैसे ही रुपये-पैसे की कमी है, जगह-ज़मीन नहीं है, ऊपर से शराब-ताड़ी पीकर हम लोग और भी अपनी बुरी हालत कर लेते हैं। भला बताओ, भगवान् ने दिया ही नहीं, बस कभी तीज-त्यौहार पर, नातेदार-रिश्तेदारों के आने पर खा-पी लेते हैं, अब यह भी बन्द कर दो तो फिर कोई क्या करे? कौन इतना जुड़ता अँटता है कि कोई रोज़-रोज़ खाता-पीता है। छठे-छमासे खा-पी लें, तो उसे भी अब बन्द कर दो। भय्या खाने-पीने वाला है, यहाँ हम लोगों के पास क्या रखा है? पर मेरे नैहर वाले तो ऐसे नहीं हैं, वे तो पूरे एक हल की खेती करते हैं। किसी की बनी मज़दूरी नहीं करते, सो भय्या खा-पी लेता है। भगवान् ने दिया है तो खाये-पीयेगा क्यों नहीं। भय्या ने तड़ाक से जवाब दिया :

'तो तुम भी सन्त-महात्मा बन रहे हो? आज ताड़ी-शराब की कह रहे हो। कल कह दोगे कि रोटी-भात भी मत खाओ, केवल हवा खा-पीकर रहो। अरे, खाना-पीना भी कोई छोड़ने की बात है। अभी कहीं सुना था सरकार भी यह दारू पीना रोक देगी। यह तो नहीं करेगी कि कांगरेस का राज हुआ है, तो खाने-पीने की छूट करदे। आना-दो-आना बोतल करदे कि लो भाई, खाओ-पीओ। पर सरकार-तो सरकार, अब अपने आदमी भी अपनी टाँग पकड़ कर खींचेंगे।

में भी दरवाज़े पर खड़ी सुन रही थी। मुझसे नहीं सहा गया। साल-भर पर तो भय्या हमारे यहाँ आया था, दारू-शराब पिलाते हैं तो अपनी कमाई से किसी दूसरे की से नहीं। कर्ज़ा लेते हैं, तो हम भरेंगे, नहीं भरेंगे तो उसका फल हम भोगेंगे। किसी दूसरे को क्या पड़ी है कि किसी को खाते-पीते देख कर जले। मैंने तो ठीक ही कह दिया, कि जब तुम्हारे घर से लाकर कभी किसी को खिलायें तो मत देना। हम अपना खिलाते-पिलाते हैं। हमारे भय्या का खाया-पीया देख कर तुम्हें जलन क्यों होती है, और भी तो बहुत से लोग हैं, सभी खाते-पीते

हैं, उनको जाकर रोको तो जानें। पर तुम जानो वह तो एक ही ज़िद्दी हो ग्या है। अपने आगे किसी की सुनता ही नहीं, अपनी ही हांके चला जाता है और बकता जाता है। चुप रहना तो वह जानता ही नहीं। मैं भी किसी से पीछे हटने वाली थोड़े ही हूँ। कह दिया, खिलायेंगे-पिलायेंगे, जिस दिन तुम्हारे सामने हाथ पसारने जाँय तब मत देना। बस यही न! तब उसकी बोलती बन्द हुई।

मरछिया : उसके तो सभी काम एक-से-एक अजूबा होते हैं। मुझे लगता है कि जेल में जाकर कुछ सनक गया है। एक दिन देखा कि अरहर का खरहरा लेकर सबेरे-पबेरे गली बुहार रहा था। मैं तो देख कर ठक्क रह गई। समझ में ही पहले नहीं आया कि होश में है या पागल तो नहीं हो गया। बचवा भी मेरे साथ बाहर निकल आया। गली में झाड़ू लगाते देख कर हँसने लगा। बोला : करमू चाचा, गली में झाड़ू क्यों लगाते हो? वह बोला, बेटा हम लोगों को सफ़ाई से रहना चाहिए। घर-द्वार साफ़ रखना चाहिए, इससे तन्दुरुस्ती ठीक रहती है। मुझसे नहीं रहा गया। पूछ बैठी, तो घर-द्वार न साफ़ कोई रखेगा कि गली-सिवाना भी कोई साफ़ रखेगा? आखिर किसको इतना फालतू समय है, किसको इतना जांगर है कि गली-कूंचे में झाड़ू लगाता फिरे। अपना घर-द्वार तो साफ़ हो ही नहीं पाता, अब कोई गली भी बटोरे, सड़क भी बटोरे, यह कैसे हो सकता है? पर ठीक कहा तुमने, वह तो एक नम्बर का ज़िद्दी है। अपनी बात को कभी हेटी नहीं होने देता। लगा लेक्चर झाड़ने। मुझसे सुना नहीं गया, खेत पर जाना था, चली गई। आखिर कब तक कोई उसकी फालतू बातें सुनता। पर बचवा तो बड़ा खिलाड़ी है न, झट से उसने पूछा : तो करमू काका, यह गली भी तुम्हारा घर है कि झाड़-बटोर रहे हो? तुम तो ऐसी सफ़ाई कर रहे हो जैसे कोई बारात यहाँ टिकेगी, या कोई मेला लगेगा। मालूम होता है कि तुम यहाँ पर विजय-दशमी का मेला लगवाओगे, क्यूं न, करमू काका? पर वह तो उसे भी कहने लगा कि तुम रोज़ नहीं नहाते।

रोज़ नहाना चाहिए। भला बताओ, अब जाड़े में छोटे बच्चों को कोई रोज़ नहवाये और शीत लग जाये तो कौन दवा-दारू करेगा ? नहाने से ही कोई पेट भरेगा कि सब काम-धन्धे छोड़ कर आदमी बस नहाता ही रहे।

: १८ :

रोज़ की तरह डोमन भगत की मढ़ई पर चमारों की भीड़ एकत्रित हो चुकी थी। बीच में डोमन भगत बैठे हुए हुक्का पी रहे थे। उनको घेर कर रोपन, मँहगू, गोपी, जंगजीत, कैलाश आदि चमार बैठे हुए थे। बात-चीत इधर-उधर से होती हुई अपनी तक़लीफ़-आराम पर आ पहुँची। जंगजीत ने बात चलाई :

काका, मुदा राज अपना हो गया, पर हम लोगों को तो कोई लाभ-फ़ायदा हुआ नहीं। पहले सुराज का बड़ा नाम सुना था। अभी वह दिन मुझको कल-सा ही लगता है, जब बाज़ार के पास मैदान में बड़ा भारी हज्जूम इकट्ठा हुआ था। तब गांधी बाबा का जमाना था, होगी कोई बीस बरस पहले की बात। बहुत लोग इकट्ठे हुए थे, चारों तरफ़ काँगरेस के नाम का बोलबाला था, हमने भी झंडा उठा कर घुमाया था और दो आने की एक तकली भी खरीद लाये थे, उसमें काता भी था। उस सभा में जवाहरलाल आये थे, उनका बड़ा नाम सुना था। मुदा अब तो वही राजा हो गये हैं न, तब अँगरेज़ राज करते थे। हाँ, तो उस सभा मे जवाहरलाल आये थे और उन्होंने वह भाषण दिया, वह भाषण दिया, कि अब तुम से क्या कहे, वैसी बात तो मैंने किसी के मुंह से सुनी ही नहीं थी। वह तो मुझे आज भी लगता है, जैसे अभी की बात हो। उन्होंने कहा था कि हमारा देश कितना ग़रीब है, खाने के लिए नहीं, पहिनने के लिए नहीं, पढ़ने-लिखने के लिए कोई उपाय नहीं, किसी के पास एक पैसा नहीं। सारा धन अँग्रेज़ लोग ढोकर अपने देश को ले जाते हैं। हम लोग गुलाम हैं, हम लोगों को एका करके इस ग़रीबी से निस्तारा पा लेना चाहिए। गांधी बाबा इसी काम में

जुटे हुए हैं, हम लोगों को उनकी बात माननी चाहिए और कांग्रेस ही ऐसी संस्था है जो सब के दुख को दूर कर सकती है, ग़रीबी को अपने देश से मिटा सकती है।

रोपन ने बीच में ही बात काट कर कहा :

और बातें तो मुझे याद नहीं हैं, बाकी उनकी सूरत-शक्ल खूब याद है। क्या सफ़ेद-सफ़ेद कपड़े थे! बगुला के पंख की तरह और देखने में राजा-बाबू की तरह लगते थे। सुनते हैं उनके बाप की बराबर धनी-धोरी कोई भी नहीं था। बिलायत में भेज कर पढ़ाया था, और तो क्या, मैमें उनके यहाँ नौकरी करती थीं। उनका बिछौना बिछाती थीं, गाड़ी में बिठा कर खेलाती थीं, घुमाती फिराती थीं। आखिर रुपये की कोई कमी तो थी नहीं उनके पास। रोज़ सेर भर घी पीयें, कौन उनको रोकने वाला था गास। सुना था कि उनके कपड़े हमारे देश के धोबी धो ही नहीं सकते थे। बिलायत जाते थे उनके कपड़े धुलने के लिए। ऐसे रईस थे वे।

महँगू का लड़का भी वहीं खड़ा ये सब बातें सुन रहा था। दूध-घी का नाम सुन कर उसके मुंह में पानी भर आया। बोला :

रोपन काका, तब तो दोनों जून वे दूध पीते रहे होंगे, मट्ठा तो घड़ों उनके घर में होता होगा और गुड़ की तो कोई कमी ही नहीं रही होगी। मट्ठे में नमक नहीं, गुड़ डाल कर पीते होंगे? मुझे गुड़ डाला हुआ मट्ठा बड़ा अच्छा लगता है। मिले तो एक लोटा तो अभी खड़े-खड़े पी सकता हूँ।

रोपन ने उसे धमका कर कहा :

हर बात में यह महँगू का बेटा बोल उठता है। अरे, बड़े-बड़ों की बात में नहीं बोलना चाहिए। सुनना चाहिए कि क्या कहते हैं। मुदा बात तो पूरी सुनले। सुन तो रहे हो कि उनके घर में खेलाने के लिए अँग्रेज़ मैमें थीं, तब गुड़ घी की क्या कमी रही होगी! वह लोग तो वह खाते-पीते थे कि जिसको देखने की बात तो दूर, हम लोगों ने नाम

भी नहीं सुना होगा और अब तो वे राजा हो गये हैं। राजा की बात क्या पूछनी।

महँगू : पर एक बात है, मैं तो सच्ची-सच्ची बात कहूँगा। सब कुछ हुआ। अँग्रेज़ चले गए, सुराज भी हो गया, अब अपने आदमी राज कर रहे हैं, पर हम लोगों को क्या लाभ हुआ? मै तो कहता हूँ कि ऐसी ग़रीबी कहीं देखी-सुनी ही नही गई थी। अँग्रेज़ का राज था, तब खाना-कपड़ा तो दे देता था, पर कांगरेस का राज हुआ तब खाना-कपडा भी मयस्सर नहीं। तुम तो बीस बरस की बात बता रहे हो। मैं तो साल भर की बात कहता हूँ कि जब वोट का ज़माना था तब लोग कैसी-कैसी बातें कर रहे थे। कांगरेस को वोट दो, कांगरेस का राज पाँच बरस फिर होगा तो जो तकलीफ़ हैं वे दूर हो जायेंगी। पाँच बरस पहिले राज किया था, लेकिन उससे सन्तोष नहीं हुआ और अब फिर वही राजा हो गये। कैसी-कैसी बातें कह रहे थे। बड़ी-बड़ी जातियों से कहते थे कि अगर कांगरेस का राज नहीं हुआ तो तुम लोगों को भलाई नहीं होगी। जाने कम्युनिस्ट क्या होता है। कहते थे कि वही आ जायगा और फिर वह काम करायेगा कि जो नाम भी नहीं लिया जायेगा। धरम-करम सब उठा देगा, सब का सामान छीन कर सब को बराबर बाँट देगा। तुमसे ज़बर्दस्ती चमारों, दुसाधों के घर में बेटी-रोटी करायेगा। धरम-करम तो उसके सामने कुछ है ही नहीं। मन्दिरों को तोड़ कर घुड़साल बना देगा, चाहे जहाँ पर घूरा रखायेगा और मुसलमानों से कहते थे कि अगर कांगरेस को वोट न दोगे तो हिन्दू लोग तुमको मार डालेंगे। हम हिन्दू और मुसलमान सब को एक समझते हैं और वह जमालपुर का कोई मियाँ जो है, क्या नाम था उसका, रशीद, हाँ रशीद ही तो नाम था, जिसे वे लोग कम्युनिस्ट कहते हैं। उसको पकड़ कर कांगरेस वालों ने कैसा मारा-पीटा और कहने लगे कि वह जो मियाँ लोगों का राज, पाकिस्तान बना है न, उसका यह जासूस है। रुपया इसको बाहर से आता है। फिर बेचारे को जेल भिजवा कर

ही तो दम लिया।

और तो और यह जो अपने गाँव का सूरज है न, उसको ही देखो। कितना तंग किया बेचारे को। उसका भाई कोई कलकत्ते में है। सुनते हैं बहुत बड़ा कम्युनिस्ट है। सरकार ने लाठी से उसको जेल में पिटवाया और-और भी बहुत-सी तकलीफ़ें दीं। तब उन लोगों ने एका करके उपवास किया, खाना-पीना छोड़ दिया, पर उसकी बात जाने दो। उसके भाई को लेकर सूरज को यहाँ कितना तंग किया गया। तहसील में वह सूरज नौकरी करता था, बेचारे को न जाने क्या बहाना बना कर निकाल दिया। उसकी नौकरी अलग गई, इल्ज़ाम लगा कर थाने की हवालात में बन्द कर दिया। मार-पीटा और चालान कर दिया कि वह चुनाव में लोगों को भड़काये नहीं। आख़िर वह कहता क्या था, यही न कि कांगरेस ने पाँच बरस राज किया, पर न तो उसने हमारे लिए खाने के लिए अन्न दिया, न पहिनने के लिए कपड़ा दिया। कुछ भी तो सस्ता नहीं मिलता कि आदमी गुज़र-बसर कर सके। इसमें झूंठ भी क्या है? तुम्ही बताओ?

महँगू बोलते-बोलते आवेश में आ गया था। उसे लगा कि वह यह सब कैसे बोल गया है। पढ़ा-लिखा नहीं, कही देश-विदेश घूमा-फिरा नही, पर जब वह अपने दुखों, तकलीफ़ों के बारे में बोलने लगा तो जैसे खुद-बखुद बात उसके मुंह से निकलती जा रही है। उसने सोचा कि करमू का जो उसका इधर साथ हो गया है, शायद यही उसका कारण हो। कई बार करमू के यहाँ रशीद और सूरज से उसकी मुलाक़ात भी हुई। हैं तो दोनों बड़ी जाति के, पर गुमान उनको छू तक नही गया। करमू के यहाँ एक ही चारपाई पर बैठे हुए थे और मुझे देखा तो सूरज ने हाथ पकड़कर अपने पास बैठा लिया। उस समय जाने कैसा-कैसा लगता था और उनकी बात ऐसी थी जैसे अपनी ही बात हो; अपने दिल की।

कुछ देर तक वह चुप रहा, फिर उसे लगा जैसे उसने अपनी बात

पूरी नहीं की है। आगे कहा :

हम तो कहते हैं कि करमू जो कहता है, वह सोलहों आने ठीक कहता है। क्या झूठ बोलता है? वह सब सच कहता है। तुम्हीं देखो, जब यह वोट का ज़माना रहा न, गाँव जवार के कांगरेस वालों की बात तो जाने दो, शहर से भी बड़े बड़े लोग आते थे। सुनते हैं उनमें से कोई मन्त्री भी था, जिन्होंने पाँच बरस राज-काज भूजा था, वह भी आकर हम लोगों की सिफ़ारिश करते थे। इसी जगह डोमन भगत की मेंढ़ई पर बारहों गाँव के चमर, भर, दुसाध, मुसहर, पासी, घरकार कौन नहीं इकट्ठा हुआ था। उतना बड़ा हुज्जूम अब आगे काहे को कभी इकट्ठा होगा और कैसी बातें उन्होंने कहीं। कहा कि हम लोग तो महात्मा गांधी के उसूल के मानने वाले हैं: बापू हम तुम्हीं लोगों के लिए जीये। दिल्ली में जाते थे तो तुम्हीं लोगों के यहाँ ठहरते थे, तुम लोगों को वे अछूत नहीं, हरिजन कहते थे—और तुम लोगों को बहुत-बहुत चाहते थे। बापू ने कहा था कि सब को कांग्रेस को ही वोट देनी चाहिए, जिससे कांग्रेस का ही राज हो और कहते थे कि जब तक कांग्रेस का राज नहीं होगा, दुख, दलिद्दर नहीं मिटेगा। अभी पाँच बरस में कांग्रेस ने अपना पाया मजबूत किया है, अब आगे पाँच बरस में देश में सोना बरसा देगी। कहते थे कि देखो, हमने तुम लोगों के लिए स्कूल खोले हैं, तुम्हारे लड़के-बाले उसमें पढ़कर सरकारी नौकरियाँ करेंगे और तो और, हर जगह तुम्हारा आदमी मन्त्री बनाया गया है। वह जो जवाहरलाल जी हैं, वह तो इसी फेर में रहते हैं कि किस तरह तुम लोगों को ऊपर उठाया जाये।

पर करमू जो कहता है, वह ठीक ही कहता है कि कांगरेस राज में क्या सुविधा हम लोगों को मिली है? न हमारे पास जगह, न ज़मीन, न खाने को, न पहिनने को, न अपने लड़कों को आगे बढ़ाने का कोई उपाय।

डोमन भगत ने हुक्के को गुड़गुड़ा कर दूसरे के हाथ में बढ़ा दिया।

अभी तक वह चुप बैठ थे। जैसे वह सोच समझ रहे हों कि महँगू जो अभी तक ज़बान चलाये जा रहा है, उसमें कुछ काम की बात है कि केवल खाली बकवास ही है। वह बोलने को हुए तभी सब चुप हो गये। डोमन भगत बारह गाँवों के चौधरी थे। बूढ़े थे और अन्य चमारों से उनकी आर्थिक हालत भी अच्छी थी। अपने पास का पाँच-छः बीघा खेत भी उनके पास था। सब लोग उनका दबाव भी मानते थे। इसलिए जब वे कुछ कहते तो सब लोग चुप हो जाते और ग़ौर से उनकी बातें सुनते। उन्होंने कहना शुरू किया :

करमू अब काफ़ी सयाना होता जा रहा हैं। पहिले तो हमने सोचा था कि जेल जाने से उसका दिमाग़ फिर गया है और इधर-उधर की बहकी-बहकी बातें करता है। पर अब सफ़ाई के लिए, पढ़ने-लिखने के लिए और सब ग़रीबों के एका के लिए जो बातें वह कहता है, वह तो अब हमको भी जँचती जा रही हैं। अब ज़माना वह आ गया है कि अगर हम लोग एक जुट नहीं हो गये, तो कहीं के न रहेंगे। पहिले भी हम लोगों के पास क्या था ? पर कुछ नहीं, तो भी सस्ता था। तन-बदन तो ढक जाता था, पेट की भी इतनी कटौती नहीं थी। हम लोगों को जाने दो, बड़े-बड़ुओं में भी कोई खुश नहीं है। कल मुंशी रामसरन और रामलखन तिवारी, सिवाने में घूम रहे थे। मैंने देखा तो उनके पास चला गया। साहब सलामत के बाद इधर-उधर की बातें उठ गई। करमू से तो वे लोग बहुत नाराज़ हैं, पर वह बात जाने दो। अपने बारे में वे लोग सोचते थे कि इस राज में हम लोगों को कुछ राहत मिलेगी, पर खाली यह राज तो हाथी का दाँत हो रहा है। ऊपर से कहने को सब अपने आदमी हैं, पर अपने ही आदमी तो अपनों का गला काटते हैं। तुम लोग तो जानते ही हो, मुंशी जी शहर बनारस आते-जाते रहते हैं। वकील अमला से उनका साबका पड़ता ही रहता है। वह कह रहे थे कि पहिले जिस काम को रुपये-पैसे में हँसते-हँसते करा लेते थे, अब एक के पाँच देने पर भी लेने वालों का मुंह सीधा नहीं

होता। जहाँ पहिले पेशकार को एक रुपया देना पड़ता था, अब पाँच रुपया दो, तो भी ऐसा मुंह बनाता है, जैसे उसकी नज़रों में पाँच रुपये कुछ हैं ही नहीं। छोटी कचहरी, बड़ी कचहरी सब जगह एक-के-दो देने पड़ते हैं। एक बात वह स्वयं भी कह रहे थे कि पहिले लोग खाते थे, तो काम भी करते थे, पर अब तो खाते भी हैं और काम भी पूरा नहीं करते। दोनों फ़रीकों से खाते हैं और दोनों को धता बता देते हैं।

तुम लोग क्या नहीं जानते कि जो मामला थानेदार के यहां पहिले दस-पाँच रुपये में तय हो जाता था, अब सौ से नीचे कोई बात ही नहीं करता। अभी कल की ही तो बात है, जोगीपुर में एक कुम्हार की औरत कूएँ में कूद कर मर गई, साथ में उसके दो बच्चे भी थे। उसने अपनी साड़ी से कस कर अपने अगल-बगल में दोनों बच्चों को बाँध लिया था। एक दिन भूखों रही, दो दिन भूखों रही, और साथ में बच्चें भी भूखे रहते थे। भूख से बच्चे रोते-चिल्लाते थे। बेचारी से बच्चों का दुख देखा नहीं गया, पेट की आग बढ़ी और बच्चों का कष्ट देखा तो कूएँ में कूद पड़ी। उधर तो वह कूएँ में कूद मरी और दूसरे दिन थानेदार गाँव में आ पहुँचा। उसके मरद को पकड़ मँगवाया। बोला कि तुम्हारी वजह से यह तीन-तीन जान गई हैं। तुमने उनको कूएँ में ढकेल दिया होगा और बहाने बनाते हो कि वह भूख से व्याकुल होकर डूब मरी। वह बेचारा अलग रो-धो रहा था और थानेदार उसको पकड़ कर थाने ले जा रहा था। गाँव के लोगों से देखा नहीं गया, थानेदार के हाथ-पैर जोड़े; आख़िर सौ रुपया में मामला तय हुआ? अब तुम्हीं बताओ, जिसकी औरत बच्चे भूख के मारे कूएँ में डूब मरे, अगर उसके घर में सौ रुपये देने के लिए होते तो उपवास ही क्यों उसके घर में होता? उसका मरद थानेदार के पैर पर गिर कर गिड़गिड़ाने लगा कि सरकार रुपये कहाँ धरे हैं हमारे पास। शरीर पर कपड़ा तार-तार हो गया है और मेहर और बच्चे दाने-दाने को तरसते मर गये। तो थानेदार ने हाथ के कोड से

तीन-चार कोड़े सड़ाक-सड़ाक लगा दिये और बोले : हरामज़ादे यह खून का मामला है, तुम्हें फाँसी दिलाकर छोड़ेंगे। बेचारा क्या करता ? उसके पास एक गाय थी, गाभिन थी, महीने दो-महीने में ब्याने वाली थी। अगर ब्या जाती और थान के तरे बछवा निकल आता तो दो-सौ से कम का माल नहीं होता। जब वह चार महीने की बाछी थी, तभी उसने खरीदा था। अब पालपोस कर संकट में आकर उसे बेचना पड़ा ? और इस तरह बेचारे की जान बची। अब बताओ, यह अन्धेर नहीं तो क्या है ? किसी की परानी भूखों मर जाय और ऊपर से घूस के लिए रक़म न जुट पाये तो डोमन फाँसी चलो। धिक्कार है ?

डोमन भगत की बातें सुनकर सब लोग सन्नाटे में आ गये। वैसे यह नई बात उन लोगों के लिए नही थी, उन लोगों मे कितने ही ज़मीदार के शिकार हुए थे। खेत में काम न करने पर मारते-मारते उनका कचूमर निकाल दिया गया गया था। थानेदार अगर उधर से गुज़र जाता तो पकड़ कर बेगार में डोली ढुलवाता और जरा भी कोई आना-कानी करता कि सड़ाक-सड़ाक बेंत उसकी पीठ पर बैठ जाते। पर डोमन भगत की बात कहने का ढंग कुछ ऐसा था कि उन लोगों पर इसका बहुत असर पड़ा। गोपी ने कहा :

भगत काका, तो इससे बढ़कर अन्धेर और भला क्या हो सकता है ? हम नान्ह कोमन को तो अब मरन आ गई।

डोमन : नीच नान्ह कौमों की बात नहीं, बड़ी जाति वाले भी यही कह रहे हैं कि अब ज़माना पहिले से भी ख़राब आ गया है। एक दिन मेरी दीपन मास्टर से मुलाक़ात हो गई। बातचीत होने लगी तो उन्होंने बताया कि अब घूस तो चारों ओर चल गयी। कहने लगे कि हमने चेयरमैन को दो-सौ रुपये जुटाकर दिया, तो यह मास्टरी मिली, रुपये पास में थे नहीं, भैंस बेचनी पड़ी। पहिले तो इस पढ़ाई-लिखाई के काम में घूम-घास का नाम भी नहीं था, लेकिन अब बिना घूस दिये इधर भी काम चलने वाला नहीं है। उसके अलावा बता रहे थे कि

पहिले तो एक मालिक था, अब तो जिसने गान्धी टोपी लगा ली वही मालिक हो गया। किस-किस का मुँह जोहें, बड़ी परेशानी है।

बहुत देर तक आपस में उन लोगों की बातें होती रहीं, घूम-फिर कर उनकी बात जगह-जमीन पर आगयी।

मँहगू ने पूछा :

भगत काका, यह ज़मीदारी जो टूटी है, हम लोगों को तो कुछ नहीं मिला, बड़ा शोर सुनते थे कि ज़मीदारी खतम होते ही हम लोगो के पास जगह-ज़मीन हो जायेगी। मुदा हुआ कुछ नही।

डोमन : हम तो इसके बारे में कुछ जानते-वानते नही, मगर करमू को मालूम होगा। हमारे पास वह आया भी था, कहता था भगत काका, रशीद और सूरज तुमसे कुछ बातें करना चाहते हैं। तो अगर अब तुम लोग चाहो तो उन लोगों के मुँह से किसी दिन बातें सुनें। लोग कहते हैं, धरम-करम वे लोग नहीं मानते, पर इससे क्या ? उनकी बात सुनने से हर्ज क्या है और कौन जाने वे लोग अच्छे ही हों, हम लोगों को मालूम नहीं कभी उनकी बात सुनी भी तो नहीं, हो सकता है धरम-करम भी मानते हों, पर अपने को मालूम नहीं उन लोगों से ही हम पूछेंगे।

: १६ :

गाँव वालों ने अभी तक अपनी जिन्दगी में बहुत सी सभायें देखी थी। इनमें जिनकी उम्र कुछ ज्यादा थी, उन्हें सन् तीस और बयालीस के ज़माने अच्छी तरह याद थे। सड़क के इसी किनारे पर सहन ठीक करके कांग्रेस की बड़ी कड़ी सभाये वहां पर हुई थी। उन सभाओं में, आस-पास के गाँव के, देहात के, कांग्रेसी भी बोलते थे, तथा शहर से मोटरों पर चढ़ कर बड़े-बड़े नेता आये थे, उन लोगों ने भी भाषण दिये थे। उन भाषण देने वालों में से अब एक-आध तो मन्त्री भी बन गये हैं और किसी-किसी की पहुँच बड़े-बड़े अफ़सरों तक हो चुकी है। उनमें से कुछ का पावर तो अब इतना बढ़ गया है कि बड़े-बड़े अफ़-

सर तक उनके समने काँपते-थर्राते हैं। बहुत से लोगों को मालूम था कि वह जो लाला कुवेरदास पहले काँग्रेसी थे, जो कि अब के चुनाव में चुने जाकर लखनऊ में राज-काज कर रहे हैं। मन्त्री तो वे नहीं बने हैं और न कोई बड़ी जगह ही पाये हैं, पर ज़िले का कौन हाकिम हुक्काम ऐसा है, जो उनसे दबता न हो। अभी की तो बात है कि उनकी एक रिश्तेदारी में रेलवे की चोरी का सामान पकड़ा गया, गांठ-के-गांठ कपड़े, बोरे के बोरे चीनी और भी बहुत सा सामान। पर थानेदार की मजाल नहीं पड़ी कि किसी को गिरफ्तार कर ले, बल्कि वह खुद डरता काँपता लाला कुवेरदास के सामने हाज़िर हो गया और बोला कि आपके रिश्तेदार के घर में चोरी का सामान बरामद हुआ है। अब भला इससे बढ़कर क्या हो सकता है, कि सामान चोरी का पाया जाये और किसी की हिम्मत न पड़े कि उसे पकड़ ले। अभी एक मुकदमा डिप्टी साहब की अदालत में चल रहा था और डिप्टी साहब को उन्होंने क्या समझाया कि मामला उलट गया। लोग सोचते थे कि जिसकी हार होगी, वह सरासर जीत कर कचहरी से लौटा। लोगों को यह भी मालूम है कि पहिले लाला कुवेरदास की क्या औकात थी ? बाप उनका पटवारी था, कागज़ के बस्ते ढोते-ढोते रीढ़ झुक गयी थी। पर अब जब से लाला जो कांग्रेसी होगये हैं, तब से उनकी दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की होती जाती है। जब से वे चुनकर लखनऊ चले गये, तब से तो लक्ष्मी जैसे उनके दरवाजे पर पाँव तोड़ कर बैठ गई हो। पक्का मकान बनवा लिया, दरवाज़े पर कुँआ खुदवा लिया, कई चीज़ों का परमिट मिल गया, अब शहर बनारस में साबुन का एक कारखाना उन्होंने खोल दिया है। इतनी बढ़ोतरी और तरक्की तो किसी की इतनी जल्दी हुई नहीं और यही लाला जी यह कहते नहीं थकते थे कि हम तो जनता के सेवक हैं, हम तो गान्धी जी के उसूलों को मानते हैं, हमारा तो जो कुछ है, वह ग़रीबों के लिए है और तुम लोगों का यह फर्ज है कि कांग्रेस को वोट

दो। कांग्रेस ने तुमको आज़ादी दिलाई है, अँग्रेज़ों को इस देश से भगा दिया है, तुम कांग्रेस को वोट दो। इस पाँच वर्ष में कांग्रेस ने जो किया है, वह दुनियाँ में किसी ने किसी के लिए नहीं किया होगा। देखो! कांग्रेस ज़मीदारी तोड़ रही है, यह सब गरीबों के लिए ही कर रही है। ज़मीदारों को कांग्रेस फूटी-आंखों भी देखना नहीं चाहती। कांग्रेस ने गाँव-गाँव में पंचायतें क़ायम करदी हैं, अब अपने मामले मुकदमे यहीं फैसला करा लो। अदालती पंचायत सरकार ने तुम्हारे लिए क़ायम की हैं। पहिले जो पावर बड़े-बड़े हाकिमों को थी, वह तुम्हें सरकार ने दिया है, सौ रुपया तक जुर्माना करने का अधिकार सरकार ने तुम्हें दिया है। अब बताओ ऐसा कहीं हुआ है और अगर आगे के पांच वर्षों के लिए तुम लोगों ने कांग्रेस को राज करने के लिए मौक़ा दिया तो फिर न तुम्हें खाने की कमी रहेगी, न पहिनने की। सरकार गाँव-गाँव स्कूल खुलवा देगी, अस्पताल खुलवा देगी, आदमियों का और जानवरों का भी, इसलिए तुम्हें कांग्रेस को ही वोट देना चाहिए।

किन्तु अब लग रहा है कि ज़मीदारी तो टूटी, पर हमारी समझ में ही नहीं आ रहा है कि हमें क्या मिला। जिनके पास काश्तकारी थी, कुछ जगह-ज़मीन थी, उनकी तो खैर एक बात थी कि ज़मीन पास बनी है। किन्तु इससे हुआ क्या? वह लगान सरकार ले या ज़मीदार, किसान को क्या? और जिनके पास ज़मीन थी ही नहीं और ऐसे लोगों की सख्या बहुत ज्यादा है, उनके लिए सरकार ने क्या किया।

आज की इस सभा में काफ़ी लोग आस-पास के गाँवों से इकठ्ठा हुए हैं। इसमें किसान भी थे और खेतिहर मज़दूर भी, खेतिहर मज़दूरों की संख्या ज्यादा थी क्योंकि गांवों-देहातों में रहने वाले ऐसे लोगों की तादाद बहुत ज्यादा है। इस सभा के लिए करमू ने दिन-रात एक कर दिया था। गाँव-गाँव, घर-घर वह घूमा था, आदमी-आदमी से वह मिला था, बस चलकर सुन लो। रशीद इस सभा में बोलेगा और सूरज

भी। आप लोग बातें सुनें, अपनी बातें कहें; समझें और आपको न जँचे तो फिर पूछ सकते हैं।

लोगों के मन में भी जिज्ञासा हुई कि चलकर समझें बूझें तो। बदनामी तो इन लोगों की बहुत सुनी है। लाला कुवेरदास तो कहते थे कि कोई मुल्क रूस है, वहाँ से इन लोगो को रुपया-पैसा मिलता रहता है। उसी के ये लोग नौकर हैं। जैसा जहाँ से हुकुम आता है, वैसा करते हैं। पर यह बात लोगों के दिमाग़ में घंसती नहीं थी। धरती को कैसे उठाकर ये लोग रूस ले जायंगे। कभी तो इनका कोई काम ऐसा नही देखा गया और जो लोग इनकी इतनी शिक़ायत करते हैं, वही कौन दूध के धोये हैं। बात तो बड़ी मीठी-मीठी करते हैं, जब वोट का जमाना था, तब उनकी बातें सुनने से यही मालूम होता था कि क्या अपना सगा भी इतना दर्द रखता होगा गरीबों के लिए। क्या नहीं कहा इन लोगों ने और किसकी कसम नही खाई। गान्धी जी का नाम लेते तो थकते तक नहीं थे, पर अब जब काम निकल गया तो सब कुछ भूल गए। अब अगर किसी चीज़ के लिए कहो-सुनो तो पहले तो वहाँ तक रसाई ही नहीं और अगर किसी तरह पहुँच भी जाओ, तो सुन कर कह देते हैं कि कोई जादू की लकड़ी नही है कि घुमा दिया और सब काम क्षण भर में हो गया। धीरज धरो, पर धीरज धरने की भी एक हद होती है, इन्ही सब बातों को सुनने समझने के लिए इतनी बड़ी तादाद में लोग इकट्ठे हुए थे।

रशीद ने पहले कहना शुरू किया :

भाइयो, और सब बातें तो हम जानते हैं। आप लोग खुद समझ-बूझ सकते हैं कि आप लोगों की हालत कैसी है। मैं खुद आप लोगों से पूछता हूँ कि आपको खाने के लिए अनाज मिलता है क्या, पहिनने के लिए कपड़ा मिलता है क्या ?

बैठे लोगों ने ज़ोर से चिल्लाना शुरू किया :

नहीं, नहीं, हमारे पास खाने को अनाज नहीं, पहिनने को कपड़े

नहीं।

रशीद : इतने बरसों से आप लोग काँग्रेस के राज में रह रहे हैं। पहिले आप लोग अंग्रेज़ों के राज में रह रहे थे, आप लोग अपने अनुभव के आधार पर बतायें कि क्या पहिले में और अब में आप लोगों को कोई अन्तर मालूम होता है ?

नहीं, नहीं, की ध्वनि फिर सभा में गूँज उठी। कुछ लोग कहने लगे कि हम पहिले से और भी भूखे हो गये हैं, पहिले से और भी नंगे हो गये हैं, हमारे हाकिमों की सख्ती और भी बढ़ गई है, पुलिस का जुलम और भी बढ़ गया है, मँहगी और अधिक हो गई है, बाज़ार में एक-के-चार देने पड़ते हैं, लड़कों की पढ़ाई-लिखाई की फ़ीस चौगुनी बढ़ गयी है। और उनके पढ़ने की किताबें जहाँ पहिले दो आने, चार आने में आती थीं, वे अब रुपये दो रुपये में आने लगी हैं।

रशीद: मैं आप लोगों के सामने कोई भाषण देने के लिए नहीं आया हूँ। वही सीधी सच्ची बातें जो आपके सामने हैं, उन्हें ही कह रहा हूँ। मैं चाहता हू कि आज अन्य बातों को हम जाने दें। आज ज़मीदारी जो टूटी है, उसी के बारे में हम समझें-बूझें कि हम किस स्थिति में हैं। इससे हमें कुछ लाभ हुआ है कि जहाँ हम पहिले थे, वहीं रह गये हैं, या हमें लाभ के बजाय नुक़सान ही उठाना पड़ रहा है।

आप लोगों में से किसान कितने हैं जिनके पास कुछ खेत हैं ? और उन खेतों में काम करने वाले कितने हैं, जिनके पास मज़दूरी के सिवा और कोई अवलम्ब नहीं है। मेरा ख्याल है चार आदमी में एक आदमी के पास खेत है और तीन आदमियों के पास कोई जगह-ज़मीन नहीं है। उनमें भी जिनके पास ज़मीन हैं, ऐसे बहुत कम लोग हैं, जिनके पास पूरे एक हल के खेत हों। किसी के पास दो बीघे, किसी के पास चार बीघे, बहुत हुआ किसी के पास दस बीघे ज़मीन है। सब किसानों की हालत प्रायः एक-सी ही है। इसमें आप लोग इतना अनाज पैदा नहीं कर सकते कि आप लोगों के बाल-बच्चे साल भर खायें। उनके कपड़े-लत्ते

का काम चले, उनकी पढ़ाई-लिखाई का काम चले, हारी-बीमारी में काम आये। शादी ब्याह, तीज-त्यौहार में खर्च चले। इसके साथ ही जिनके पास खेत है, उन्हीं पर, जिनके पास खेत नहीं है, जो खेतिहर मज़दूर हैं, उनका भी गुजर-बसर चलता है। नाई, धोबी, तेली, कुम्हार, लुहार, माली, आदि पेशे वाले हैं, उनको भी इसी में से मिलता है। नहीं तो उनके पास और कोई जीने का साधन नहीं है। जो खेतिहर मज़दूर हैं, वे और नाई, धोबी, तेली, कुम्हार, लुहार आदि पेशेवर हैं, उनकी क्या स्थिति है, इसके बारे में हम बाद में विचार करेंगे। पहिले हम यही देख लें कि जिनके बारे में काँग्रेसी और सरकार गला फाड़-फाड़ कर कह रहे हैं कि हमने किसानों के लिए धरती पर स्वर्ग ला दिया है, उन्ही के बारे में पहले विचार कर लिया जाये।

हमारे उत्तर प्रदेश में ज़मीदारों की कुल संख्या करीब बीस लाख रही है और उसमें जो बड़े ज़मीदार हैं उनकी संख्या प्रायः चार सौ। इन ज़मीदारों को कुल मिला कर सरकार चौदह अरब रुपया हर्ज़ाने का दे रही है, यह रुपया कहाँ से आयेगा। सरकार कहीं से रुपया पैदा नहीं करेगी, वह तो किसानों से ही वसूल होगा। चाहे कोई राज़ी खुशी दे, चाहे जैसे। यह पीसना-तो-पीसना ही पड़ेगा। चाहे रोकर, चाहे हँसकर। यही इन्साफ़ हमारी सरकार का है, आप लोग तो भोग ही रहे हैं। सरकार जो आप लोगों को भूमिधर बना रही है, वह किसानों से दस गुना लगान वसूल करके और जो शिक़मी काश्तकार हैं, उनसे पन्द्रह-गुना। जबकि ज़मीदारों से इस तरह की कोई रक़म वसूल नहीं की जायेगी। उनके पास कुल मिला कर सीर और खुदकाश्त की ७१२७३०० एकड़ जमीन है, याने कुल भजरूआ ज़मीन का बीस प्रतिशत। याने हर पाँच बीघे में एक बीघा उनकी खुदकाश्त या सीर है, जिस पर सरकार एक पैसा भी उनसे वसूल नहीं करेगी और उन्हें भूमिधर का हक़ दे देगी। अब आप सोचिए कि जो जितना ही ग़रीब है सरकार उसे उतना ही पीस रही है। ज़मीदारों से कुछ नहीं और ग़रीबों

से दस-गुना और पन्द्रह-गुना। इसका सीधा मतलब है ज़मीदार, जो कि अब बड़ी रकमें हर्जाने में पा रहे हैं और बड़े-बड़े भूमिधर हो रहे हैं, बिना किसी कानी-कौड़ी के खर्च किए और ग़रीब लोगों के पास न दस-गुना और पन्द्रह गुना होगा, न वे भूमिधर बनेंगे। तिस पर तुर्रा यह कि सरकार कहती है कि भूमिधर बनने वालों का आधा लगान माफ़ कर दिया जाता है। मैं कहता हूँ जब दस-गुना लगान आगाऊ वसूल कर लिया, तब तो बीस वर्ष के लिए पूरा लगान वसूल कर लिया कि नहीं और अगर इस दस-गुना लगान पर सूद बैठा दिया जाये तब तो लगान और भी बढ़ जायेगा और सरकार किसानों से भूमिधर बनाने के लिए कोई छोटी-मोटी रकमें वसूल नहीं कर रही है। बल्कि पूरे एक अरब और अस्सी करोड़ रुपया। बड़े-बड़े जमीदारों ने अपने सीर और खुदकाश्त को ? नज़राने की लम्बी-लम्बी रकमें लेकर पहिले ही उठा दिया था। परती, ऊसर, जलखाता था, उसे भी उठा दिया था। वे जमीदार जो सरकार को दो सौ पचास रुपये से कम सालाना लगान देते हैं, उनके पास ७, ८४"००० एकड़ ज़मीन खेती की है, जो कि उनके पास ही रहेगी और हर्जाने की रक़म अलग पायेंगे।

सरकार ने जो यह रवैया अख्त्यार किया है, इससे सभी ज़मीन धीरे-धीरे बड़े-बड़े भूमिधरों और महाजनों के पास चली जायेगी। एक बात और भी है, सरकार यह लगान जो वसूल करायेगी वह पटवारियों और अमीनों से। अभी तक पटवारियों और अमीनों ने जो जुल्म ज्यादती गाँव देहात की जनता पर किए हैं वह बे मिसाल हैं, और अब आगे के लिए भी उनके हाथ में ताक़त दे दी जाती है कि वे मनमानी ढंग से पीस सकें। लगान वसूल न होने पर किसान अपनी ज़मीन से बेदख़ल कर दिये जायेंगे। उनकी गिरफ्तारी तक हो सकेगी, उनकी चल सम्पति और अचल सम्पति बेचकर लगान वसूल किया जायेगा। जिले के कलक्टर को यह अधिकार दिया गया है कि समय पर सरकारी लगान अदा न करने वाले किसानों की ज़मीन दस वर्ष तक के लिए

दूसरों को किराये पर उठा दी जाये और इस तरह बक़ाया लगान पूरा किया जाये। किसानों पर ऐसी सख्ती अंग्रेज़ी राज के ज़माने में भी नहीं हो पाती थी। सख्त-से-सख्त ज़मीदार भी अपनी प्रजा से इस बेरहमी से लगान वसूल नहीं करता था, जितनी कि अब होगी।

इन ज़मीनों की आय की तरक्की के लिए सरकार क्या करेगी? यह बात ही नहीं उठाई गई, केवल एक बात हुई कि जो लगान ज़मीदार लेता था, वह सरकार लेगी और उसे वसूल करने में पूरी सख्ती बरतेगी।

ज़मीदारों को हर्जाने देने की जो बात है, वह समझ में नहीं आती कि किस इन्साफ़ के आधार पर सरकार इन्हें देगी? अभी तक जोर-जबरदस्ती से, सरकार के संरक्षण से, जो ज़मीन छीने-हड़पे बैठे थे, हराम की कमाई इकट्ठी करते थे, ग़रीबों के खून के मोल पर ऐश मौज करते थे, उनको हरज़ाने देने की बात क्यों और कैसे उठाई गयी। साथ ही ये ज़मीदार कौन हैं, वही न, जिन लोगों ने समय-समय पर अपने देश के साथ, अपनी जनता के साथ गद्दारी करके अंग्रेज़ी शासकों के हाथों की कठपुतली बने रहे और अंग्रेज़ों का राज्य क़ायम करने और इस देश में उनका राज्य जमाने में उनकी मदद की। इसी गद्दारी के उपलक्ष में इन्हें ये ज़मीदारियाँ मिली थीं। अब इनसे वापस लेने के लिए उन्हें हर्जाने दिये जा रहे हैं, यह ज़मीदारी का तोड़ना है या ख़रीदना और फिर वह किसके पैसे से? उन्हीं के पैसे से न, जिनके पास न खाने को है, न पहिनने को है, न दवा के लिए एक पैसा है, न पढ़ाई-लिखाई के लिए पैसा है और जो हर तरह से चूसे हुए हैं। यही है न ज़मीदारी तोड़ने का ख़ाका। जिसे गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहे हैं कि हमने ग़रीब किसानों के लिए वह किया है, जिसे इस धरती पर किसी ने किसी के लिए नहीं किया।

यह तो हुई उनकी बात जिनके पास थोड़ी-बहुत ज़मीन थी। अब उनकी बात लें, जिसके पुश्त-दर-पुश्त से एक खूड भी ज़मीन नहीं

रही जो नंगी धरती पर सोते रहे हैं, जो नंगा आकाश ओढ़ते रहे हैं, जिन्होंने वरषा के थपेड़े सहे हैं जाड़े की शीत झेली और गर्मी की लू की मार सही, जिनके पास रहने के लिए घर नहीं हैं, खाने के लिए दाने नहीं हैं, जो खेतिहर मज़दूर हैं।

सरकार के पास इनको देने के लिए क्या है? केवल इतना भर कहने के सिवा कि सरकार तुम्हारी है। मरो, जीयो, पर सरकार के खिलाफ़ ज़बान मत खोलो। इन लाखों-करोड़ों बे घर-बार के लोगों के लिए सरकार ने क्या किया है? क्या ये सदा के लिए इसी तरह भूखे-नंगे छोड़ दिए जायेंगे? क्या ये सदा-सदा के लिए इसी तरह बे-आसरे बे सहारे छोड़ दिये जायेंगे? क्या ये सदा-सदा के लिए इसी तरह बीमार और अशिक्षित छोड़ दिये जायेंगे? सरकार का इनके लिए क्या कोई फ़र्ज़ नहीं है, कोई कर्त्तव्य नहीं है?

जिनके पास पूरी ज़मीन नही है, या जिनके पास थोड़ी बहुत ज़मीन है, या जो बिल्कुल निहंग हैं, बे-घर-बार के, बे जगह-ज़मीन के, बे-पढ़े-लिखे, क्या सरकार उनके लिए किसी काम की व्यवस्था नही करेगी? कोई भी उद्योग धन्धा नहीं देगी आखिर इतने आदमी सदा-सदा के लिए बेकार कब तक रहेंगे? और वह सरकार, जो इतने लोगों को उपेक्षित छोड़ दे, कहाँ तक राज करने की हक़दार है? वह सरकार नहीं, लुटेरों का दल है।

सभा के एक कोने से एक स्वर उठा;

इस सरकार को हम बदल देंगे।

और कंठ-कंठ से एक जूट होकर यह स्वर आकाश में गूंज उठा:

इस सरकार को हम बदल देंगे।

इसकी प्रति ध्वनि उठकर जैसे खुले आकाश से, खली धरती में गूँज उठी। जैसे हवा की लहरियाँ, और सूरज की किरणें इस स्वर के गुंजन को लेकर खुशी-खुशी दिगदिगन्त में फैलाने लगीं।

: २० :

सभा खत्म हो गयी थी, परन्तु उसकी बातें अब भी लोगों के कानों में गूँज रही थीं। अब भी सभा में कहे गये कॉमरेड रशीद का एक-एक शब्द जैसे उपस्थित आदमियों के मन-प्राण पर धक्के मार-मार कर कह रहा हो कि देख ली तुमने असलियत ! कहाँ तुम खड़े हो, और अभी तक किस भुलावे में थे। सभी तबके के लोग, सभी स्थिति के आदमी अपनी-अपनी समझ और बुद्धि के अनुसार इस विषय पर बातें कर रहे थे। सभी जैसे एक स्वप्न से जगे हों, सभी जैसे अभी तक एक भुलावे में पड़े थे और उनका भुलावा, जैसे एकाएक दूर हो गया हो। जैसे कोई छाया को पकड़ने के लिए दौड़ता हो, दौड़ता हो और आखिर कोई उसे बोध करादे कि तुम जो इस जोश-खरोश के साथ, इस आशा-उल्लास के साथ, जिस चीज़ के पीछे दौड़ रहे हो, वह एक भुलावा है एक छाया है, एक अवास्तविक वस्तु है, जिसकी निरर्थकता आज नहीं तो कल तुम्हें मालूम ही होगी।

रामलखन तिवारी और गजराजसिंह तथा अन्य कुछ इसी स्थिति के लोग मुन्शी रामसरन के दालान में उपस्थिति थे। ये सभी आदमी सभा में गये थे। मुन्शी रामसरन तो सरकार के मुलाज़िम होने के कारण पहिले जाना नहीं चाहते थे. किन्तु उन्होंने सोचा कि अगर मैं खुद वहाँ नहीं जाऊँगा तो यह मालूम कैसे हो पायेगा कि किसने क्या ज़हर उगला-जाने के पहिले उन्होंने सोचा था कि सरकार का वे नमक खाते हैं और सरकार के खिलाफ़ कोई ज़हर उगले, लोगों को उलटी-सीधी बातें समझाये और वह चुपचाप घर पर बैठे रहें तो यह कितने अन्याय की बात होगी ? सरकार अपनी है, अपने ही आदमी राज-काज चला रहे हैं, ज़रूर कुछ दिक्कत पड़ी हुई है पर हैं तो भी अपने ही आदमी। सभी आदमी ऊँची जाति वालों के हैं और ये नीच कौम वाले चाहते हैं कि किसी तरह हम वहाँ पहुँच जाँय। ये जो कुछ सरफिरे लोग हैं, वे लोगों को बहका-भड़का रहे हैं, और नीच कौमों को हम लोगो के

ख़िलाफ़ खड़ा करना चाहते हैं। अगर ये नीच लोग आगे बढ़े तो फिर हम लोगों के लिए निस्तार का कोई रास्ता नहीं है। अभी ही क्या इनके दिमाग़ कम आसमान पर हैं? छोटे-बड़े का क़ायदा तो दूर रहा, जब होता है गुस्ताख़ी करने के लिए आमादा रहते हैं। कुछ इनमें जो हाकिम-हुक्काम हो गये हैं। नौकरी की ख़ातिर उनको तो अदब-क़ायदा देना ही पड़ता है। पर अब कुछ लोग चाहते हैं कि जितने ये सब नीच हैं, वे हम लोगों के बराबर आजायें। उनका वस चले तो हम लोगों के सर पर बैठा दें।

उनका मन उन लोगों के प्रति घृणा से भर गया था। वह अच्छी तरह महसूस कर रहे थे कि रशीद, सूरज आदि जो ऐसे लोग हैं, उन्हीं के बढ़ाये और दम-दिलासे से करमू वगैरह का दिमाग़ आसमान पर चढ़ा है। नीच लोगों को तो जरा-सा पुचकारा मिले कि बस वह मस्सासुर की तरह बढ़ावा देने वाले का ही नाश करने पर उतारू हो जाते हैं। उनका मन घृणा से विकृत हो उठा था, उस समय उनके मन की भावना ऐसी थी कि अगर उनका वश चले तो इन सारे लोगों को पीस कर रख दें।

उन्हें याद आया कैसे उनके हाकिम, कानूनगो साहब एक वाक्या सुना रहे थे कि नायब तहसीलदार साहब डिप्टी साहब से मुलाक़ात करने के लिए गये थे। डिप्डी साहब ने उन्हें बुलाया था, वह डिप्टी साहब जाति के चमार थे। नये-नये वे आये थे और अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझते थे। तहसीलदार साहब जाति के ब्राह्मण थे। आखिर वे डिप्पी साहब को सलाम करने तो कैसे? पर उन्होंने अक़ल निकाल ही लो। जब कचहरी गये तो उन्होंने कचहरी में गान्धी जी की तस्वीर की ओर हाथ उठाया जो डिप्पी साहब के पीछे दीवाल पर टंगी थी। और लोगों ने तो समझा कि डिप्पी साहब के लिए ही हाथ उठाया है, पर दरअसल उन्होंने महात्मा जी की तस्वीर को ही हाथ उठाया था और उसी को नमस्कार किया।

यह घटना याद करके मुन्शी जी के मन में उस नायब तहसीलदार के प्रति सम्मान की भावना उठ आई।

अब जो बातें उन्होंने सभा में सुनी थीं, वे उनके दिमाग़ में जैसे जंच तो रही थी। परन्तु खुले-आम स्वीकार करना उन्हें गुनाह सा लग रहा था, आख़िर सरकारी मुलाज़िम जो थे ? कोई ऐरे-गैरे तो थे नहीं कि जो मन में आया, हर किसी के सामने जो कुछ हुआ बक दिया। और जिस बात को दूसरे लोग मान लें, उसे वह भी मान लें, यह तो बुद्धिमानी के लक्षण नही हैं। अभी तक तो गाँव-देहात में उनकी बुद्धि का मुक़ाबिला करने वाला कोई हुआ नही। सब लोग उन्ही से राय लेने आते हैं, काँग्रेस वालों की बात दूसरी है। वे तो अब राज-काज चला रहे हैं।

किन्तु उनके मन में एक प्रश्न रह-रह कर उठ रहा था। उनका मन उन बातों का विश्लेषण कर के देख लेना चाहता था कि वह क्या है, सच या झूँठ। उनके मन में आया तो जो कुछ उन्होंने सुना, क्या वह सत्य नहीं है ? अपने ही को लूँ, क्या पाता हूँ ? यही पैंतालीस रुपया माहवार। जिसमें हर महीने चार रुपये अभी तक क़ानूनगो ले लेता है। एक रुपया कानूनगो का प्यादा और दो रुपया महीना रजिस्ट्रार को देना ही पड़ता है। अगर न दें तो क़ाग़ज़-पत्र का मामला ठहरा, कोई कितना बचकर रहेगा। सारे काम तो सरकार पटवारियों के ऊपर ही थोप देती है। सूखा पड़े, बाढ़ आये, उसका हिसाब बनाओ। नक्शा बनाते-बनाते आँखें बैठ जाती हैं। मर्दुमशुमारी हो, सब से पहिले पटवारी पकड़ लिये जायेंगे। और चाहे कोई भी हुक्म तहसील में आये, लम्बी-लम्बी तनख्वाहें लेकर हाकिम लोग आराम से बैठें रहेंगे और बस हम लोगों को बुलाकर हुक्म फ़रमा देंगे कि देखो पटवारियों, फ़लां तारीख़ के भीतर यह काम पूरा होना ही चाहिए। अब कोई बताए, तनख्वाह वे लोग लेंगे, नामवरी वे लोग लेंगे और मरेंगे पटवारी। न खाने का ठिकाना, न उठने-बैठने और रहने का ठिकाना, दिन भर सरकर

का काम करो और रात को चाहे जहाँ पड़ रहो, और इसमें जरा ढिलाई हो तो जान आफ़त में। थोड़ी-बहुत राहत मिलती है तो बस इसी से कि कानूनगो और रजिस्ट्रार को माहवारी रक़म दो। नायब साहब को घी और दही पहुँचाओ, और देना इस लिए पड़ता है कि जाने कब क्या ग़लती निकल आये और फिर वह एक के दस वसूल करे। जुर्माना अलग कर दे, नौकरी से मुअत्तल करादे, कितना हरामख़ोर है वह। ख़ून जैसे उसके मुँह लगा हुआ है। उसने सोचा : आख़िर इसमें रशीद ने क्या ग़लत कहा था कि कहने के लिए जितना चाहो गला फाड़ कर कह लो कि यह राज ग़रीबों का है, किसानों का है, मजदूरों का है, आम-जनता का है तथा उसी की भलाई करने के लिए है। पर सच बात तो यह है कि ग़रीबों की अभी तक तो कोई भलाई इस राज में नज़र नहीं आई। मैं अपना ही ले लूँ। लोग कहते हैं कि मुझसे बढ़कर फ़ायदा किसी ने नहीं उठाया। सही है कि रुपया काश्तकारों से मैंने लिया, पर क्या वह रुपया सब-का-सब मेरे ही हाथ में रह गया, बड़े-बड़े लोगों ने नहीं लिया। कानूनगो और तहसीलदार को कौन कहे, छिपे तौर पर डिप्टी साहब तक रक़म पहुँच जाती है। मेरे हाथ तो बस हत्या ही लगती है। ठीक है, 'मज़ा मारें काज़ी मियाँ, जिबह हों डकाली,' यही हाल मेरा है। किसानों-काश्तकारों में बदनाम मैं होता हूँ, अज़ाब मेरे सर पर और जेब गर्म होती है हाकिम-हुक्कामों की। उसके सिवा वे हाकिम-हुक्काम भी समझते रहते हैं कि मैं बड़ी-बड़ी रक़में मार रहा हूँ। कितनी बार मैंने नही चाहा कि इस लेने-देने को छोड़ दूँ। कुछ दिन तक हाथ समेट भी लिया, पर ऊपर वाले मानें तब न। आख़िर अपनी तनख्वाह में से मैं कब तक उनको बाँटता रहता। मेरी तो क्या, वह जो जतनसिंह कानूनगो आये थे, बेचारे कितने ईमानदार थे। एक पाई तक अपने हाथ से उन्होंने नहीं छुई। हम लोग कितना कहते-समझाते थे कि हुज़ूर इस पेशे में हाथ सिकोड़ कर रहने से काम नहीं चल सकता। पर वह था एक नम्बर का ईमानदार। अपनी

बात पर अड़ा रहा। नतीजा यह हुआ कि दूसरे कानूनगो जब कि तहसीलदार और डिप्पी साहब को भेंट चढ़ाते रहे और इसी की बदौलत तरक्की करते-करते आज तहसीलदार कौन कह डिप्टी तक बन गये हैं बेचारे जतनसिंह की ऐसी फ़जीहत हुई कि क्या कहें। कलक्टर साहब दौरे पर आये हुए थे। पर उनके लिए न बकरा, न दही, न तरकारी, न किसी चीज़ का इन्तज़ाम। डिप्टी साहब ने हम लोगों के सामने ही बिचारे को ऐसा डाँटा कि उसकी आँखों में आँसू आ गये। फिर मैं ईमानदार बनूँ भी तो किस लिए। फटकारें खाने को?

उसके अलावा थोड़ी बहुत खेतीबारी जो कर लेता हूँ, उसमें भी क्या बरक़त होती है। हमारी तरफ़ खेती तो बस राम आसरे ही होती है। कभी सूखा, कभी पाला: सब मिलाकर देखता हूँ, तो जैसी हालत पहिले थी, उससे गिरी ही है, खाने में, पहिनने में, कपड़े-लत्ते में, सब जगह तंगी ही आई है। कहीं भी तो ऐसा नहीं हुआ कि चलो, अपना राज हुआ, तो किसी तरफ़ से राहत आई।

इन्हीं विचारों में खोये-खोये मुन्शी रामसरन बैठे थे। रह-रह कर हुक्के की एक कश लगा लेते और जैसे फिर विचारों में खो जाते। इसी समय रामलखन तिवारी ने पूछा:

आप की क्या राय है मुन्शी जी। कल जो बातें हम लोगों ने सुनी वह कैसी रहीं?

मुन्शी रामसरन ने कोई उत्तर नहीं दिया? वे जैसे-के-तैसे खोये-खोये से चुप रहे। तिवारी जी ने फिर अपनी बात दुहराई:

हमें तो लगता है कि बातें वे ठीक ही कह रहे थे। हम तो खुद देख रहे हैं कि वही हालत है, जो पहिले थी, बल्कि उससे भी ख़राब हो गई है। ज़मीदारी टूटने के पहिले जो हल्ला हुआ, ज़मीदारों ने घूर-घूर ज़मीन परती, चारागाह, बंजर आदि तक जोत लिया और लम्बे-लम्बे नज़रानों पर लोगों को देना शुरू कर दिया। जो ज़मीनें किसानों, काश्तकारों से निकालीं उनके लिए भी लम्बी-लम्बी रक़म नज़राने की

ली। और अब ज़मीदारी टूटी है, तो उनको तो हरजाना मिला ही हम लोगों को भी तो दस-गुना लगान अपनी-अपनी ज़मीनों का जमा करना पड़ा। मैंने तो थोड़ा-बहुत जमा कर भी दिया, पर बहुत से लोगों से तो यह भी नहीं बन सकता। उनको भूमिधर का भी हक़ नहीं मिला। यह तो सरासर अन्धेर है। ज़मींदार क्या ज़मीन कहीं सरग से उतार कर लाए थे, कि उनके लिए इतना मुआवज़ा दिया जाय। अरे, इतने दिनों तक बिना मेहनत के, बिना कुछ करे-धरे खा-पी लिए यही क्या कम है, कि अब उनको हरजाना भी दिया जाये। हम तो तब समझते हैं कि सरकार किसानों की बड़ी दाता है कि जब वह बिना कुछ लिए-दिए किसानों को ज़मीन दे देती कि जोतो-बोओ और खाओ।

रामलखन तिवारी के मुंह से ऐसी बातें कभी नहीं निकलती थीं। यह बात जैसे बिल्कुल नई हो। गजराज सिंह को बड़ा ताज्जुब हुआ। यद्यपि ज़मीदारी उनके पास भी नहीं थी, वे भी काश्तकार ही थे और ज़मीन इतनी भी नहीं थी कि एक हल के लिए भी पूरा पड़े। पर तिवारी जी और मुंशी रामसरन के साथ सदा-सदा उन्होंने अपनी सरकार के गुण गाये हैं। अगर कहीं उनको ऐतराज़ था, तो यही कि अब कहीं-कहीं पर नीच कौमों को भी सरकारी पद मिल जाते हैं, इससे बड़ी जातियों की बहुत हेठी होती है, पर उसका मतलब यह नहीं कि हम सरकार को कोसें। उन्होंने कहा:

तिवारी जी, आप यह क्या कह रहे हैं? आपने तो खुद कांग्रेस के लिए वोट दिलाने के लिए रात-दिन एक कर दिया था। कुछ चमारों को तो अपने वोट कांग्रेस को न देने के कारण अपने यहाँ उन्हें खेत में कटनी तक नहीं करने दी। अब क्या आप कल उनकी बातें सुन कर बहक गए हैं। यह तो आप जानते ही हैं कि यह सब करमू की करामात है। वह नीच कौम का है और अब वह यह काम कर रहा है कि हम लोगों को नीचा दिखाये। दो अक्षर पढ़ना क्या सीख लिया है कि जैसे देवों का गुरू बृहस्पति बन गया है। रात को चमारों और दुसाधों

वगैरहों को इकट्ठा करके पढ़ाता है। यह रशीद और सूरज भी आते हैं। छोटे-छोटे लड़कों को पढ़ाना तो एक बात भी थी, पर बूढ़ी-बूढ़ी औरतों तक को भी उन लोगों ने बहका रखा है और वही कल जाने क्या कह कर उन लोगों को यहाँ लाया था। अब आपके मुंह से भी यही बात ह म सुनेंगे तो मालूम होता है कि जहान डूब जायेगा।

रामलखन : सच्ची बात तो मुंह से कहनी ही पड़ती है भय्या! उन लोगों ने झूँठ क्या कहा है, वह हम भी भोग रहे हैं, तुम भी भोग रहे हो। देख रहे हो हर साल सूखा, पानी लगा ही रहता है। मँहगी एक-दम बढ़ी हुई है। कपड़े तो ऐसे हो गये हैं, जैसे दुर्बल हो गये हों, खेती के सामानों की भी क़ीमतें चौगुनी हो गई है। हाँ, एक बात जो आप कह रहे हो, वह समझ में आती है कि इस सभा में नीच क़ौमों के आदमी ज्यादा हैं और इन लोगों के साथ उठ-बैठ कर हम लोग अपनी इज्ज़त मिट्टी में नहीं मिला सकते। क्यों मुंशी जी, आपकी क्या राय है?

रामसरन अभी तक खोये-खोये से थे। किन्तु इन लोगों की बातें सुन कर वह जैसे सतर्क हो गये। उनके मन में जैसे एक झटका लगा। वह सरकारी मुलाज़िम हैं, सरकार का नमक खाते हैं। हज़ार तक़लीफ़ें सही, पर सरकारी मुलाज़िम का एक दर्जा होता है, उसका रौब होता है और इस तरह कोई सरकार को कोसे तो वह कैसे बर्दाश्त किया जा सकता है, वह आखिर कोई भी क्यों न हो। अभी तक जो बातें उनके मन में उठ रही थीं, उन्हीं बातों को वह दूसरों के मुंह से सुन कर चौंक पड़े,—ऐसा कोई अन्धेर तो नहीं हो गया है कि जिसके जो मन में आये, वह सरकार के खिलाफ़ जो चाहे कहे सुने। उन्होंने कहा :

तिवारी जी की बातें सुन कर हमें तो ताज्जुब हो रहा है। आखिर जब हमीं लोग अपनी सरकार की नुक्ताचीनी करेंगे, तो और दूसरे जो न करें थोड़ा। मँहगी के बारे में सरकार क्या कर सकती है? नया-नया राज उसे सँभालना पड़ रहा है। अँग्रेज जब इस देश से जाने लगे, तो इस देश को चूस कर एकदम बेसत कर दिया था, आखिर उसे पन-

पने में कुछ समय लगेगा ही ? पहिले ज़माने में जब राज बदलता था, तो देश-का-देश तबाह हो जाता था। अब तो कांग्रेस की महिमा है कि ज़रा-सा भी किसी का बाल-बाँका नहीं होने पाया। और कुछ हो या न हो, कम-से-कम इतना तो कहने को हो गया है कि अपना देश है, अपना राज है और अपने आदमी राज-काज कर रहे हैं। अपने आदमी राज-काज कर रहे है, तो इसका मतलब यह नहीं है कि ज़रा-सी तक़लीफ़ हो और हम आसमान पर सर उठा लें, या हर वक्त उनकी नाक में दम किये रहें, हमें सब्र से काम लेना चाहिए। अब आप चाहे जिससे मिल सकते हैं। आप देखते हैं, पण्डित जी शहर से आते हैं। आखिर अपने ही बीच से तो गये हैं ? आपकी कोशिश हो तो किसी मन्त्री से भी बात कर सकते हैं। नहीं तो पहिले जो अंग्रेज़ हाकिम रहते थे, तब अगर बहुत कोशिश किसी ने की तो उनके बैरे तक पहुँच पाया। नहीं तो हाकिम लोगों की सूरत के भी दर्शन नहीं होते थे। कलक्टर साहब के बँगले के सामने से तो कोई गुज़र भी नहीं सकता था। बड़े-बड़े सेठ, महाजन, रईस-ज़मीदार तक कलक्टर साहब से मिलने में घबराते थे, पर अब आप किसी भी मन्त्री तक पहुंच जाइये। इसे आप क्या मामूली बात समझते हैं ?

आप लोग देख ही रहे हैं, सरकार ने पंचायतें क़ायम की है। भला तिवारी जी, आप ही बताइए, कभी आप अँग्रेज़ी राज में गाँव के सरपंच हो सकते थे ? अब सारे गाँव का इन्तज़ाम आपके ज़िम्मे है। जो परती वगैरह पहिले ज़मीदारों की चीज थी, वह अब गाँव की है। कुएँ, तालाब, बावड़ी सब गाँव की पंचायत के ज़िम्मे हैं। पटवारी वगैरह का भी बन्दोबस्त कर सकते हैं, और क्या चाहिए ?

गजराज : वही तो मैं कह रहा था। तिवारी जी कल वहाँ सभा में जाकर उन कमीनों की बात क्या सुन आये, कि एकदम बहक गये। मैं तो कहता हूँ, यह सब करमू की शरारत है। क्यों लाला जी, इसकी कुछ रोक नहीं है क्या ?

रामसरन : रोक तो एक नहीं, दस हैं। और सरकार चुप बैठी थोड़े ही रहेगी, एक-एक को पकड़ कर रगड़ेगी। अँग्रेजी राज रहा होता तो सारा गाँव का गाँव फुंकवा दिया गया होता, तब लोगों को मालूम होता कि सरकार के खिलाफ़ बोलने का क्या नतीजा होता है ?

गजराज : किन्तु एक बात है कि यह सरकार नीच कौमों को भी हम लोगों के बराबर ला देना चाहती है।

रामसरन : आप क्या पागल हुए हैं, सरकार है कौन ? हम आप सब कौन ? ये जो नीच कौम वाले कांग्रेस की ओर से चुन कर गये हैं, ये तो भेड़-बकरी हैं। उनको एक अक्षर पढ़ना-लिखना तो आता नहीं। उनके लिए तो काला-अक्षर भैंस बराबर है। वह तो उनका मुंह बन्द करने के लिए ले लिए गये हैं। लाला कुवेरदास से इसके बारे में पूरी बातचीत हुई थीं। उन्होंने कहा था कि हम लोगों को तो चुनाव जीतना था, इसलिए इन लोगों को थोड़ा बढ़ावा दे रहे थे, नहीं तो हम लोग भांग नहीं खाये हैं कि अपने पैरों में अपने ही हाथों कुल्हाड़ी मारेंगे। और दूसरी बात उन्होंने यह बताई कि अगर उनका मुंह नहीं पोंछा जायेगा तो सारे हिन्दुस्तान में वे करोड़ों की संख्या में है। सच कहा जाय तो बड़ी कौम वाले तो मुश्किल से एक-तिहाई हों; नहीं तो सब-के-सब यही लोग हैं और अगर इन लोगों को थोड़ा-बहुत कुछ दे नहीं दिया गया, तो कांग्रेस उखड़ जायेगी। इसीलिए लखनऊ मे भी इन लोगों का एक आदमी मन्त्री बनाया गया है और दिल्ली में भी। बाकी काम-काज तो इन लोगों के जिम्मे जो है, वह तो हम जानते ही है। सारा काम-काज तो बड़े-बड़े लोगों के हाथों में है। वे तो यह भी कहते थे कि अगर इन लोगों को भुलावा देकर नहीं रखा गया, तो दूसरे लोग इन लोगों को बहका कर अपनी ओर मिला लेंगे और आप देख ही रहे हैं कि अभी से लोग उनको बहकाने भी लग गये हैं।

बहुत देर तक आपस में वे लोग इसी तरह बातचीत करते रहे।

उधर इसी कल की सभा की बात को लेकर डोमन भगत की मँढ़ई

पर भी काफ़ी रात गये तक बातचीत होती रही।

गोपी : भगत काका, अब तक तो हम समझते थे कि यह करमू वैसे ही होगा। झूंठे ही बनता होगा। पर कल उसकी बातें सुन कर तो मुझे ऐसा लगा कि जैसे वह अब पहिला करमू रहा ही नहीं। जाने कहाँ से इतनी अकल उसके पेट में आ गई।

डोमन : हम भी तो यही समझते थे कि करमू लड़कपन कर रहा है। सफ़ाई, पढ़ाई, एका और जो इधर-उधर की बातें करता था, मैं समझता था कि तिवारी ने उसे जो सताया था, उसी से यह खार खाये हुए है और बकवास कर रहा है। पर यह करमू तो बड़ा अकल का निकला। हमको तो ऐसा लगता है कि यह लड़का हम लोगों का माथा ऊंचा करेगा और इसकी देह से हम लोगों को क्या, सभी गाँव वालों को काफ़ी लाभ पहुँचेगा।

जंगजीत : और काका, वह जो कोई मियाँ था, पजामा और कुर्ता पहिने। क्या नाम है, भला ही सा नाम तो था, हाँ, रशीद। वह तो जैसे लगता था आफ़त का परकाला हो। बिजली की तरह उसकी हरकत होती थी। मुझे तो लगा कि अगर उसके रास्ते में कोई आयेगा तो उसे पीस कर ही रख देगा। कैसा कहता था कि हमें अब कोई नहीं रोक सकता, हमने अपनी ताक़त अब पहिचान ली है और उन्हें भी पहिचान लिया है, जो बगुला-भगत बने हुए हैं। अब जब तक इस धरती से हम जुल्मों को मिटा नही देंगे, तब तक दम नही देंगे। हमारा रास्ता रोकने की ताक़त अब किसी में नही है, हमें अपने हक़ को हासिल करने से रोकने में अब कोई समर्थ नहीं है। इस धरती पर अब कोई भी ताक़त नहीं है जो किसानों और मज़दूरों का राज क़ायम होने से रोक सके।

महँगू : हमको उस समय उसका चेहरा, जबकि वह हमारी तकलीफ़ों को बयान कर रहा था, ऐसा लगा जैसे कि कोई माँ अपने बच्चे को आग में झुलसते हुए देखती है और तड़फड़ा उठती है। फिर जब

वह राज करने वालों की बात कहने लगा, तो हमें तो उसके मुँह की ओर देखते हुए भी डर लगने लगा था, जैसे अभी वह उनको पाये तो फाड़ खायेगा और ग़रीब-गुरबा को सताने का मज़ा चखा देगा । उस समय उसकी आँखें इस तरह चमक रही थी, जैसे कोई सिंहनी के बच्चे को छेड़े और वह खूनी आँखों से छेड़ने वाले को देखे कि अब अगर फिर वही हरकत की तो फाड़ कर निगल जायेंगी । हड्डी तक का पता नही लगेगा कि कहाँ गयी और किधर गयी ।

कैलाश : उसे डर भी नहीं लगता था कि सरकार सुनेगी तो क्या कहेगी । थानेदार को तो वह ऐसी खरी-खरी सुना रहा था कि कुछ पूछो न । मै तो डर के मारे खुद मर रहा था, पर वह तो ऐसी बेलाग बातें कह रहा था कि क्या कोई कहेगा ।

डोमन : उसको किसी का डर-भय थोड़े ही है । थानेदार की क्या, वह तो कलक्टर से भी न डरे । जेल का उसे कोई ख़ौफ़ ही नही । करमू बताता रहा था कि एक-बार जब वह जेल में था, उसके और भी बहुत से साथी थे । किसी बात को लेकर उन लोगों की और सरकार की आपस में लड़ाई ठन गई । सरकार ने कुछ भी उठा नहीं रखा । लाठी उसने चलवाई, गोली उसने चलवाई । तरह-तरह का जोर-जुलुम उसने किया, पर क्या मजाल कि उनमें मे कोई भी तो हार की बात जबान पर लाये । आख़िर सरकार को उन लोगों के सामने झुकना ही पड़ा । और इस रशीद ने तो, करमू कहता था कि एक बार उनंचास दिन तक उपवास किया था । हमको तो ऐसा लगता है कि इन लोगों को अब इस धरती पर कोई नहीं हरा सकता, और हो भी क्यों नहीं । इनके बराबर कोई वीर नहीं, कौन इनका मुक़ाबिला कर सकता है और ग़रीबों के लिए इनके दिल में जो दया है, वह क्या किसी के दिल में होगी । माँ जैसे अपने बच्चे की संभाल करती है, उसी तरह ग़रीबों की सार-सँभाल ये रखते हैं । करमू तो यह भी बताता था कि दुनियाँ में बहुत सी जगहों में ग़रीबों का राज क़ायम हो गया है । वहाँ

भी पहिले इसी तरह ग़रीबों की मार थी, पर अब इन लोगों ने वहाँ की धरती से दुख को मिटा दिया है।

ये बात डोमन के मुँह से ऐसे निकल रही थी, जैसे ये बात उसके अन्तर में गूँज रही थीं और अब कोई सहारा पाकर बाहर निकल रही हों। उसने आगे कहना शुरू किया :

अब तो हमारी भी समझ में आ रहा है कि करमू ठीक ही रास्ते पर जा रहा है। हम लोगों को भी इन लोगों के कहने के मुताबिक़ चलना चाहिए। अब तो मैं सोच रहा हूँ कि एक बार बारहों गाँवों के जात-बिरादरी वालों को इकट्ठा करूँ और उनसे कहूँ कि तुम लोग सब करमू के रास्ते पर चलो। इसी में हम लोगों की भलाई है।

किन्तु सहसा डोमन भगत के मुँह पर एक चिन्ता छा गई। कोई बात जैसे वह सोचने लगा :

एक बात है, ये बड़े-बड़े लोग तब हम लोगों को फूटी आँख भी नहीं देखेंगे। पर वैसे भी कौन सर्ग में हम लोगों को रख रहे थे जो अब छीन लेंगे। बड़े-बड़े लोग तो दबायेंगे ही। साथ-साथ हाकिम-हुक्काम तो और भी ज़ोर-जुलुम करेंगे। क्योंकि वे सरकार का खाते हैं इसलिए उसका ही गायेंगे। और ये हाकिम-हुक्काम भी तो बड़े-बड़े ही लोग हैं। जब उन लोगों के फ़ायदे के ऊपर धक्का लगेगा तो वे तो उसे हर तरह बचायेंगे ही। इस समय सारी ताक़त, फौज, पुलिस सब उनकी ही है, जो उन लोगों के आराम में ख़लल डालेगा, उसे कुचलेंगे। पर हम लोगों को चाहिए कि एकबार अपनी जान पर खेल कर, चाहे कुछ भी हो, इस जोर-जुलुम को सदा के लिए इस धरती से मिटा दें!

: २१ :

असन्तोष और अवहेलना की भावना से लोगों के दिल जैसे फुंके जा रहे थे। उसकी चोट से जैसे उनका हृदय खंड-खंड हुआ जारहा हो। भावों का उफान उनमें उत्तेजना भर रहा था, आग पर चढ़ी हुई डेगची का पानी जैसे अन्तर्ज्वाला की दाह से खौल उठता है, उसकी तीव्र

भाप जैसे डेगची के ढक्कन को झकझोर देती है, जैसे उसकी शक्ति और जीवन को सीमित कर देने के अपराध में वह डेगची के अस्तित्व को खतम कर देगी और जोश में उबल कर अपनी लहरों के वेग से उस आग को राख का ढेर बना कर रख देगी, जो कि उसके शोषण का साधन है।

गोपी, झेंगुर, करमू, मंहगू, जगजीत और इसी सामाजिक तथा आर्थिक-स्तर के बहुत से लोग, डोमन भगत की मँढ़ई के सामने बगीचे में बैठे थे। आज और भी नई-नई सूरतें और चेहरे दिखलाई दे रहे थे, जो यहाँ कभी भी नहीं आते थे। सभी के चेहरों पर दृढ़ता और उत्तेजना जैसे खेल रही हो, उनके हाथों की मुट्ठियाँ जैसे अपने आप बँधी जा रही हों, उनके सर जैसे अन्तर के विचारों के तूफ़ान से अपने आप उठे जारहे हों, उनकी बाँहें जैसे किसी आन्तरिक उत्तेजना से फड़क-फड़क उठती हों, और उनके चेहरे की दृढ़ता से प्रतीत हो रहा था, जैसे वे अपने अधिकारों की रक्षा के लिए, अपने प्राप्य की प्राप्ति के लिए, अपनी मान और प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए, प्राणपण से कटिबद्ध हैं। जैसे उन्हें अपनी माँ के दूध की लाज की क़सम देकर किसी ने ललकारा हो और वे इस पार या उस पार का फैसला करने के लिए आमादा हो गये हों, उनकी साँसे जैसे क्रोधित सर्प की घोषणा कर रही हो... प्रतिकार, प्रतिकार। आज हम अपने अपमान और अवहेलना का प्रतिकार करेंगे, अपनी इज्जत और आबरू की जहालत का प्रतिकार करेंगे, अपने शोषण का प्रतिकार करेंगे, आज हम कटिबद्ध हैं। धरती और आकाश की कोई भी ताक़त हमारे मार्ग में बाधा नहीं डाल सकती, ये तथा कथित बड़ी जातियाँ, ज़मीदार, यह पुलिस, यह फौज़-फैड़ा, यह सरकार, आज कोई भी हमारे रास्ते में खड़ा होगा, तो उसका अस्तित्व हम इस धरती से मिटा देंगे।

कलपू लोहार की उम्र ढल चुकी थी, पचासा पार कर चुका था। उसके सर और दाढ़ी के बाल दो हिस्से पक चुके थे, दाढ़ी एक अंगुल

बढ़ी हुई थी, गाल पिचके हुए थे, ललाट की हड्डियों पर जैसे चमड़ा चिपका हो और फिर जगह-ब-जगह से वह झूलने की कोशिश कर रहा हो। किन्तु आज उसकी आँखों में चमक थी और हृदय-गत भावों की उत्तेजना से जैसे उसका सिकुड़ा हुआ चमड़ा खिचा जा रहा हो। आवेश में भरकर उसने कहा : रशीद बचवा, हमारी बुढ़ौती आ गई, मुदा तुम्हारे ऐसा शेर नहीं देखा। ये बड़की जात वाले आज तक हम लोगों को नाबदान का कीड़ा समझते रहे हैं। किन्तु जब से हमने तुम्हारी बातें सुनी हैं और थोड़ा-बहुत तुम लोगों की सङ्गत की है, तब से हमारे मन को बहुत बल मिला है। सच कहें, पहिले हमारे मन में कभी ऐसा आया ही नहीं था कि हमको लोग सता रहे हैं। जब बहुत परेशानी आती थी, तब अपने करम को दोष देने के सिवाय हमारे पास और कुछ रह नहीं जाता था। अब तुम देखो, हमारी उमर पचास पार कर गई है। एक दिन रामसरन का बनिहार आया कि चलो, तुमको मुन्शी भय्या बुला रहे हैं, "नहाने की चौकी टूटी हुई है, उनके समधी नहाने के लिए तैयार खड़े हैं, चलकर चौकी अभी ठीक कर दो।" उस समय हमारी पतोह को बुखार चढ़ रहा था। बचवा कहीं बाहर गया था, हम इसी परेशानी में थे कि उनका बुलावा आ पहुँचा। हमने उनके नौकर से कह दिया कि अभी आया, तुम चलो। तनिक सुमेर ओझा को बुला कर आते हैं। उनका नौकर तो चला गया, पर जाकर न जाने उसने क्या पट्टी पढ़ाई कि बस मुन्शी जी वहाँ से ही बहन-मतारी की गाली बकते चले आये और आँख चढ़ा कर बोले : "नवाबी जताता है, हमारी बात काट कर इस गाँव में तुम रहने नहीं पाओगे।"

मेरा दिल दुःखी था ही, बस मैंने इतना ही कहा था कि पटवारी भय्या, मुदा हम तो कुछ कहे नहीं, आप बेकार ही इतने लाल-पीले हो रहे हैं, बचवा की बहू को भसमीभूत ज्वर चढ़ा हुआ है, सुमेर ओझा को बुला कर हम तो खुद ही चले आते

बस इतने ही पर उन्होंने हमारा हाथ पकड़ कर झोंक दिया। मैं गिरते-गिरते बचा, जैसे ही सम्हल कर खड़ा हुआ कि उन्होंने हमारे ऊपर हाथ छोड़ दिया। अब तुम्हीं बतलाओ यह ज़बरदस्ती नहीं तो क्या है ? हमारे घर में परानी बीमार रहे, दवा दारू एक बूंद मुँह में गया नहीं, देवी-देवता को पूजने के लिए ओझा को भी बुलाने का समय नहीं देंगे। उनको बस अपनी इज्ज़त की पड़ी थी, सो काहे की इज्ज़त, तनिक ठहर कर नहाते तो कौन दुनियाँ टर जाती।

इतना कहकर वह चुप हो गया, किन्तु जैसे कोई बात उसके भीतर गूँज रही हो। फिर तीव्र स्वर में कहा : 'मुदा उनमें मुर्गी मारने भर भी दम नहीं है और तेज इतना दिखाते हैं कि बस कुछ पूछो नहीं, बस यही कि बड़की जात में पैदा हो गये हैं। सरकारी नौकरी करते हैं और दस आदमी उनके आगे-पीछे घूमते-फिरते हैं, पर वह क्या स्नेह-मुहब्बत से लोग उनके पीछे घूमते हैं। बस कलम के जोर से सबको पेंच में डाले रहते हैं, लोग अपनी गरज से पीछे-पीछे चलते रहते हैं। पर अब एक बात मैं खोल कर कहता हूँ कि अगर फिर कभी उन्होंने ऐसी हरकत की तो उनका हाथ पकड़ कर मरोड़ दूँगा, फिर चाहे फाँसी पर ही उसको चढ़ना क्यों न हो।

कलपू की बात सुनकर रशीद ने कहा : कलपू काका, यह कोई नई बात तुम बतला रहे हो ? यहाँ पर जितने लोग बैठे हुए हैं, पूछ देखो, कौन ऐसा है, जिसे जीने की सुविधा मिली हो। कौन भला बचा होगा जिसने इन लोगों के हाथों जहालत नहीं भोगी होगी, मगर अब इसका प्रतिकार करना पड़ेगा।

रशीद अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि बीच में ही दुरजन बोल उठा : जहालत की बात कहते हो भय्या, कलपू काका ने क्या जहालत भोगी है, जो हमने भोगी है। तुम जानो, हमारी जीविका तो बस भेड़ों के बल पर ही है, न खेती बाडी, न और कोई हल-रोजगार। बस इन्हीं भेड़ों के बल पर ही बाल बच्चों का पेट

किसी तरह भरता हूँ। पर लोग कल लेने देंगे तब तो। जमीदार गाँव में आते नहीं, वे तो शहर में ही रहते हैं, उनके कारिन्दे जो हैं, वे ही राजा बने हैं। साल में कम्बल दो, भेड़ दो, पर अगर इतनी ही बात होती तब तो किसी तरह चल भी जाती, किसी तरह निबाह कर लेते, यहाँ तो हर एक, अपने को राजा से नीचे नहीं समझता। गजराजसिंह अपने को जमीदार से भी बड़ा समझते हैं। कहते हैं: वह साला आज जमीदार बना है, मगर जमीदारी क्या करेगी? यह जमीदारी तो हमारे ही बाप-दादों से उसने मिट्टी के मोल खरीदी है। असली जमीदार तो हमारे हमीं रहे। आज जमीदारी नहीं रहीं तो क्या, और यह हमारी काश्तकारी भी क्य किसी से कम है, हमारा जो हक़ चला आता है, वह हम लेंगे। नौरातरी में एक भेड़ा, जाड़े में एक कम्बल और इसके अलावा पाँच दिन हमारे खेत मे भेड़ें बैठानी पड़ेंगी। मैंने सिर्फ़ इतना ही कहा था: "बाबू साहब भेड़ा और कम्बल तो हम जमीदार के कारिन्दे को देते ही हैं, अब आपको भी देंगे, तो फिर हमारी रोजी कैसे चलेगी? ऊपर से पाँच दिन भेड़ बैठाने को अलग कहते हो, अब तुम्हीं बताओ हम कैसे जीयेंगे?

किन्तु उनको अपनी ठकुरैती का बड़ा गरूर हुआ है। बिना बदज़बान के बोलना जैसे उनके माँ-बाप ने उन्हें सिखाया ही नहीं। लगे सात पुश्त को वाही-तबाही बकने। हम तुमको गाँव से निकाल देंगे, जमीदार क्या ब्रह्मा भी तुमको इस गाँव में नहीं रख सकते।

फिर हम उनसे क्या कहते। उनसे लड़ाई-बैर ठानते कि किसी तरह अपनी गुजर-बसर चलाते। हाथ-पाँव जोड़कर मैंने अरज की कि ठाकुर साहब हम आपसे कोई बाहर तो हैं नहीं, ग़रीब पर महरबानी की नजर रखो। भेड़ा और कम्बल तो हम दे देंगे, मगर खेत में पाँच दिन भेड़ रखने की बात मत उठाओ। वही तो जेठ-असाढ़ में महीने बीस दिन कमाने का मौका है कि घर में दो-दाने और दो-पैसे आ जाते हैं। जिससे कपड़े-लत्ते का काम चलता है। महाजन का लिया-दिया

साफ़ होता है और तुम जानो, शादी-बिवाह, रंज-गमी, तीज-त्यौहार, पड़ते ही रहते हैं। अगर वही आमदनी मारी जाय तो फिर हमारे घर में क्या खेती-बाड़ी होती है, या लगान का वसूल होता है कि गुज़ारा होगा।

पर वह भला मानने वाले जीव हैं लाल आँखें निकाल कर कहा : देखो, तुम नान्ह जात के होकर हमारे मुँह मत लगो। हम छतिरी हैं, छतिरी। हमसे राड़ बेसाह कर बड़े-बड़े तबाह हो जाते हैं, फिर तुम किस खेत की मूली हो ? जैसा हमारा हक-पद है, वह र जी खुशी से दोगे तो राजी-खुशी से लेंगे, नहीं तो असल रजपूत के जनमें होंगे, तो वसूल कर लेंगे।

अब यह तो एक आदमी की बात है। गाँव में जने-जने तो मालिक ही बनते हैं। सब लेने के लिए मुँह फैलाये रहते हैं, सब हम लोगों की रक्षा ही करने वाले बनते हैं, बाज आये ऐसी रक्षा से। इन लोगों के बीच में हम लोगों की तो यही हालत है, जैसे गिद्धों को रक्षा करने के लिए माँस की पोटरी दे दी जाये। बस घात में बैठे रहते हैं कि कब पायें और कब नोंच खायें और यह तो सरेआम लूट है, लुक्काचोरी की बात अलग। कौन ऐसा साल नहीं जाता, जब कि दो-चार मेंड़ा चुराकर लोग नहीं ले जाते। जहाँ भोर पड़ा कि ग़ायब किया। अभी इसी महीने में तो एक मेंड़ा पूरब वाली बारी के पास अरहर के खेत में काट डाला गया था। बात कोई छिपी नहीं रही, सब खुल गया। गजराजसिंह के लड़के की यह करतूत थी। चौधरी का बेटा भी इसमें शामिल था। अब उन लोगों के सामने जबान भी खोलो, तो अपना ही सर फुड़वाओ। माने-न-माने मैंने चौधरी खुशहालसिंह से कहा भी कि चौधरी तुम्हारे रहते हुए हमारा इस तरह से सत्यानास हो रहा है और तुम जान बूझकर भी किसी को कुछ नहीं बोलते। तुम चाहो तो हमारी रछोपाल हो जाये।

इस पर उन्होंने हँस कर कहा, जैसे कि कोई बात ही न हो : 'अरे एक मेंड़ा किसी ने काट खाया तो क्या बुरा किया। खाने-पीने की चीज

है। किसी का मन चल गया होगा, खा-पी लिया होगा। इसके वास्ते इतनी हाय-तोबा मचाने की क्या जरूरत है ? जिसने खाया होगा, उसने तुमको आशीर्वाद दिया होगा। पुन्य हुआ होगा तुझे।"

यह कह कर वे हँसने लगे।

उनकी यह बात जले पर नमक की तरह थी। मैंने कहा, "हम ग़रीब-गुरबा के लिए तो एक मेंढ़ा ही अनमोल है। आप के लिए वह कुछ न होगा, पर हमारे लिए तो हमारी जान के बराबर है। लेकिन चौधरी यह अजाब ज्यादा दिनों चलने का नहीं। गरीबों का भी कोई रखवारा होगा।"

बस इतनी सी बात पर जैसे उन्हें मिरच लग गई हों। तमक कर बोले, "अबे गड़ेरिये की बात, इतनी बढ़-बढ़ कर बात करता है। जानता नहीं बाबू भय्या अपने को कोई लगावे, पर चौधरी खुशहालसिंह का अपना निराला रंग रहा है। फिर तू क्या खाकर रौब जमाने की कोशिश कर रहा है।

दुरजन का मुँह यकायक गम्भीर हो गया। इन बातों के कहते समय तक उसके मुँह पर जो दयनीयता छाई थी, जो आत्म-अवहेलना की छाया उसके मुँह पर फैली हुई थी, उसकी बातों में जो कातरता और दीनता समाई हुई थी, उसकी साँसों में जो उन लोगों का एक भय और आतंक व्याप्त था, वह जैसे यकायक ग़ायब हो गया हो। तेज धूप के पड़ने पर जैसे कुहरा फट जाता है। जैसे उसमें एक दृढ़ता का संचार हुआ हो। गम्भीर स्वर में उसने कहा : पंचो, यह जोर-जुलुम हम लोग खुद भोग रहे हैं। हम लोगों ने इतनी तरह दी, इतनी तरह दी कि वे लोग शेर बन बैठे हैं। सूधे का मुँह कुत्ता सियार चाटता है, इसमें दोष अपना कम नहीं रहा है। किन्तु अब यह ज्यादा दिन नहीं चलने की।

दुरजन का स्वर सहसा इतना कड़ा और तेज़ होगया कि सब लोग चौंक उठे। उसकी आँखों से जैसे चिनगारियाँ निकल रही हों और

उसकी वाणी जैसे उसके अन्तर की शक्ति का अहसास करके गुरू-गम्भीर हो उठी हो, सोता हुआ शेर जैसे अंगड़ाई लेकर खड़ा हो जाये।

इस्माइल नाटा गठा हुआ जवान था। सूरज के पीछे बैठा हुआ था, यकायक चिल्ला उठा : शावाश काका और उसी आवेश में उसने कहा, आप लोग बड़े-बूढ़े अगर हमारे रास्ते में न आये तो फिर हम लोग हेंकड़ी एक दिन में दूर कर दें, आखिर किस जोम में वे पड़े हैं।

यह कह कर उसने आमन्त्रणा की आँखों से टेंगरी की ओर देखा। टेंगरी उसका अखाड़े की जोड़ था। कभी वह बीस पड़ता था और कभी यह। उसकी बाहें तेल पियाये शीशम के हीर की गढ़ी मुगदर सी मालूम हो रही थीं। उसके हाथों में तेल पियायी हुई लाठी थी, जिसके सिरे पर पीतल की मूँठ मढ़ी हुई थी और पास ही वजनदार लोहे का लोह-बन्न पड़ा हुआ था। अपनी लाठी के उसी सिरे से उसने पास के पेड़ के तने में जोर का एक हूला मारकर कहा : जिस दिन कहो। हम तो बाबू से परेशान हैं। जब होते हैं तब लगते हैं सिखाने कि अदब-क़ायदा सीखो। बड़े-बूढ़ों से बात करने की तमीज़ सीखो। यह करो, वह करो। नहीं तो जिस दिन जगेसरसिंह ने बाबू पर हाथ छोड़ा था, उसी दिन-मैंने कुछ फ़ैसला कर दिया होता। मैंने जगेसरसिंह को उसी समय चुनौती दी थी कि तुम क्षत्री के जनमे हो और मैं नान्ह क़ौम का, पर आओ आज फ़ैसला हो जायेगा।

पर बाबू को क्या कहें, लगे मुझी को गाली बकने : यह हमको दस गाँव में नक्कू बना देगा। यह हमारा पुरबन बिगाड़ रहा है, यह हम को नरक में ढकेल रहा है। अपना धरम खो रहा है और हमारी भी पत ले रहा है.....।' और न जाने क्या-क्या बड़बड़ाते रहे। मुझसे नहीं सहा गया, तो उठकर सिवान पर चला गया।

इतनी बातें हो चुकी थीं पर डोमन भगत अभी तक सर झुकाये बैठे थे। उन्होंने अभी तक जबान नहीं खोली थी। जैसे कोई विचार

उनका हृदय मथ रहा हो और उसके पश्चाताप से उनका मन डाँवा-डोल हो रहा हो। रशीद और सूरज उसके पास ही बैठे थे, उन दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा, आँखों-ही-आँख एक दूसरे से जैसे कुछ बातें कीं और जैसे दोनों एक ही निर्णय पर पहुँच गये हों।

इसी समय करमू ने कहा : भगत काका, क्या सोच रहे हो। बहुत गुमान कर रहे हो।

डोमन भगत ने अपना सर ऊपर उठाया। उनकी आँखों में जैसे कुछ नमी हो, किन्तु जैसे उसके पीछे आग भी छिपी हो, जो उस नमी को जमने न देती हो। बार-बार आती भी हो और आग की गरमी से भाप बनकर उड़ भी जाती हो। पश्चाताप और उत्तेजना का जैसे मेल हो गया हो। मध्यम आवाज से कहा : टेंगरी ठीक कह रहा है। हम लोगों की जहालत के मुख्य कारण हम लोग खुद हैं, दुनियाँ में जो झुकेगा, उसे तो लोग झुकायेंगे ही। जब हम लोग अपना सर नीचा किये रहेंगे, तो फिर दूसरे लोग हमारे सर पर लात मारेंगे ही। अब देखो अपने ही गाँव को लो। बहुत होंगे तो दस-बारह घर बड़ी जात के लोग होंगे और पचास-साठ घर हमीं लोगों के हैं। चाहे चमार-दुसाध हों, चाहे नाई-भाट हों, चाहे बढ़ई-लुहार हों, या और कोई हो, साथ ही हम लोगों के बिना एक छन भी उनका काम नहीं चल सकता। हम जोतने के लिए, खेत बोने के लिए, निराने सीचने के लिए, काटने-मीसने के लिए, सब काम तो हमीं लोग करते हैं। माघ पूस की कड़कड़ाती सरदी में दिन भर पानी में खड़े रह कर हम लोग फ़सल में पानी देते हैं। रात के शीत में खेत हम लोग अगोरते हैं। जेठ बैसाख की दोपहरी में लू घाम में हम लोग अपना तन झुलसाते हैं, पर हमें मिलती है सेर भर बनी और गाली मार ऊपर से। अपने पशुओं की भी वे, हम लोगों के बजाय ज्यादा हिफ़ाजत और ख्याल रखते हैं। एक बैल बिगड़ जाय तो दो सौ रुपये की गठरी देनी पड़ती है, पर एक बनिहार किसी का काम करते-करते मर जाय तो किसका क्या बिगड़ेगा? जीने वाला जिया तो सेर

भर अनाज मजूरी में पा गया और मर गया, तो उसकी जगह पर दूसरा बनिहार रख लिया गया। बस इतनी ही तो कीमत है हम लोगों की। और तिस पर उन लोगों का तेज इतना कि बोटी-बोटी काटकर खा डालने के लिए हर वक्त तैयार बैठे रहते हैं। बस कोई बहाना चाहिए; और यह भी तो है कि हम लोग भी कम गुनहगार नहीं हैं। उनकी मार-गाली खुद खाते ही हैं, और लड़के-बच्चों को भी यही सिखा जाते हैं कि कोई हाथ उठाये भी तो तुम उसकी ओर कड़ी नजर मत उटाओ। कम खाना और गम खाना, बस यही अक्ल हम उनको देते हैं।

कलपू ने कहा : भगत भय्या, बस इतना ही क्यों, हल-फारे का काम तुम लोग करते हो, पर हल हम लोग बनाते हैं। अगर लुहार न रहे, तो क्या वे खुद हल बना सकेंगे ? खेती-बारी का सामान तैयार कर लेना, क्या उनके बिरते की बात है ? यही क्या, मैं तो कहता हूँ कि नाई, धोबी, लुहार, चमार, गड़रिया सभी लोग तो उन लोगों का काम करते हैं। उनकी एक जान की रक्षा के लिए हमारी हजार जान कुरबान होती हैं। हमी लोगों के बल से ये लोग मजा मारते हैं।

फिर उसने सूरज, करमू और रशीद की ओर देख कर कहा : बबुआ, इसका कुछ निस्तार बताओ ! तुम लोगों ने बहुत देसकाल देखा है। हम लोगों का बेड़ा कब पार होगा ? मुदा, अब बेडा पार होना ही चाहिए।

टेंगरी ने सूरज की ओर देखा। उसकी आँखों में एक चमक थी, ऐसी चमक जैसे किसी हाथी की आँखों में, धक्के मार-मार कर पेड़ गिराते समय होती है। कहा : भय्या, एकबार बस बज जाने दो, और कुछ नहीं, बस हुकुम मिल जाये, तो दस आदमियों को तो मैं ही रगेद दूँगा। बहुत तेल मिला है, इस लोह बने को, कुछ तो वसूल हो जाये !

उपस्थित लोगों की ओर देख कर करमू ने कहा : लगता है कि आज आप लोगों ने अपने को आदमी के रूप में पहचाना है। जब आदमी अपने हक को पहिचान लेता है और उसको प्राप्त करने के लिए,

मरने-मिटने को तैयार हो जाता है, तो फिर कोई भी रोकने की सामर्थ नहीं रखता। बड़ी-बड़ी जात वाले और बडे-बड़े किसानों की तो बात ही क्या, यह सरकार भी उसे रोकने में समर्थ नहीं हो सकती। पुलिस और फ़ौज एक तरफ पड़ी रहती हैं और लेने वाला अपना हक़ ले ही लेता है। हाँ, पर उसके लिए बलिदान करना पड़ता है। हक कोई देता नहीं, हक लिया जाता है। दुनियाँ के कई देशों के मजदूर और किसानों ने अपने हक को पहिचान लिया है और वहाँ पर उन लोगों ने अपना राज कायम कर लिया है। किन्तु यह सब काम एकता से ही होता है। फिर अपने हक को प्राप्त करने के लिए हर तरह की कुरबानी के लिए तैयार रहना चाहिए।

दो एक आदमी बोल पड़े : हम तैयार हैं अपने हक को लेने के लिए। उसके लिए चाहे जो भी कुरबानी करनी पड़े, चाहे अपनी जान ही क्यों न देनी पड़े, हम लोग पीछे नहीं हटेंगे।

करमू ने उसी तरह गम्भीर स्वर में कहा : सबसे पहिले हमें अपने हक को पहिचानना पड़ेगा और यह बात कठिन भी है, और सीधी भी। सौ बातों की एक बात यह है कि हम मेहनत से दूर नहीं भागना चाहते, पर उस मेहनत का पूरा दाम हमें मिले, यह नहीं कि मेहनत कोई करे और उसका फ़ायदा कोई दूसरा उठाये।

किसी ने कहा : हाँ, ठीक कहा भइया तुमने, अदल काम, अदल मजूरी। हम किसी से भीख भी नहीं माँगते पर अपना हक भी नहीं छोड़ेंगे।

करमू ने आगे कहा : सारी ज़िन्दगी गवाँ कर दिन-रात मेहनत करने पर भी जब पेट न भरे, कपड़े-लत्ते न जुटें, हारी-बीमारी में दवा-दारू का काम न चले, तो फिर उस मेहनत का क्या फल पाया हमने। पहिली माँग तो यही है कि भाई हम काम करते हैं मर-खप जाते हैं, तो कम-से-कम हमारा पेट तो भरे। दाने-दाने को मुहताज तो न बने रहें। तुम्हारे घर सौ-पचास मन अनाज आता है, तो दस-बीस मन

हमारे घर में भी तो आये। हमारा भी तो पेट है कि मुँह बांध कर कोई काम करेगा।

बहुत वाजिब कहा भय्या तुमने पलटू चिल्ला उठा।

करमू कहता जा रहा था : फिर यह अनाज तो जमीन से पैदा होता है, यह धरती-माता की उपज है। उस धरती पर अपना पसीना गिरता है, जो रात-को-रात और दिन-को दिन नहीं समझता। उसका हक तो सबसे पहिले आता है कि उस धरती के दाने से अपना पेट भरे। साथ ही उस अनाज के पैदा करने में और भी बहुत से लोगों का हाथ है। लुहार है, कुम्हार है, नाई है, धोबी है, इनका खुले-छिपे उस जमीन पर हक बैठता है। कोई सीधे खेत में हल चलाता है, तो कोई उस हल को गढ़ाता है, तो कोई सींचने के लिए कुँए खोदता है तो कोई खाद पैदा करता है, सबका हक है।

डोमन भगत ने कुछ उल्लास से कहा : तो बचवा, अब कुछ जुगत करनी ही पड़ेगी। गरीब-गरीब सब भाई हैं। सब लोग मिलकर अपना हक तो कम-से-कम पायें, अगर हम लोग दूसरों का मुँह जोहते रहेंगे, तो फिर कभी भी हम लोगों को अपना हक नहीं मिल पायेगा। इतने दिनों से, पुश्त-दर-पुश्त से, हम लोगों की यही जहालत तो भोग रहे हैं। पर उसका कभी निस्तार हुआ ? इतना सब कुछ हुआ पर हम लोगों की हालत तो जैसे पहिले थी, वैसी ही अब भी है। हम लोग पहिले भी दाने-दाने के मुहताज थे और आज भी हैं। हम लोगों की मेहनत के बल दूसरे लोग आराम-मौज करते हैं और ऊपर से हमी लोगों पर रौब गाँठते हैं : हमारी ही मेहनत के बल से चर्बी बढ़ाकर हमारा ही खून चूसते हैं।

करमू ने कहा : अगर अपना हक लेने पर हम लोग आमादा हो जायें, तो फिर हम रे हक को रोकने वाला कोई नहीं है। मेहनत करने वालों की जागी हुई चेतना को कोई भी दबा नहीं सकता। उसका हक छीन लेने की ताकत किसी में भी नहीं है। बस केवल वह अपने हकों के

प्रति जागरूक रहे और उसकी रक्षा के लिए हर तरह की कुरबानी के लिए सदा-सर्वदा तैयार रहें।

: २२ :

बहुत कुछ सोच-समझ कर और हर तरह से ऊँच-नीच का विचार करके रामपुर की पिछड़ी जातियों तथा भूमिहीन लोगों ने यह तय किया कि हम लोग अपने हक को प्राप्त करने के लिए, किसी भी संकट से पीछे नहीं हटेंगे। इन जातियों में प्रायः वे सभी लोग थे, जिनके पास जोतने-बोने के लिए ज़मीन नहीं थी, जो अपनी जीविका के लिए किसान-गृहस्थों का हल जोतते थे। उनके यहाँ बनी-मजदूरी का काम करते थे। मोट-पूर चलाते थे, खेत में पानी देते थे, ईख पेरते थे, और भी इसी तरह के काम करते थे। उनके लड़के भी उन्हीं गृहस्थों के यहाँ लगे रहते थे, और भी इसी तरह के काम-धाम करते थे। कोई बकरी वगैरह के चराने पर लग जाते थे, थोड़ा और बड़ा होने पर गाय-भैंस चराते थे। घास-भूसा का काम करते थे, मजदूरों की स्त्रियाँ उनके यहाँ गोबर-पानी का काम करती थीं। घर-आँगन आदि लीपती थीं और इसी तरह के दूसरे काम-काज करती थीं। अगर किसी के यहाँ काम-धाम नही मिल पाता था, तो बगीचे से लकड़ियाँ बीन कर पास के बाज़ार में दो-चार पैसे में बेच आती थीं। गायों-भैंसों के झुण्ड के पीछे-पीछे घूम कर गोबर इकट्टा करती थीं और फिर उनके कंडे पाथ कर बेचती थीं। इस तरह साल में रुपया-दो-रुपया पैदा कर लेती थीं, परन्तु इन सब कामों के बावजूद और घर के सारे प्राणियों को यथाशक्ति काम में लगे रहने पर भी न तो कभी उनका पेट भर पाता था और न तन पर कपड़े ही जुट पाते थे। दोनों जून तो शायद ही किसी के पेट में अन्न जाता रहा हो। कपड़े के नाम पर जब बहुत हुआ, तो साल में एक आध मारकीन-या किसी मोटे कपड़े की गंजी बनवा ली, या कभी बहुत आँट-कुबाँट करने पर साड़ी वा धोती खरीद पाते थे। चिरौरी मिन्नत करके अपने गृहस्थों के यहाँ से फटे-पुराने कपड़े पा जाते थे. कोई बहुत साहसी

हुआ, तो फेरी करने वाले पंजाबियों से जाड़े में उधार कपड़े ले आता था, इस शर्त पर कि चैत के महीने में दाम देगा। जिसमें शुरू में ही एक का सवाया दाम फेरी वाला कपड़े पर बिठा देता था और फिर चैत में अपनी लाठी लेकर बकाया वसूल करने के लिए पहुँच जाता था। थुक्का-फ़जीहत अलग, गाली-मार अलग और दाम तो किसी-न-किसी तरह देने ही पड़ते थे। उसमे किसी की बकरी बिक जाती थी, किसी का सूअर बिक जाता था, कोई चवन्नी-अठन्नी में अपनी मुर्गियों को बेच डालता था। पर देने वाला ऐसा सख्त रहता था कि किसी-न-किसी तरह वसूल कर के ही दम लेता था।

इन एका करमे वालों में वे लोग भी थे, जो खेतों में मजदूरी तो नहीं करते थे, किन्तु किसी-न-किसी प्रकार खेतों से ही सम्बन्धित थे। वास्तव में गाँवों में रहने वाले प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सभी खेती-किसानी पर ही तो मुनहस्सर करते है, चाहे उनके पास जगह-जमीन हो या न हो। इन में लुहार थे, कुम्हार थे, नाई, धोबी, भाट, थे। माता आदि थे, जो किसानों का काम करते थे और फ़सल कटने के समय, और खलिहान से अनाज उठने के समय थोड़ा-बहुत इन्हें भी खेती में से पैदा, अनाज में से जवरा आदि के रूप मे मिल जाता है, उसी को ये अपना धन्य भाग सामझते है। गाँव के एक-आध ही आदमी ऐसे होते हैं, जो खेती-किसानी पर मुनहस्सर नही रहते और उनमे छोटे-मोटे रोज़गारी भी होते हैं।

प्रायः ये सभी लोग निम्न श्रेणी के होते थे; तथाकथित नीची कौम के और माली-हालत में तो और भी निम्न श्रेणी के। यद्यपि तथाकथित ऊँची जाति वालों में भी सब की माली हालत ऐसी नहीं थी कि उन्हें पूरी तरह से खुशहाली हासिल हो। परन्तु इतना ज़रूर था कि उनकी हालत कुछ बेहतर ज़रूर थी। उनमें से प्रायः सभी के पास थोड़ी-बहुत जमीन चली आ रही थी, या कोई-कोई नौकरी-पेशे में हो गया था। देश-विदेश निकल कर साल में सौ-पचास रुपये ले आता था,

इससे उनका हाथ कुछ सरक जाता था। किन्तु इनकी माली-हालत ज्यादा अच्छी न होने पर भी इनमें एक ठसक थी, जो उनके मिथ्या अभिमान के रूप में पनप रही थी। नान्ह कौमों के साथ अत्याचार करना, उनके साथ गाली-गुपतार करना, उन्हें हर तरह से परेशान करना, या अपने ज़रा से सुख के लिए कभी-कभी उनका बड़े-से-बड़ा अहित कर बैठना, अपना सहज स्वाभाविक अधिकार समझते थे।

जिनके पास जगह-जमीन थीं और जो खेती करने वालों पर मुन-हस्सर थे, उन सभी लोगों ने यह तय किया कि जब तक हमें अपनी मेहनत का वाजिब मूल्य नहीं मिल जाता, तब तक हम लोग काम से हाथ नहीं लगायेंगे। यह बात नहीं कि हम लोग मेहनत मशक्कत से दूर भागते हों, पर हमारी मेहनत का वाजिब मूल्य मिलना ही चाहिए। यह बात ज़रूर है कि जगह-जमीन का लगान, सरकार को किसान ही देता है और जमीन का लगान भी कम नहीं है। साथ ही खेती की उपज भी माकूल नहीं होती; परन्तु इसका यह मतलब तो नहीं कि जो कुछ उसमें पैदा हो, वह सब-का-सब लगान देने वालों के ही पास चला जाये, आखिर वे लोग कितना परिश्रम करते है ? अगर हमारी मेहनत न लगे, तो धरती कभी भी सोना न उगले। अगर समय पर खेत न जोता जाये, बीज न डाला जाये, निराई-सिंचाई न की जाये, देख-भाल न की जाये, काटा-पीटा न जाये और समय पर दायां-मीसा न जाये, तो किसानों के पास जगह-जमीन रह कर ही क्या होगा ? फिर उनके घर में अन्न का दाना कहाँ से जायगा। माना कि इसमें किसानों की मेहनत मशक्कत शामिल है, पर उनसे भी ज्यादा इस अन्न को धरती-माता की गोद से प्राप्त करने में हम खेतिहर-मज़दूरों का हाथ है, लुहारों का हाथ है, कुम्हारों का हाथ है, नाई, माली, धोबी आदि का हाथ है। यद्यपि वे जमीन से अन्न पैदा करने में सीधा हाथ नहीं बँटाते, किन्तु और दूसरे काम हैं, जिन्हें वे करते हैं। लुहार हल-फावड़े बनाता है, खेती में काम आने वाले सभी औज़ारों को वही बनाता है, उसकी उसे कोई नक़द

मजदूरी तो मिलती नहीं, न पैसे के रूप में और न अनाज के रूप में। उन्हें तो अपनी मेहनत की मज़दूरी नाम-मात्र को नभी मिलती है, जब खेत की फ़सल कटती है। इसी तरह धोबी है, जो साल भर तक किसानों के कपड़े-लत्ते धोते रहते हैं, मज़दूरी में एक पैसा भी वे नहीं पाते। कुम्हार है, जो साल भर तक बर्तन-भाँड़े देता रहता है। माली मौके बे-मौके काम आता रहता है। नाई है, जो साल भर तक दाढ़ी-हजामत बनाता है, कार-पिरोजन पर, रात-को-रात और दिन-को-दिन नहीं समझता, हर वक्त लगा रहता है। इन सभी को तो नाम-मात्र की मज़दूरी तभी मिलती है, जब फ़सल कटती है। किसानों को खेती में मदद देने वाले ये सभी लोग हैं; जिनका हक इस जमीन से पैदा हुई फ़सल पर पहुँचता है और इन सब को वाजिब मज़दूरी मिलनी चाहिए। जमीन से जो अन्न पैदा होता है, उसका एक निश्चित अंश हमें मिलना चाहिए और वह अंश कम-से-कम उपज का आधा हो। आधा किसान के पास रहे, जो सरकार को लगान चुकाता है और आधा हमारे ऐसे लोगों को मिले, जिसे हम लोग अपनी मेहनत-मशक्कत के अनुसार बाँट लेंगे। अगर किसानों को यह जब मालूम होता हो कि लगान ज्यादा है, सिंचाई-निराई की कोई सुविधा नहीं है, खाद-पानी की व्यवस्था नहीं है, उपज बढ़ाने का और कोई रास्ता नहीं है, पशुओं के चारे का प्रबन्ध नहीं है, तो इसके लिए वे सरकार से लड़ाई लड़ें। जमीन की वाजिब दर तय करवायें। खाद-पानी की सुविधाएँ प्राप्त करे और देखा जाय तो हमारी और उनकी समस्याओं में कोई विशेष अन्तर नहीं है, हम सभी एक ही चक्की में पिस रहे हैं, चाहे किसान हों, कारखाने में काम करने वाले मजदूर हों, या हम लोग खेतिहर मज़दूर बनियारे हों। पर यह नहीं होगा कि जबरा के आगे तो वे लोग घुटने टेके रहें और हम लोगों को पीसते रहें। अब हस लोग झुकने को तैयार नहीं है। हाँ, हम लोग इस बात के लिए तैयार हैं कि अगर वे हमारे साथ आकर मिल जाते हैं, तो हम लोग सामूहिक रूप से अपना संगठन बनायेंगे

और फिर अपनी छाती पर पड़ी चट्टान को दूर कर देंगे। वास्तव में हम लोग एक ही हैं। फिर अपने हकों को प्राप्त करने के लिए हम लोगों को एक जुट होकर सरकार के खिलाफ़, मोर्चा कायम करना चाहिए, क्यों कि यह सरकार हमारी नहीं, हमारे दुश्मनों की है। यह हमारे हक़ों को छीनने वालों की सरकार है।

आपस में उनमें इन्हीं सब बातों पर विचार-विनिमय हो रहा था। ऊपर की बातों में प्रायः सभी शामिल थे। सहसा सनाउल्ला ने पूछा : और अगर, वे लोग हम लोगों की बातों को न मानें तब ?

चेखुरी ने कहा : हाँ, अच्छी तरह विचार करलो। यह मत समझो कि जो कुछ हम लोग उनसे जाकर कहेंगे, बकरी की तरह कान दबा कर वे मान जायेंगे। जानते हो, रुपया-पैसा उन लोगों के पास भले ज्यादा न हो; पर एक ठसक जो है, हम लोग बड़े आदमी हैं। मज़दूरों-बनिहारों के आगे झुकेंगे कैसे।

टेंगरी ने कुछ तीखे स्वर में कहा : 'यही तो हम लोगों को अब समझना है कि उनका यह बड़प्पन अब हम लोग अपने सिर पर नहीं लादेंगे। सब से बड़ी बात यह कि जब तक हम लोग एका किए रहेंगे, तब तक वे हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे। हम लोग उनसे साफ़, खोल कर कह देंगे कि भय्या हो ! अब बहुत दिन हो गया, यह जूआ उठाये हुए, इसके बोझ से अब हमारी गर्दन टूटी जाती है। अब हम इसे नहीं ढोयेंगे। भलमसाहत इसी में है कि आप सीधे से मान जायें, नहीं तो हम भी आदमी हैं और अब हम पहिले वाले बे-दबे आदमी नहीं हैं कि वे लात भी मारें, तो हम अपना सर झुका लेंगे। हाँ, यह बात हम तुम लोगों मे कहे देते हैं कि वे ज़ोर ज़बरदस्ती करेंगे, पुलिस सरकार की मदद भी लेंगे और हर तरह से अपनी ताक़त आज़माने की कोशिश करेंगे। अपनी तरफ़ से वे कुछ उठा नहीं रखेंगे। पर हम लोगों को अपने हक़ पर अड़े रहना चाहिए। अब यही तो मौक़ा आ रहा है यह जेठ का महीना लग चुका

है। जिस दिन असाढ़ का दौंगड़ा पड़ेगा, उस दिन उन लोगों को मालूम होगा। उनसे हम लोग साफ़-साफ़ कह देंगे कि उपज का आधा हिस्सा हमें दिया जाये, हम लोगों के साथ इन्सानियत का बरताव किया जाये। अब हम उनके लात घूसे नहीं सह सकते, बेगार नहीं देंगे, अगर कुछ भी सामान हम लोगों से लिया जायेगा तो उसका दाम देना पड़ेगा। वह चाहे अनाज के रूप में हो, चाहे रुपये-पैसे के रूप में। अब यह नहीं होगा कि दुरजन की साल में चार भेड़े ठकुरैती के जोम में लूट ले जायें। चेखुरी और इस्माइल उनके पाँव दबाते-दबाते थक जाये और ज़रा सा सुस्ताने लगे तो लात-घूँसों की बरषा करें।

चेखुरी ने कहा : हम लोग तो मरते-खपते ही थे, साथ ही अगर मेहमानदारी का भी कोई नातेदार-रिश्तेदार आ जाता था, तो उसे भी उन लोगों की बेगार करनी पड़ती थी। घर में चाहे उनके खाने का ठिकाना न हो, पर बिना मालिस कराये जैसे उन्हें चैन ही न पड़ता हो। यह भी क्या बड़कपन है कि अपना काम भी अपने हाथ से न करें। नहाने के लिए कोई एक डोल पानी खीच कर खुद नहा लेगा, तो क्या छोटा हो जायेगा। उनके घर कोई पाहुन-पुरिया आ जाये तो बस बिना कहार और नाई-बारी के नहवाये उनका नहान ही नहीं होगा।

सब लोगों ने एकमत से यह तय किया कि अपनी ये सारी बातें करमू और डोमन भगत बड़े किसानों और अपने को बड़ा मानने वालों के सामने रख दें और साथ ही उन्हें यह अच्छी तरह बता दें कि अब केसी भी तरह के जोर-जुल्म से हम दबने वाले नहीं हैं। इस हक़ को पाने के लिए हमें अपनी जान भी गँवानी पड़े, तो हम पीछे हटने वाले नहीं हैं। एक-न-एक दिन तो यह तन मिट्टी मे मिलने वाला ही है, फिर इससे बड़ा मौका कब आयेगा कि यह तन सारथ हो। हम लोगों की ज़िन्दगी तो इसी जहालत में बीत गई है, किन्तु अब हम अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर इस जहालत को मेंट देंगे, ताकि हमारी आने वाली सन्तानें आदमी की ज़िन्दगी जी सकें। उन्हें तो इस गुलामी की जंजीर

से छुटकारा मिल जाये।

रशीद ने कहा :

पर हाँ, यह दाल-भात का कौर नहीं कि सहज ही में निगल लिया जाये। रस्सी जल जाती है, पर उसकी ऐंठन नहीं जाती। इसी तरह के ये लोग हैं। जब तक इनका हाथ टूटने नहीं लगेगा, तब तक उनसे कोई चीज़ छीन लेना सहज नहीं है। किन्तु हमें अपने को आदमी बनाने के लिए, आदमी की ज़िन्दगी जीने के लिए, अपनी सन्तानों को आदमी की जिन्दगी बख्शने के लिए, अपना हक़ प्राप्त करने के लिए, अपनी बची हुई ज़िन्दगी बहबूदी और खुशहाली के लिए, अपनी आने वाली सन्तानों के कल्याण के लिए, अपनी इस जिन्दगी की बाज़ी लगानी पड़ेगी। अपने प्राणों की बाजी पर, अपने टेक पर अड़े रहना है। इस लड़ाई में हमारी आँखों के सामने ही हमारे बाल-बच्चे भूखों मर जायेंगे। वैसे अभी भी तो करीब-करीब यह हालत है पर तब वह भी नहीं मिलेगा। क्योंकि बाघ के मुँह में से हमें अपना चारा छीनना है।

करमू ने कहा : हाँ, यह सब कुछ तो ठीक है। हमें यह भी उम्मीद है कि हमारे जितने आदमी हैं, एक बार बात देकर कभी-कदम पीछे नहीं हटायेंग। क्योंकि यह बच्चों का खिलवाड़ नहीं है और फिर जब हमारे साथ इतने आदमी हैं, इतने सर, इतने हाथ, तो क्या नहीं कर सकेंगे ? कहा है कि गोजर की कोई कितनी टाँगें तोड़ेगा। फिर हममें से कितनों को कोई मारेगा। तिल-तिल करके तो अभी तक हम मर ही रहे हैं। अब जब एक बारगी मरने की ज़रूरत पड़ी, तो फिर क़दम पीछे कैसे उठा सकते हैं। पर हम यह भी कहे देते हैं कि अभी तो वे लोग फूले हैं कि सरकार हमारी है, हमारे आदमी सरकार में हैं और हम बड़ी जात के लोगों के लिए स्वराज्य आया हुआ है। पर उन्हें जल्दी ही मालूम पड़ जायेगा कि बड़ी जात और छोटी जात का झगड़ा तो दो दिन का है। पैसे वाले किसी के नहीं होगे। यह राज न ठाकुर का है,

न ब्राह्मण का, न कायस्थ का, यह राज तो नगदनारायण वालों का है। जिनके पास पैसा है और उनका भी है, जो कहे जाने के लिए तो जिनकी ज़मीदारी, पर सरकार ने दखल कर लिया है पर जो हरजाने में जैसे पूरी ज़मीदारी का दाम पा गये हों और उनका भी है, जो राजे-रजवाड़े थे, जिनको सालाना इतना मिलता है कि अगर साल भर तक के लिए रोक दिया जाये तो हजारों-लाखों आदमियों की रोजी-रोटी की समस्या हल हो जायेगी। अभी यह नया-नया भुलावा है। दस दिन में इन्हें भी मालूम हो जायेगा कि जब तक आदमी चाहे वह ब्राह्मण हो, या पासी हो, किसान हो, या खेतिहर मज़दूर, या क़ारखाने का मज़दूर हो, सबको होना हो पड़ेगा। नहीं तो खून चूसने वाले तो खून चूसेंगे ही। क्योंकि सारी दुनियाँ के आदमी केवल दो जातियों में बँटे हैं, वह है ग़रीब और अमीर।

अन्त में यह निर्णय हुआ कि अपने निर्णय की सूचना उन लोगों को अविलम्ब दे दी जाये।

क्रान्ति की ओर

: २३ :

नगाड़े पर पड़ी चोट की तरह गुरु गम्भीर स्वर में बादलों की गरज़ ने वर्षा के आगमन की सूचना दी। अभी तक धुन्ध और गर्द-गुबार से भरे आकाश में मट-मेले धूसर रंग, पर काले-काले बादलों की छोटी-छोटी टुकड़ियाँ मड़राने लगीं। उनके पीछे-पीछे बड़े-बड़े बादलों की टुकड़ियाँ आईं और फिर सारा आकाश काले-काले बादलों से घिर गया। ठीक उसी तरह जिस तरह कि मेले के उठते हुए स्वर के आकर्षण से खिंचे बच्चे उछलते-कूदते आगे-आगे भागते जाते हैं, अपनी सहज-बाल-सुलभ-चापल्य से जैसे वे उड़े जाते हैं और उनके पीछे-पीछे जवानों की टोली आती है और फिर सारे-के-सारे मेले में समाकर एक रूप धारण कर लेते हैं, जिसे मेले की संज्ञा दी जाती है। जेठ-बैसाख की तपती धरती के ऊपर उन जल भरे काले-काले बादलों की छाया इस तरह मालूम हो रही थी, जैसे धूप में मुरझाये बच्चे के ऊपर माँ

अपना स्नेहित अंचल फैलादे और बच्चे का मुँह उस स्नेह के आवरण की शीतलता से हरा हो जाये।

ऊमड़ते हुए बादलों ने आकाश में घूम-घूम कर पहिले निरीक्षण किया, जैसे वे यह देखना चाहते हों कि अभी-अभी आठ-मास पहिले जो हम धरती को हरा-भरा छोड़ गये थे, जो धरती हमने शस्य-श्यामला वस्त्र पहिना कर उसका आँचल मोतियों से भर दिया था, नख-शिख शृङ्गार करके धरती जो ताल-तलैयों के नील स्फटिक-मणि के आइने में अपना सम्मोहक-रूप निरख रही थी, इठला-इठला कर, झूम-झूम उठती थी, आज वह किस रूप में है ? और धरती को सूनी और उजाड़ पाकर जैसे उसका सत्यानाश करने वाले ग्रीष्म के प्रति उसका हृदय क्रोध से भर उठा और अपने प्रलयकारी रणघोष से उसने दिगदिगन्त को गुंजा दिया। मंडलाकार छा-कर अपनी सैन्य से जैसे उसने ग्रीष्म के राज्य के प्रति घेरा डाल दिया हो और साथ ही जैसे पृथ्वी की दुर्दशा देखकर उनका अन्तर करुणा से विगलित हो उठा। अपने हृदय का स्नेह-रस बूंदों के मिस-धरती पर बिखेर दिया, ताकि तृषित शोषित धरती की छाती शीतल तो हो सके।

पुरवा हवा के झकोरे से मिली फुहारों से प्रसन्न होकर पेड़-पौधे जैसे नाचने लगे। उनकी पत्तियाँ और डालें हिल-हिल कर जैसे अपनी प्रसन्नता का प्रदर्शन कर रहे हों। खेतों में खडे गन्ने आनन्द में झूम-झूम उठते हों। वे इस तरह मचल रहे थे, जैसे बरसात की पहली फुहार में छोटे-छोटे बच्चे आँगन में निकल पड़ते हैं और फिर मचलते हैं, नाचते हैं, कूदते हैं और प्रसन्नता से खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं। मैदानों में हरी-हरी घास अपनी नन्हीं-नन्हीं पत्तियों के सर उठाकर उचक-उचक कर काले-काले बादलों को देखने लगी, जैसे चोंच में चारा भरे चिड़ियाँ जब अपने घोंसले की ओर उड़ती आती हैं, तब अपनी नन्हीं-नन्हीं चोंच खोले घोंसले के बाहर अपनी गर्दन निकाले चिड़ियों के बच्चे उल्लास से देखने लगते हैं। छोटे-छोटे गड्ढों में थोड़ा-थोड़ा पानी इकट्ठा हो गया, उन

गड्ढों और ताल-पोखरों के किनारे पीले, मटमैले, भूरे मेंढ़क उछल-उछल कर शोर मचाने लगे, जैसे छोटे बच्चों के क्लास से मास्टर के बाहर निकलते ही वे शोरगुल मचाने लगते हैं।

आकाश में उमड़ते-उमड़ते काले-काले बादलों और उनकी फुहार से उल्लसित होकर बच्चे घरों के बाहर निकल आये। अपनी सहज-चपलता और उल्लास से उन्होंने आँगन में, खेतों और मैदानों में, नाच-कूद कर कल्लोल करना शुरू कर दिया :

आँधी पानी आवे रे, चिरैया ढोल बजाबै रे।

उनसे कुछ बड़े बच्चों को जैसे "चिरैया के ढोल बजाने" की कल्पना अस्वाभाविक लगी, जैसे इस कड़ी को गुनगुनाकर वे अपनी बुद्धि और वय का अपमान करेंगे। छोटे बच्चों के इस गाने से जैसे वे सन्तुष्ट नहीं हुए और बादलों से आग्रह करना शुरू किया :

काले मेघा पानी दे।

जैसे वे अपना अधिकार समझते हों, कि काले बादलों से पानी की माँग करें, जैसे वे बादल उनके हमजोली हों, जिससे वे रूठ भी रहे हों और धमका भी रहे हों? कि हाँ, अगर तुम्हें हमारा साथ पसन्द है, अगर हमारे सगी बने रहना चाहते हो, तो हम जैसा कहते हैं, वैसा तुम्हें करना पड़ेगा, तुम्हें इस धरती के हृदय को अपनी फुहारों से, तर करना ही पड़ेगा। नहीं तो हमारी-तुम्हारी छुट्टी? और जैसे बादलों को अपने बाल-साथियों के इस आग्रह और चुनौती के खिलाफ़ जाने की ताब न हो, जैसे वे उन्हें नाखुश नहीं करना चाहते हों। उमड़ते-घुमड़ते बादलों के घोष से पृथ्वी का कोना-कोना गूँज उठा। बरसा की बूँदें कुछ और तेज़ हो गईं।

किन्तु बादलों ने बच्चों और बालकों के साथ खिलवाड़ में अधिक समय गँवाना जैसे उचित नहीं समझा। एक लम्बे अरसे के बाद परदेश से लौटने पर नवयुवक पति, बच्चों से दो-चार बातें करने के पश्चात् बाट जोहती अपनी पत्नी से बातें करने के लिए आकुल-आतुर

हो उठता है। पुरवा हवा के आग्रह से उसने नवयुवतियों से छेड़छाड़ शुरू करदी। हवा के झोके से उनका अंचल फ़रफ़रा उठा और बरसा की बूँदों ने जैसे उन्हें चिढ़ाने के लिए अपनी फुहारों से भिगो दिया। जैसे इन बिरहिनों से व्यंग में वे ठिठोली कर रहे हों : "कहो कैसी कटी ?

और वे विरहिनें जैसे इस ठिठोली से मोहित हो उठी हों। उनकी आँखों में जैसे कोई मूरत तैर गई हो, उन्होंने अपनी पलकें मूँद लीं, जैसे जो प्यारी मूरत अभी-अभी आँखों में समा गई है, वह आंखों में समाई ही रहे। उनके ओठों पर, उनके अन्तर की विरह वेदना करुण-स्वर में जैसे मूर्त हो उठी :

पहिल मास असाढ़ ए सखी।
पिया छोड़ैला सँग-साथ ए सखी॥
सावन रइनि सुहावन ए सखी।
पिया बिना जरैला शरीर ए सखी॥
भादों रइनि भयावनि ए सखी···

और जैसे इस 'भयावन' शब्द के साथ उनके सामने अपनी वर्तमान स्थिति स्पष्ट हो जाती। आगे की कड़ी अपने आप जैसे मुँह मे समाई ही रह जाती। तभी कहीं से हवा के झोंके के साथ उड़ता हुआ एक स्वर गूँज उठता :

"घन घमंड गरजत नभ घोरा। प्रिया-हीन डरपत मन मोरा॥"

दामिनि दमकि रही घन माँहीं·····

जवान औरतों और मरदों के हृदय में बरसा की पहिली फुहार ने जैसे उनके हृदय को उल्लसित कर दिया हो। बरबस जैसे उनके कण्ठ से माधुरी झर रही हो :

बरसा लागत मोरी गुइय्याँ !

किन्तु बरसात की यह मादकता जैसे क्षण-भर के लिए ही रही हो, जैसे पहिली उठान के साथ ही कोई दबोच ले। उनके हृदय का उल्लास

जैसे जहाँ का तहाँ दब गया हो, घोंसले के बाहर गरदन निकालते ही जैसे चिड़ियों के बच्चे के ऊपर बाज़ की भयावनी छाया पड़ गई हो।

गाँव में तनातनी बढ़ चुकी थी। खेतिहर मजदूरों, बनिहारों और उन्हीं की तरह शोषित, खेती से सम्बन्धित पेशे वाले अपनी माँग पर अड़े हुए थे। उनकी माँग स्पष्ट और दृढ़ थीं : हमारी मेहनत का हमें वाजिब मूल्य मिले। हमारे साथ मनुष्योचित व्यवहार किया जाये। ऊँच-नीच छोटे-बड़े के भेद को जानने के लिए हम तैयार नहीं हैं और जब तक हमारी ये माँगें पूरी नहीं होतीं, हम किसानों का काम नहीं करेंगे। किसी बड़ी जात वाले से हम कोई भी सम्बन्ध नहीं रखेंगे। अगर बाहर के आदमियों को बुलाकर हममें फूट डालने की कोशिश की गई, तो हम उसका प्राणपण से विरोध करेंगे, चाहे इसके लिए हमें जो भी भुगतान देना पड़े, उसके लिए हम लोग हर तरह तैयार हैं।

आकाश में उमड़-घुमड़कर बादल, खेती-किसानी का समय शुरू होने का एलान करके थक गये। पानी की बूँदें धरती पर पड़कर इधर-उधर बहने लगीं, किन्तु खेतों में हल नहीं जा पाये। खेतों की मेंड़ नहीं बाँधी गई। नालियों और बरहों को दुरुस्त नहीं किया गया, खेत में जमी हुई घास को नही खोदा गया।

हर साल इस मौसम में खेतों में हल चलने लगते थे। हलवाहों के कण्ठ से निकली हुई बिरहे की तानें, हवा की लहरियों पर नाचती थिरकतीं, जैसे दिग्दिगन्त में उनके हृदय के उल्लास को बिखेर आती हो। कहीं कोई खेतों की मेंड़ बाँधता था, कहीं कोई पानी की बहान ठीक करता था, कहीं कोई ज्वार-बाजरा आदि बोता था और कहीं धान का बीया डालना शूरू हो जाता था। बरसाती तरकारियों को कहीं कोई रोपता था, तो कहीं कोई पशुओं के लिए चारा आदि बोता था, किन्तु इस साल जैसे सभी काम-धाम बन्द था। चारों ओर एक मनहूसी छाई हुई थी, लोगों के मन घृणा और उत्तेजना से भरे हुए थे, एक दूसरे के प्रति उनके हृदय में ज्वाला समाई हुई थी।

खेत और सिवाने वीरान पड़े हुए थे। ज्वार और बाजरे, अरहर और सन के पौधे हर साल इस मौसम में अपने हरे-मखमली वस्त्र पर गर्व भर कर इठला-इठला कर झूम-झूम उठते थे। पुरवा हवा जैसे दुलार से उन्हे कलैया खिला रही हो। धान के छोटे छोटे पौधे, गाढ़े हरे रंग का कलेवर धारण किये अपनी कमर-कमर भर पानी मे पुरवा हवा के साथ मचल-मचल कर खेल करते रहते थे। किसानों की छाती उस समय आनन्द और उल्लास मे फूल उठती थी, जैसे अपने बच्चे की बालक्रीड़ा पर माता-पिता का हृदय आनन्द और उल्लास से भर उठता है। अगर आसाढ़ की खेती मारी जाये तो फिर पूरा साल ही ख़राब जाता है। यही तो मौक़ा है कि भविष्य के लिए किसान बीज का रोपण करते हैं। इसी मौसम में खेत की जुताई शुरू हो जाती है। अगर जुताई न हो, तो चैती फ़सल भी मारी जाती है। बरसात का मौसम ऐसा है कि किसान अपनी पूरी ताक़त से खेतीबारी के काम-काज में जुट जाते हैं। किन्तु इस साल मज़दूरों और उनके तनाव के कारण कुछ नही हो पाया था। आख़िर अकेला आदमी कितना काम करे। लोगों ने अपना थोड़ा-बहुत काम करना शुरू भी किया, किन्तु सब काम एक आदमी के बूते का तो होता नहीं। हल जोतना, खेत की मेंड़ वगैहह ठीक करना, जोतना वगैरह और फिर भदई फ़सल का बोना, सभी काम तो करना पड़ता है। आम तौर पर किसान दो-चार मज़दूरों को काम पर लगा लेता है। हलवाहा हल जोतता है, कोई मेंड़ वगैरह बाँधता है, उसके अलावा गाय-बैलों वगैरह की देख-भाल अलग करनी पड़ती है।

इन बातों के बावजूद हल-फ़ारे ठीक करने के लिए लुहार की ज़रूरत पड़ती है। आख़िर जब लुहार न आये तो कौन यह काम करे। बढ़ई की ज़रूरत अलग पड़ती है। नाई के अभाव में हजामत कैसे बने, लोगों की दाढ़ियाँ बढ़-बढ़ कर दो-दो अंगुल बड़ी हो गईं। रूखे मुँह पर वे ऐसी मालून होती थी, जैसे किसी ने गेहूँ अथवा जौ की फ़सल खेत से काट ली हो, और अब दो-दो चार-चार अंगुल ऊँची जड़ सूखी जमीन पर

ऊपर उठी हुई दिखाई दे रही हो। चिन्ता, घृणा, उत्तेजना और प्रतिहिंसा की भावना से उनके मुँह और भी भयानक मालूम हो रहे थे। कुम्हार ने बर्तन और खपड़े नहीं दिये। गाँवों में आमतौर पर मकान या तो फूस से छाये होते हैं या खपड़ों से। फूस के मकानों को तो किसी तरह किसानों ने छा-छाप कर काम चलाया, किन्तु खपड़े के मकानों की हालत और भी बुरी थी। गरमी में आँधी और बवंडर से छाजन के कितने ही खपड़े बिखर गये थे। अब बरसात की बौछार में वे छाजन चूने लगे। पर जब कुम्हार ने खपड़े दिये ही नहीं, तो उनका चूना कैसे बन्द किया जाये। किसानों के मुँह सूखे हुए थे, उनके दिल बैठे हुए थे, परन्तु कभी-कभी उनके मन में प्रतिहिंसा की आग भभक उठती थी। भविष्य उनके लिए अन्धकारमय लगता था।

रामलखन तिवारी के दरवाज़े पर ऐसे सभी किसानों ने एकत्र होकर इस समस्या पर विचार करना शुरू किया। आखिर इसका हल कैसे हो? वहाँ एकत्रित लोगों का मुँह एकदम गम्भीर था और उस गम्भीरता पर भयानकता छाई हुई थी। ऐसा लगता था, जैसे जलता हुआ आँवा भीतर-ही-भीतर धुधुआ रहा हो और ऊपर निकलने का मार्ग ढूँढ़ रहा हो, या जैसे तूफान आने के पहिले प्रकृति स्तब्ध और शान्त हो उठती हो। उसके अन्तर में भीषण तूफान उमड़ता-उबलता छिपा रहता है और जैसे अवसर का इन्तज़ार करता रहता है।

ठाकुर गजराजसिंह ने गरज कर कहा: मैं इस बात को सुनने के लिए भी तैयार नहीं हूँ कि इन नीचों को बुलाकर समझौते की बातचीत की जाये। मैं तो छत्रिरी का जनमा हूँ, हमारे बाप-दादों ने तो यही सिखाया था कि छत्तरी की शान झुकने में नहीं है। टूट जाये तो टूट जाये। सो हम तन में प्राण रहते यह नहीं होने देंगे कि चमारों-दुसाधों को बुलाया जाये और उनसे बाबू भय्या कहकर चिरौरी मिन्नत की जाये।

गजराजसिंह क्रोध में जैसे उफन पड़े। उनकी आँखों से जैसे ज्वाला

निकल रही हो। बार-बार उनका हाथ अपनी लाठी पर जा पड़ता था, और कभी-कभी उत्तेजित होकर वह चारपाई की पाटी पर या बरामदे के खम्भे पर लाठी से ठोक देते थे, जैसे कुछ कर गुज़रने के लिए वे आतुर हो रहे हों।

रामलखन तिवारी ने चिन्तित होकर कहा : इसमें किसी के सामने झुकने की बात कौन उठती है ? आप क्या समझते हैं, कि आप ही एक ऐसे हैं जो अपनी टेक निबाहना चाहते हैं। मैं तो कहता हूँ कि मैं ब्राह्मण हूँ और अपने धरम पर मर-मिट जाना हमने सीखा है। यह तो मैं कभी नहीं कहता कि उनको गले लगा कर बबुआ भय्या कहा जाये। हम लोगों को आज यही तय करना चाहिए कि आखिर इससे निस्तार कैसे मिले।"

इतने में खशहालसिंह भी आ गये। अभी-अभी दो महीने पहिले खुशहालसिंह और इन लोगों में इतना बैर-विरोध था कि लोग एक दूसरे को फूटी आँखों भी नहीं देखना चाहते थे। मौक़ा पाकर एक दूसरे पर घात करते रहते थे। पर जब से खेतिहर मज़दूरों और उनसे सम्बन्धित लोगों ने एका करके इन लोगों के सामने अपनी माँग रखी थी, तब से सब जैसे अपने पुराने बैर को भूल कर एक साथ आ खड़े हुए थे। सब के स्वार्थ पर धक्का लगा था और अगर उन मज़दूरों की माँगों के आगे वे लोग झुक जाते हैं, तो एक तो अपने को बड़ी जात मानने की जो ठसक है, वह चली जाती है और उससे भी बड़ी मार आर्थिक मार है, सो इस संकट के समय, ये सभी लोग एक जुट हो गये थे। अपने सहज बैर-बहस को दरकिनार कर दिये थे। जैसे जंगल में आग लगने पर जंगल के जानवर अपने सहज बैर-बिरोध को भूलकर एक जगह एकत्र हो जाते हैं।

खुशहालसिंह को देखकर मुन्शी रामसरन ने बड़े प्रेम से कहा आओ चौधरी, तुम्हारा ही इन्तजार हम लोग कर रहे थे।

यह कहकर उन्होंने चारपाई के नीचे पड़ी हुई मचिया को आगे सरका दिया। उनके मन में यह भी था कि कहीं ऐसा न हो कि चौधरी चारपाई पर बैठ जाये। क्योंकि वह किसी से दबते नहीं हैं। अहीर होते हुए भी अपने को सिंह लिखते हैं और अब अपने को बड़ी जाति वालों में शुमार करने लगे हैं। बड़ी जातियों के सरीखे अब वे भी अपनी औरतों को घर के बाहर निकल कर खेत पर काम करने नहीं देते। हालांकि इसमें उनको काफ़ी परेशानी उठानी पड़ी थी, क्योंकि बनिहारों की संख्या बढ़ानी पड़ी थी। परन्तु अपनी जीत को दो अँगुल ऊँचा उठाने के लोभ में उन्होंने इस आर्थिक भार को सह लिया था। जैसे दाँत कट-कटाते जाड़े में भी दूसरों की नज़रों में अपने को बड़ा दिखाने के लिए और अपने धर्म को पक्का समझने के लिए कुछ पोंगा-पन्थी कपड़ा उतार कर भोजन करते हैं। या कुछ ग्रामीण औरतें सोने, गिलहट के गहने का बोझा संभाले रहती हैं।

मचिया पर बैठते ही चौधरी ने एक नज़र वहाँ मौजूद लोगों पर डाली। फिर उन्होंने कहा : तो सभी लोग यहाँ पर मौजूद हैं, हम लोगों को कोई हाथ-पर-हाथ धरे देखते नहीं रहना है। इस साल की भदई फ़सल तो सारी-की-सारी मारी ही गई और अगर हम लोग कुछ ठोस क़दम नहीं उठायेंगे, तो इन नान्हों के मनसूबे और भी बढ़ते जायेंगे।

चौधरी की बात सुनकर गजराजसिंह जैसे खुशी में उछल पड़े। जैसे यह बात सवा-सोलह आने उन्हीं के मन की हो। चौधरी की बातों को उन्होने ऊपर-ही-ऊपर रोक लिया और कहा : यही मैं इन लोगों से कह रहा था कि सीधी उँगली से घी नहीं निकल सकता। मार के आगे भूत भागता है। बस सौ मर्ज़ों की एक यही दवा है, जहाँ घेर कर हर एक को दो लाटी पड़ी नहीं कि उनकी सारी अकल ठिकाने लग जायेगी। बाहर के लोगों के बहकाने से आज वे बड़े शेर बने हुए हैं। वह करमू और वह मुसल्ला रशीद बड़ा तीस-मारखाँ का नाती

बना फिरता है, इन्हीं शैतानों के भड़काने से वे इतने सरहंग हो गये हैं। दो-लाठी उनके भी जड़ दी जायें तो उनका दिमाग ठिकाने लगने में देर नहीं लगेगी, पर हमारी बात कोई सुने तब तो।

चौधरी : बात तो आप उचित ही कह रहे हैं। हम तो चिरौरी भिन्नत को नहीं जानते। हम तो बस यही जानते हैं कि हमें जो कुछ करना-कराना होगा, वह अपनी लाठी के बल से ही करायेंगे। आप लोग तो देखते ही हैं कि कोई रंज रहे, या खुशी, हम किसी की बाल बराबर भी परवाह नहीं करते। बस मोटी बात यही जानते हैं कि 'सब गुन बसै लउर के हर' सो हम अपनी लाठी के कुन्दे का ही भरोसा करते हैं।

चौधरी के कथन में जो निहित दम था, उससे गजराजसिंह तिलमिला उठे। उन्हें लगा कि जैसे हम लोगों के पुराने बैर-विरोध की यह याद दिला रहा है। पर उन्होंने कहा कुछ नहीं, क्यों कि इस समय किसी दूसरी बात पर वे विवाद नहीं बढ़ाना चाहते थे। चौधरी की यह हेकड़ी, मुन्शी रामशरन और रामलखन तिवारी को भी भली नहीं मालूम हुई अन्य जो लोग थे, वे भी मन-ही-मन नाखुश हुए। अभी-अभी थोड़ी देर पहिले गजराजसिंह भी यही सोच रहे थे, किन्तु उनकी हेंकड़ी को ये लोग स्वाभाविक मानते थे। आख़िर क्षत्री के घर में जनम लेकर बकरी की तरह में तो करेगा नहीं। परन्तु चौधरी खुशहालसिंह की बात दूसरी थी। वे जाति के अहीर थे और बातें इतनी बढ़-बढ़ कर रहे थे जैसे जनम के कोई प्रतापी राजा के घर में जनम लिया हो; पर इस समय कोई भी उनसे बहस नहीं करना चाहता था, क्योंकि सभी जानते थे कि इस झगड़े में चौधरी की मदद का बहुत बड़ा मूल्य है। अवसर ऐसा आ गया है कि उसका स्वार्थ और हम लोगों का स्वार्थ एक हो गया है। बात का रुख दूसरी ओर बदलने की ग़रज़ से रामलखन तिवारी ने कहा : लाला जी, आप कोई क़ानूनी पेंच नहीं निकाल सकते क्या, इन सालों को मज़ा चखाने का।

फिर जैसे कुछ अपने आप ही सोचकर कहा : पर यह जो समस्या है, वह तो हल होगी नहीं। खेत कौन जोतेगा, अनाज कौन बोयेगा, सिंचाई-निराई कौन करेगा। हम लोगों के साथ एक कठिनाई यह भी तो है कि हम लोग हल की मुठिया कैसे थामेंगे। जिस दिन हल की मुठिया हम बड़ी जाति वाले अपने हाथ में थामेंगे, उस दिन हमारे धरम का क्षय हो जायेगा। कम-से-कम इतना तो ख्याल हम लोगों को रखना ही है।

मुन्शी रामसरन लाल ने पानी में डूबते आदमी की तरह निराश होकर कहा : इसमें क़ानूनी पेंच की कौनसी बात निकाली जा सकती है। क़ागज़-पत्रों का कोई मामला रहा होता, तो हम वह अक़ल निकाल देते कि जो बड़े-बड़े हाक़िमों और वकील-बालिस्टरों के लाख सर मारने पर भी पकड़ में नहीं आती। पर इसमें क्या क़ानूनी अक़ल भिड़ाई जाये। खेती-बारी तो क़ानूनी अकल से होगी नहीं। इसके लिए तो बेनिहार काम करेंगे, तभी कुछ होगा। उनको काम पर ज़बरदस्ती लगाने का कोई तरीका नज़र नहीं आ रहा है, फिर हम कहें तो क्या, समझ में ही नहीं आ रहा है।"

रामलखन को जैसे रामसरन की बातों से और भी निराशा मालूम हुई। उन्होंने कहा : तो कानूनी पेच जाने दो, बाहर से बनिहारों को हम लावें, उनसे काम करायें।

रामसरन : पर इस पर भी हम लोगों को सोच-समझ लेना चाहिए। क्योंकि जैसा उधर का सुराग मिला है, उससे तो यह मालूम होता है कि वे सभी इस बात पर आमादा हैं कि वे बाहर के मजूर-बनिहारों को काम पर लगाने नहीं देंगे। दूसरे बनिहार मजूर तो उन्हीं के जात के हैं। उन लोगों ने चारों ओर जाकर दुहाई दे दी है कि यह हमारे पेट का मामला है। इसलिए जो भाई हमारा पेट मारेगा, उसे हर तरह से सामाजिक दण्ड दिया जायेगा। यह तो आप समझ ही सकते हैं कि उन नान्हों में और किसी बात में एका हो या न हो, परन्तु

बिरादारी के मामले में अपनी पंचायत की बात काटने की हिम्मत किसी में भी नहीं है।

गजराजसिंह को रामसरन की इस बात में कुछ कायरता का बोध हुआ। उन्होंने झल्लाकर कहा : आप भी लाला जी क्या बातें करते हैं ? वही सब, जो कुछ कहेंगे, वही हम लोग मान लेंगे ? हम लोग तो अपनी ताक़त के बल से ही अब अपनी बात मनवायेंगे। वे जनम-जनम के बतखोर हैं। और सीधी बात है कि लात के देवता बात से नहीं मानते।

रामसरन : मैं यह कब कह रहा हूँ कि उन सब के सामने जाकर गिड़गिड़ाया जाये और उनके तलबे सहलाये जायें, या जो कुछ हम करें, उनकी मरजी के मुताबिक करें। बाहर से मज़दूरों को लाने में एक बात यह भी तो है कि पहिले वे अपनी बिरादरी वालों के खिलाफ़ आयेंगे ही नहीं; और दूसरी बात यह है कि सभी जगह खेती-बारी का काम शुरू हो गया है। ऐसी स्थिति में अव्वल मज़दूर मिलेंगे ही नहीं। क्यों कि खेती-बारी में मज़दूरी का काम रोज़-रोज़ तो मिलता नहीं, जब फ़सल का मौसम आता है, तब छोटे-मोटे सब को काम मिल जाता है। फिर किसान और मज़दूर दोनों को ही अपने गाँव के काम से ही फुरसत नहीं मिलती। तो पहिले तो दूसरे गाँवों के मज़दूर, अपने गृहस्थों का काम निपटायेंगे और बाद में फुरसत होने पर हम लोगों का काम करने आयेंगे। इस तरह से खेती होती नहीं।

एक आदमी ने कहा : हमने तो यह भी सुना है कि वे सब कहते हैं कि ऊख हमीं लोगों की जोती-बोई हुई है, पिराई के समय हम लोग उसमें से आधा हिस्सा बँटा लेंगे।

इस बात पर चिढ़ कर एक दूसरे ने कहा : तो यह भी वे सब क्यों नहीं कहते कि यह मकान वगैरह भी उन्हीं के हाथों के बनाये हैं, मिट्टी उन्होंने खोदी है, दीवाल का रद्दा उन्होंने दिया है, खपड़ा उन्होंने तैयार किया है, लोहे-लक्कड़ का काम उन्होंने किया है, लिपाई-पुताई

उन्होंने की है, फिर आकर इन मकानों पर भी क्यों नहीं कब्ज़ा कर लेते ? या हम लोगों को गाँव से बाहर निकाल दें।

उधर मज़दूरों में भी कम बेचैनी नहीं थी। किसानों के घरों में तो खाने-पीने का सामान पहिले का कुछ था भी, पर बनिहारों को रोज़ कुआँ खोदना और रोज़ उसका पानी पीना पड़ता है। अन्य महीनों में उन्हें काम-धाम न भी मिले; पर आसाढ़ के महीने में खेती-बारी का काम शुरू होने पर, एक बार सभी काम पा जाते थे। कोई हल जोतने का, कोई मेंड़ बाँधने का, कोई पानी की बहन ठीक करने का, कोई खेत में निराई करने का और इसी तरह के दूसरे कामों पर लग जाते थे। औरतें और बच्चे भी काम पा जाते थे। औरतें खेतों में धान रोपती थीं, सोहनी करती थीं। बच्चे किसानों की गाय-भैंसों को चराने का काम पा जाते थे। इस तरह घर का हर एक प्राणी सेर-आध-सेर अनाज कमा लाता और कम-से-कम महीने भर उनके दिन सुख से कटते थे। एक समय दाना-दूनी और एक समय रोटी नमक तो मिल ही जाता था। इसी तरह कुम्हारों को खपरैलों और बर्तन वगैर का अनाज मिल जाता था। लुहारों को, धोबियों को, नाई आदि सब को इसी तरह काम मिल जाता था और कुछ तो उन्हें उसी समय अनाज मिल जाता था और कुछ की फ़सल कटने पर उम्मेद रहती थी। यह आशा भी कम मधुर और सुखदायी नहीं होती थी। पर अब तो सब तरफ़ से सूना था।

इन सब बातों के बावजूद उनके मन में निराशा नहीं थी : बल्कि एक दृढ़ता थी। अभी ही क्या सुख था, जो अब छिन जायेगा। पहिले तो कुत्ते की तरह से वे लोग बरताव-व्यवहार करते थे। बिना गाली के तो बात निकालना जैसे उन लोगों ने सीखा ही नहीं था। रे, तू, थुक्का-फ़जीहत, सब लगा ही रहता था। अब कम-से-कम उन लोगों को यह तो महसूस हो रहा है कि इस तरह से किसी को सदा झुका कर नहीं रखा जा सकता है। अब कम-से-कम यह बात उनके

दिमाग में तो नहीं रह गई। अब कम से कम वे समझ रहे हैं कि खेती-बारी केवल उन्हीं के दम के बल पर नहीं थी। अब खेत बिना जोते ही पड़े हैं। कहीं एक दाना भी बीज खेत में नहीं पड़ा और जिस-तिस ने बोया भी तो वह दस बीघे में एक बीघा छेंक आया, सो इस तरह लल्लो-पत्ती से कहीं खेती होती है? जिसमें बाह्मन, ठाकुर, कायस्थ अपने हाथ से हल की मूँठ छएँगे नहीं। उनका धरम जाता है। वे तो बस हम लोगों की मेहनत के बल से चैन उड़ाते थे और खुशहाली की जिन्दगी बिताते थे। अब क्यों नहीं घर अनाज से भर लेते! खेत तो अब भी उनके पास हैं ही।

खाने पहिनने की तकलीफ़ मज़दूरों की और भी बढ़ गई थी। दाने-दाने के लिए लोग तरस रहे थे, परन्तु दृढ़ता हाथ से नहीं छोड़ते थे। मरदों और स्त्रियों के साथ बच्चों के मन में भी एक भावना काम कर रही थी कि उनके माँ-बाप, हमारा जीवन सुधारने के लिए लड़ाई लड़ रहे हैं!

बच्चे भूख लगने पर ताल से उखाड़ कर गट्टे खाते, मोथे को खोद कर उसकी जड़े खाते, आम और ताड़ की गुठलियों की गिरी निकाल कर खाते और कभी-कभी हरी दूब की फुनगियाँ। किन्तु पहिले की तरह अपने माँ-बाप से खाने के लिए जिद नहीं करते थे। उनके मन में जैसे यह बात जमी हो कि हमें इस समय धीरज के साथ काम लेना है, जिद करके अपने घर वालों को परेशान नहीं करना है।

: २४ :

हलके के थानेदार से सलाह-मशवरा कर लेने के बाद रामलखन, रामसरन, गजराजसिंह, खुशहालसिंह वगैरह ने तय कर लिया कि जब तक इन बनिहारों और कमकरों के सरगनाओं को सही रास्ते पर नहीं लाया जाता, तब तक काम ठीक-ठीक ढंग से नहीं चल पायेगा। थानेदार ने तो स्पष्ट शब्दों में बता दिया कि आप लोग जब तक कड़े नहीं पड़ेंगे, तब तक ये नान्ह क़ौम वाले ठीक नहीं होंगे। यह बात इन लोगों

के मन में पहिले से ही थी, उनका भी यह निश्चित मत था कि 'बड़-बतियाये, नान्ह बतियाये' बस जब तक उन्हें दो लात नहीं लगती, तब तक उनका कलेवा नहीं होता। अब थानेदार से बातें हो जाने पर उनके मन से पुलिस की ओर से खटका दूर हो गया। पुलिस का जो कुछ नजराना-तलवाना था, जो कुछ उसकी अग्रिम पूजा-दक्षिणा थी, वह उन लोगों ने दी और आगे के लिए काम हो जाने पर खुश कर देने का वायदा किया। थानेदार ने उन्हें साफ़ शब्दों में बतलाया कि उनमें से हर आदमी तो अपने दिमाग से कुछ सोचता-समझता नहीं, वे तो जैसे पहिले भेड़ थे, तैसे अब भी हैं। उनमें जो दो-चार अपने को होशियार समझते हैं, उन्हीं की यह करामत है, नहीं तो जमाना गुज़र गया, लात-जूता क्या ये आज नया ही खा रहे हैं? इनके सात-पुश्त तो हम लोगों की जूतियाँ सीधी करते-करते गुज़र गये। आज उन्होंने जो सर उठाया है, उसमें कुछ तो ऐसे लोग हैं, जिन्होंने अभी जमाने की ठोकर नहीं खाई; जिनका अभी खून गर्म है और जिससे दिमाग़ आसमान पर चढ़ा हुआ है। जिस दिन ये लोग फन्दे में फँस जायेंगे, उसी दिन इनके होश ठिकाने आ जायेंगे। साथ ही कुछ लोग ऐसे हैं, जो कम्युनिष्ट हैं और वे अपना यह पेशा ही समझते हैं, कि दूसरों के फटे में लात डालें। उनका यही काम रहा है कि सदा गद्दारी करो और इसी बल पर वे पनपते रहे हैं।

साथ ही उन्होंने यह भी कहा : कि जब तक ये चुपचाप हैं, कोई खुला उपद्रव नहीं करते हैं, तब तक इनको थाने की ओर से तंग करना ज़रा कठिन है। वैसे उन्होंने यह ज़रूर कहा कि हम ऐसे-वैसे थानेदार नहीं हैं। थानेदारी करते बीस वर्ष हो चुके हैं और अपने इस ज़माने में एक-से-एक सरहंग लोगों को ठीक-ठिकाने लगा दिया है। अंग्रेज़ सरकार के ज़माने में क्या मजाल थी कि कोई गान्धी-टोपी वाला ज़रा चूं-चपड़ तो कर दे। जो सज़ा चोर की नहीं होती थी, वह सज़ा गान्धी टोपी वालों की हम कर के रख देते थे। पर अब ज़माना बदल गया।

राज गान्धी टोपी वालों का हो गया, पर वे भी शासन करने में और खास-कर पुलिस के क़ायदे-कानून की पाबन्दी कराने में अपने पुराने मालिकों से एक अंगुल भी कम नहीं हैं। अंग्रेज़ सरकार के समय तो कभी-कभी अफ़सर लोग अपने विरोधियों को दबाने-कुचलने में तरह भी दे जाते थे, कभी-कभी तो हमें अफ़सरों के हुक्म से कुछ झुक जाना पड़ता था, मन में बड़ी झुँझलाहट होती थी कि क्यों इस तरह से डर-डर कर क़दम उठाते हैं। यह नहीं कि लगाकर मशीनगन सब को भून कर रख दे। पर अब तो ज़रा सा भी शोशा मिलता है, अपनी कर दिखाता हूँ। ऊपर के आफ़ीसरों की सख्त हिदायत है कि कांगरेसी लोगों के खिलाफ़ जितने लोग हों, उनको पूरी मुस्तैदी से दबा दो। उन्होंने खास तौर पर कम्युनिष्टों से सावधान रहने की हिदायत की है। अब थानेदारी करने मे मज़ा आता है। जब पूरी तरह अपनी ताक़त आज़माने का मौक़ा न मिले तो फिर थानेदारी क्या, फिर तो वह स्कूल की मास्टरी हो गई। अब इस राज में काम करने में अपने मन की हविस पूरी हुई हैं और हाँ, एक बात और भी है। अगर काम जी-जान लड़ाकर करो और बस वही सूखी-साखी महीने में बँधी-बँधाई तनख्वाह की रुपल्लियाँ मिल गईं तो जी में उल्लास नही रहता। हर वक्त मन में यह उदासी छाई रहती है, कि लाख जान लड़ा दो पर मिलेगा वही। 'दीया भर का दिया भर।' किन्तु जब नौकरी के अलावा तरी-भरी मिलती रहती है, तब मन में उल्लास रहता है। वैसे तनख्वाह के मिलते ही क्या हैं, सौ-पचास रुपयों में क्या होता-हवाता है। आजकल के ज़माने में इतने में घर-भर के कपड़े-लत्ते का भी काम नहीं चल सकता, फिर और भी खर्च-वर्च हैं। कोई मुँह बाँधकर काम तो करेगा नहीं और न भिखमंगे की तरह फटेहाली में दिन गुज़ार सकता है। पर नहीं, अब यह बात नहीं रह गई है। भगवान् की दया से हालत में कुछ सुधार ज़रूर हुआ है। हाँ पहिले-पहिल तो हम लोगों को यह भय ज़रूर लगा था कि ये सफ़ेद टोपी वाले गद्दी पर आये तो सब कमाई-धमाई लीप-पोत कर साफ़ कर देंगे। मैं

तो क्या, सभी सरकारी अमले-मुख्त्यार डर गये थे कि ऐसा न हो कि ये कांग्रेसी गद्दी पर बैठते ही हर तरफ़ से खुचर निकालने लगे ? और उसी भय से चार-छः महीना तो किसी ने एक पाई भी नहीं छुई। किन्तु हम लोगों का वह ख्याल ग़लत निकला और फिर वह कमाई का रास्ता निकाला कि पिछली कसर पूरी हो गई; बल्कि हम तो यही कहेंगे कि अँग्रेज़ी राज में थानेदारी करने से जी नहीं भरा था, वह मन की मानता अब जाकर पूरी हुई है, कांगरेसी राज में आकर हाथ में भी दो पैसे हो गये।

इतनी बातें घुमा-फिराकर कहने के बाद थानेदार ने अपने हक़ की बात उठाई थी और उन लोगों ने यथा-शक्ति कुछ दिया था और भविष्य का वादा अलग किया। यह भी उन लोगों ने कहा कि अगर दस-पाँच सरफिरों और मगरूरों की साल छः माह की सज़ा हो जाये तो फिर हम भी आपको नहीं भूलेंगे। वैसे आप तो इलाके के राजा हैं, भला राजा का विरोध करके या उसका टैक्स न देकर कोई कैसे रह सकेगा। भला कहीं ऐसा भी हुआ है कि जल में रहे और मगर से बैर करे। इसलिए अगर हम लोगों के मन की बात हो गई, तो हम आपको ज़रूर खुश कर देंगे।

थानेदार ने इन बातों को सुनकर अपनी ओर से अभय दान दे दिया था। उन्होंने साफ़ शब्दों में कह दिया था कि मेरी ओर से आप लोग निश्चिन्त रहें, खूब दिल खोलकर उन लोगों की मरम्मत कर दीजिये आप लोग, वे सब लाख सर मारेंगे, हम किसी भी तरह फ़ौजदारी का केस बनने ही नहीं देंगे। उलटे अगर आप लोगों ने चाहा और खरच-वरच का माकूल इन्तज़ाम किया तो, डांके का वह केस तैयार करूँगा कि हर एक बेटा कम-से-कम पाँच-पाँच साल तो बड़े घर की हवा खायेगा ही और फिर आकर चाहे ठाकुर, ब्राह्मण बने, या साक्षात ईश्वर का औतार बन जाये। किन्तु इस बीच में तो इन हरामज़ादों की हुलिया हम तंग कर ही देंगे।

थानेदार के इस कथन में जो अर्थ-गाम्भीर्य था, उसे सभी ने हृदयंगम किया। लाला रामसरन ने हाथ जोड़ कर बड़े विनीत भाव से कहा : हम लोग आप से कभी बाहर नहीं रहेंगे, जो आप कहेंगे, वह सर के बल करने के लिए हम लोग सदा तैयार रहेंगे। हम लोग जानते हैं कि हाकिम-हुक्कामों से किस तरह पेश आना चाहिए।

रामसरन की बात सुनकर थानेदार ने ज़रा-सा मुसकरा दिया था और फिर जैसे बतरस का आनन्द लेने के लिए मुसकराते हुए ही पूछा : क्यों लाला, तुम्हारा क्या ख्याल है ? पहिले ज़माने से इस ज़माने में ज्यादा बरक्कत है न तुमको ? देखो, छिपाना मत, हमसे कुछ छिपा नहीं है।

और तब जैसे अपना रुआब ज़माने की गरज़ से कहा : इतना बड़ा हमारा इलाका है, किन्तु राई-रत्ती तक का पता रखता हूँ, जब चाहे कोई पूछ ले, हर खबर हमारे कानों में आती है, आखिर तभी तो इस इलाके में जमा हूँ। नहीं इतने थानेदार आये, साल छः महीने में बदनाम होकर चले गये। बस गुनाह बे मतलब हुआ उनका। पर हमसे पार पाना किसी को आसान नहीं है। अफ़सर लोग भी समझते हैं कि हम ऐसे-वैसे नहीं हैं।

लाला रामसरन ने और भी नम्र बन कर कहा : आपसे क्या छिपा सकता है ?

फिर ज़रा मुसकराकर कहा : आप दुरुस्त फ़रमा रहे हैं। आपकी बात काटने की मेरी ताब नहीं है।

थानेदार का मूड उस दिन ज्यादा अच्छा था। सवेरे-सवेरे दक्षिणा हाथ लगी थी और भविष्य की आशा अलग बँधी थी, इसलिए मौज में थे ; उन्होंने फिर हँसकर कहा : गजराज, तुम तो छत्री हो न ? कौन क्षत्री ? शायद तुम्हारे गाँव के लोग चौहान हैं और फिर तुम लोगों से इतना भी नहीं होता कि अपने यहाँ के नान्हों को दबा कर रख सको। कैसे ठाकुर हो तुम लोग ? हमारे यहाँ गाँव में जितने नान्ह हैं,

सब थर-थर काँपते रहते हैं और हमारा छोटा भाई तो इतना सैलानी है कि जब तक रोज दो नान्हों को लतिया नहीं लेता. तब तक जैसे उसे चैन ही नहीं पड़ता।'

थानेदार के यहाँ से आने के बाद इन लोगों ने अपना पक्का इरादा कर लिया कि किसी दिन मौका देखकर उन सबों के होश ठिकाने लगा दिये जायें। दो-चार सर फूट जायें, तब रास्ते पर आ जायेंगे।

: २५ :

ग्रामीण ज़िन्दगी की छाया से दूर, आधुनिक सुख-सुविधा-सम्पन्न नगरों के सुसज्जित कक्षों में, नर्म कुर्सियों पर बैठकर कोरी कल्पना के सहारे, गाँवों का खाका खीचने वाले लेखकों और कवियों ने दादी की कहानियों में वर्णित परी-लोक से भी अधिक और मोहक-रूप में गाँवों को ला खड़ा किया है। उनकी नज़रों में गाँव के लोग प्रकृति के राज-कुमार हैं। 'सीधे-सादे', 'भोले-भाले' और न जाने क्या-क्या विशेषण दे डालते हैं। थोड़े में निर्वाह यहाँ है, नुसख़ा पेश करके लोगों को भुलावे में रखते हैं। उनके अनुसार ग्राम-वासियों का स्वागत करने के लिए, प्रातःकाल ऊषा अपना सुनहरा पट उनके माथे पर बाँध कर उनका शृङ्गार करती है। 'खग-कुल', 'कुल-कुल' से उनका यशोगान करते हैं। मलयानिल उनको चंवर डुलाती हैं, सूरज, चन्द्रमा, और तारे उनके घरों में प्रकाश फैलाते हैं, बादल उनके ऊपर अमृत-जल डालते हैं। सारी प्रकृति उनकी दासी के रूप में उनके समक्ष हर वक्त सेवा के लिए प्रस्तुत रहती है। किन्तु गणित के फार्मूले से कोई समस्या हल कर देने से उसका वास्तविक हल नहीं हो सकता। अगर यही बात रही होती, तब तो आज हमारे गाँव कभी के 'स्वर्ग' बन गये होते। उसके निवासी कभी से देव-दुर्लभ सुख-सुविधाओं का उपभोग करते रहते। किन्तु कल्पना कल्पना है; वास्तविकता से उसका मेल नहीं हो सकता।

गाँवों का सही ख़ाका आपने देखा है? किसी ग्रामीण की वास्त-

विक तस्वीर क्या आपके हृदय में उतरी है ? अभावों में उत्पन्न पेट की मार से विपन्न, अशिक्षा के अन्धकार में डूबे हुए जीवन-यापन की सुविधाओं से सर्वथा वंचित और सदियों से शोषित और शापित। विरही यज्ञ की तरह उसे केवल एक साल का निष्वासन नहीं मिला है; और न अयोध्या के राजकुमार राम की तरह उन्हें चौदह वर्ष का ही कि उनके पुनः वापस आने पर अयोध्या में दीपावली जगमगा उठी थी। सारा राजकीय साधन उनकी अगवानी में पलक पाँवड़े बिछाये था। नहीं, यहाँ के बाशिन्दे सदियों से शोषित-शापित हैं, सदियों से निष्कासित, निराश्रित हैं, सदियों से उनका जीवन कुचला जाता रहा है। पौराणिक राम-राज्य से भी उनका 'दैहिक', 'भौतिक' ताप नहीं मिट सका था। उस समय भी शम्बूक बध होता ही रहा। गुप्त सम्राटों का का स्वर्ण-काल, शायद शहरों तक ही सीमित था और वह ग्रामीणों के खून की चमक के ही बल पर। मध्यम-युगीन काल में जेहाद से ही फ़ुरसत नहीं मिली और मुग़लों का स्वर्ण-काल भी कुशगात-ललात जे रोटिन के' वालों की ही भूमिका तैयार कर सका। अँग्रेज़ी-शासन को यहाँ के 'नेटिवों' की सुख-सुविधाओं की ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं आ पाया और अब आधुनिक 'राम-राज्य' में ? कागजी योजनाओं का आवरण डालकर, पौराणिक चित्रगुप्त के पेशेवर आधुनिक वंशजों की सहायता से उन्हें सब-सुविधायें पहुँचा दी गई हैं।

ऐसी स्थिति में गाँवों में कलह और लड़ाई-झगड़े के लिए खोजने के लिए बहाने की ज़रूरत नहीं। किसी भी समय और किसी भी क्षण इसकी भूमिका तैयार की जा सकती है और फिर उस जगह कितनी देर लगती है; जहाँ पर इसकी योजना बन चुकी हो, जहाँ पर लोग पहिले से ही आमादा हों ? जहाँ पर शासन करने वाले इस काम में एक बड़े वर्ग को पूरी मदद देने के लिए तैयार हो चुके हों।

मुन्शी रामसरन, रामलखन, गजराजसिंह और चौधरी खुशहालसिंह वगैरह ने थानेदार को झगड़े के दिन पहिले ही सूचित कर दिया था।

इस काम में चौधरी और गजराजसिंह बड़े उल्लास से भाग ले रहे थे। पहिले भी इन लोगों का लाठी के भरोसे ही काम चलता था। रामलखन तिवारी भी यद्यपि शरीर के हट्टे-कट्टे थे, पर उनकी धाक मुख्यतया इसलिए थी कि वे गाँव के सरपंच थे और गाँव के लिहाज से, रुपये-पैसे से सम्पन्न थे। उनकी इज्ज़त, उनकी बैठकाना-नीति के कारण ज्यादा थी। मुन्शी रामसरन का भी करीब-करीब यही हाल था। उनसे लोग इसलिए डरते थे कि एक तो सरकारी मुलाज़िम, दूसरे काग़ज़-पत्रों का काम करने वाले। लोगों में यह बद्धमूल धारणा थी कि लाला रामसरन जब चाहें, तब किसी को भी किसी-न-किसी कानूनी दाव-पेच में उलझा कर, बरसों अदालत के दरवाज़े पर नाक रगड़वा सकते हैं। मुकदमे खड़े करवा देना उनके बांये हाथ का काम है और इसलिए लोगों के दिल में उनसे आतंक छाया हुआ था। किन्तु गजराजसिंह और खासकर चौधरी खुशहालसिंह अपनी लाठी के कारण ही लोगों में माने-जाने जाते थे। जब चौधरी ने एक बार अपने यहाँ लाठी की पूजा की थी, तब दस गाँवों के लठैत इकट्ठे हुए थे। लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि पूजा के समय कई गाड़ी-लाठियाँ एकत्रित हो गई थी। सो उनका लोगों में आतंक हर वक्त छाया रहता था।

गाँव के इस झगड़े में बनिहारों और कमकरों तथा उसी स्थिति के आदमी और खाते-पीते गृहस्थ, जिनके पास ज़मीन थी, उनसे जब से झगड़ा शुरू हुआ था, चौधरी बड़ी जातियों के साथ आ गये थे। इसका एक कारण तो यह था कि वे खाते-पीते गृहस्थ थे। खेती किसानो का काम करते थे, उनका स्वार्थ बड़ी जातियों के साथ बंधा था। इसके साथ ही दूसरा कारण यह था कि वे अपने को बड़ी जातियों में शुमार करते थे और अगर इस समय बड़ी जाति वालों का साथ नहीं देते हैं, तो उनके मन में एक बात भी थी, कहीं लोगों के मन में यह न आ जाय कि अरे, वह कौन है, बड़ी जात वाले, आखिर नीच-नीच ही रहेगा न। सो इस काम में वह बड़ी जाति वालों के साथ मिलकर काफ़ी दिलचस्पी

ले रहे थे। झगड़े के एक दिन पहिले जब वे लोग इकट्ठे हुए थे तो चौधरी खुशहालसिंह ने बड़े गर्व से कहा : 'मेरी तरफ़ से तो सब इन्तज़ाम ठीक है। इन लोगों में आख़िर दम ही कितना है। एक-दो का सर फूटेगा और जान लेकर सब भाग खड़े होंगे। इसलिए मैंने आदमी इकट्ठा करने पर ज्यादा ज़ोर नहीं दिया। दस-बीस के लिए तो अकेला मैं ही काफ़ी हूँ।'

गजराजसिंह ने कहा : ये तो सब जनम के लतखोर रहे हैं। यही साल भर से उन्हें पंख निकले हैं। अभी सब नशा ठन्डा हुआ जाता है।

चौधरी खुशहालसिंह : मेरे मन में आता है कि एक एक को रगेद-रगेद कर मारें और सब सालों की मढ़इयों में आग लगा दें। सारी चमटोल में बम बुला दें और भी जो उन सबों के साथ लल्लू-बुद्धू हैं, उनको भी एक अच्छा सबक सिखा दें।

मुन्शी रामसरन ने कुछ आतंतिक होकर कहा : एक बात का हम लोगों को ख्याल रखना है। हम लोगों को बस इतना ही करना है; जिसमें हम लोग क़ानूनी कार्यवाही में न फँस सकें। सीधी बात है, अगर मामला दबने लायक होगा, तभी तो थानेदार साहब दबा सकेंगे। उन्होंने तो उस दिन साफ़ कह दिया था कि बस उनमें एक आतंक पैदा कर दो। बहुत हो, दो-चार हाथ लगा देना। पर हाँ, इसका ध्यान रहे कि कोई जान न जाने पावे; नहीं तो बात हमारे हाथ से निकल जायेगी। सो मैं आप सभी लोगों का ध्यान इस बात की ओर खींचना चाहता हूँ कि मामला तूल न पकड़ने पावे।

यह बात गजराजसिंह को अच्छी नहीं लगी, उन्होंने कुछ झुंझलाकर कहा : लाला जी आप तो हर बात में डरते रहते हैं। यह आपका नहीं आपकी जाति का दोष है, सारा क़ानून आप लोगों के दिमाग़ में रहता है, पर जहाँ-कहीं लाठी का नाम सुना नहीं कि.....।

गजराजसिंह की बात को बीच में ही काटकर मुन्शी रामसरन लाल

ने कुछ गुस्से से कहा : अकल की बात तो आपके दिमाग में आती ही नहीं। सदा लाठी और बन्दूक ही कन्धे पर ढोने का काम किया है छत्री लोगों ने। मै कहता हूँ कि इस तरह से वे लोग परेशान तो होंगे ही; हम लोग भी खतरे मे पड़ जायेंगे।

रामलखन तिबारी ने समझौते के ढंग पर कहा : भाई, इस समय हम लोगों को बस यही करना है कि साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे। अपनी नाक कटाकर हम लोगों को दूसरे का शकुन नही बिगाड़ना है। हम तब तो तारीफ समझते है कि वे सब सबक भी सीख जाये और हम लोगों का कुछ नुकसान भी न हो।

दूसरे दिन और आदमी पीछे छिपे रहे और चौधरी खुशहालसिह तथा गजराजसिह डोमन भगत की मूँढ़ई पर पहुँच गये। और भी कई लोग वहाँ बैठे थे, उनके चेहरो मे यह प्रकट हो रहा था कि जैसे उन्हें भी इस झगड़े की कुछ भनक पड गई हो।

गजराजसिह ने कुछ दूर खडे होकर कहा : क्यों भगत, तुम लोगों का अब काम करने का मन है, या नहीं ?

डोमन भगत मूढे पर बैठे हुए थे। आदर या सम्मान देने के लिए वे आज खड़े नही हुए। बैठे-बैठे ही उन्होने कहा : ठाकुर, हम लोग तो बनिहार हैं, बनिहार। काम करने के लिए तो हम लोग सोलहों घड़ी तैयार है। पर पेट भरने के लिए भी मिलना चाहिए।

गजराजसिह ने कुछ तुनक कर कहा : तो अभी तक तुम लोग मुँह बाध कर काम कर रहे थे। बनी-मजूरी नही लेते थे, तो क्या सेतमेत में काम कर देते थे ?

चौधरी खुशहालसिह ने बीच में ही टोकते हुए व्यंग-पूर्वक कहा : नही, अब इस बनी-मजूरी मे इन सब का काम नही चलेगा। इन्हे तो बस अब जोत-बो कर फ़सल काटकर हम लोग इनके घर पहुँचा देंगे, तब ये सब हम लोगों का काम करेंगे। क्यों रे, है न ठीक ?

दुरजन गड़रिया वहाँ पास ही बैठा चिलम पी रहा था। नाटा-गट्टा,

आदमी, काला रंग, छोटे-छोटे हाथ-पाँव पर ठोस जैसे कोल्हू की लाट हो। चौधरी की बातों में जो ताना था, उससे झल्लाकर कहा: चौधरी, तुम हर वक्त जैसे लाठी के बल से ही बात करना चाहते हो। बहुत दिन तक मुँह बाँध कर हम लोगों ने काम किया। अब अदल काम और अदल दाम।

चौधरी के माथे पर बल पड़ गये, उनकी त्यौरियाँ चढ़ गईं। आँखें कुछ लाल होकर जैसे बाहर निकल आईं, जैसे क्रोधित होने पर साँड की आँखें भयावनी हो जाती हैं। गरज कर बोले, अबे गड़रिये की जात, लात खाते-खाते चूतड़ों पर पट्टे पड़ गये होंगे और फिर भी इतनी बहक-बहक कर बातें कर रहा है। भूल गया किससे बातें कर रहा है?

चौधरी की बातों का दुरजन कुछ जवाब दे, उसके पहिले ही गजराजसिंह ने ललकार कर कहा: लगा साले को एक लाठी, बड़ा लाट साहब का नाती बनता है।

दुरजन ने सतर्क होते हुए कहा: बहुत दिन तुम लोगों ने अपनी हेंकड़ी चला ली। अब यह ठकुरैती नहीं चलने की।

यह बात गजराजसिंह को लक्ष्य करके कही थी। दुरजन की इस बात से जैसे उन्हें अपनी रजपूती पर बट्टा लगता नज़र आया। अपना सन्तुलन जैसे वे सम्हाल नहीं पाये और गरज कर कहा: तो ले देख अब कि ठकुरैती कैसी होती है।

यह कह कर उन्होंने दुरजन के सारे सर को लक्ष्य कर के सीधी लाठी चला दी।

दुरजन असावधान था। गजराजसिंह की लाठी का पहिला वार उसने रोक लिया। अपने सर का बचाव करते हुए, उसने अपनी लाठी को ज़रा सा तिरछा कर दिया। वह गजराजसिंह की लाठी पर टकराई। वह एक झन्नाहट के साथ ठिरकती हुई जमीन पर आ पड़ी। उसकी झनक से गजराजसिंह का हाथ झनझना उठा।

दुरजन ने अपनी लाठी सम्भाल कर गजराजसिंह पर वार करना चाहा था, कि उसके सर पर चौधरी खुशालसिंह की लाठी का पूरा दुहत्था हाथ पड़ा ? और जैसे सूखे नारियल के ऊपर घन की चोट पड़े, तड़ाक की एक आवाज़ हुई। दुरजन का सर फूट गया, खून का एक फव्वारा छूटने लगा।

तब तक दोनों ओर के आदमी एकत्रित हो गये थे। गजराजसिंह और चौधरी खुशहाल की ओर मदद करने वाले आदमी पचासों थे और इधर डोमन की ओर भी कम-से-कम बीसों आदमी थे। आधे घन्टे तक जैसे जन्मत साँड़, दल बाँध कर एक दूसरे पर टूटते हों, बार करते हों। उनकी प्रतिहिन्सा और बदले की भावना इतनी प्रबल हो जाती है कि उन्हें कुछ दिखलाई नहीं देता। जैसे उनका धर्म मरना और मारना ही हो, जैसे इस जिन्दगी की सारी उपयोगिता एक दूसरे का संहार करने में ही हो। उसी तरह दोनों ओर के आदमी एक दूसरे पर टूटे हुए थे।

किसकी ओर से कौन-कौन घायल हो रहा है, कौन किस पर वार कर रहा है, इसका जैसे किसी को भान न हो। जैसे यह देखने-सुनने का अवसर खतम हो गया हो। बस एक दूसरे के अस्तित्व को आज मिटा देने का संकल्प कर लिया हो।

किन्तु इसमें कोई शक नहीं कि बनिहारों और उनके सहायकों की संख्या अपेक्षाकृत कम थी। वे लोग कमज़ोर पड़ रहे थे, किन्तु अपनी संख्या और शक्ति की कमी की तरफ़ उनका ध्यान नहीं था, जैसे इतने दिनों का शोषण-पीड़न, इतने दिनों की जहालत, इतने दिनों की अवहेलना और तिरस्कार, इतने दिनों की उनकी दीनता एक साथ ग़ायब होगई हो और आज अपने हक़ की रक्षा के लिए अपने प्राणों का होम करने के लिए आमरण कटिबद्ध हो गये हों।

: २६ :

किसी भयानक तूफ़ान के बाद जैसे चारों ओर संहार और सर्वनाश के चिन्ह दिखाई देने लगते हैं, कहीं टूटी हुई डालें, जड़मूल से उखड़े

बड़े-बड़े पेड़, छिन्न-भिन्न पत्तियाँ, फूल बिखरे हुए, तिनके गिरे। मकानों की छाजन इधर-उधर बिखरी फैली। चारों ओर एक अस्तव्यस्तता के भयंकर नाश की भूमिका दिखाई पड़ती है। वही दशा रामपुर गाँव की हो गई थी। उस दिन की दुर्घटना में जैसा कि बड़ी जात के लोगों ने सोचा था, केवल मज़दूरों और कमकरों के धमकाने, या हलकी ठोक-पीट तक ही सीमित नहीं रह गई। एक बार नदी का बाँध टूट जाने के बाद उसका पानी नालियों और क्यारियों में व्यवस्थित रूप में नहीं ले जाया जा सकता। वह तो प्रलयकार मचाता हुआ, किनारे के वृक्षों और बनस्पतियों को जड़मूल से अपने प्रबल-प्रवाह में बहाता हुआ, दुर्द्धर्ष शक्ति से आगे बढ़ता है। फिर उसकी गति को सीमित कर लेना, सहज नहीं रह जाता। इसी तरह की दुर्घटना उस दिन घटी।

थानेदार की सलाह के अनुसार रामलखन, रामसरन आदि ने यही करने का इरादा किया था, कि दो-चार को एक-दो लाठी लगा देंगे। हलकी मारपीट हो जायेगी और फिर रुपये की चमक से आकर्षित थानेदार अपने वायदे के अनुसार इन सबों को किसी जुर्म में फँसाकर पाँच-सात साल की सज़ा दिला देंगे। साथ ही उन लोगों के मन में एक बात यह भी जमी हुई थी कि ये मज़दूर और कमकर तभी तक शेर बने हुए हैं, जब तक ज़बानी जमा-खर्च चल रहा है। जिस दिन हम दस आदमी लाठी लेकर उनके सामने खड़े हो जायेंगे, उस दिन उनकी अकल ठिकाने लग जायेगी। उन्हें सपने में भी यह गुमान नहीं था कि हम लोगों के मुक़ाबिले में वे डट जायेंगे, क्योंकि इतने दिनों से पुश्त-दर-पुश्त से, वे सामने खड़े होकर बात करने की भी ताब नहीं रखते थे। यह जो दस दिन से इतना बदले हुए हैं,वह करमू रशीद वगैरह के बहकाने की वजह से ही हुआ है। खासकर इस बात का तो उन्हें ज़रा भी अन्दाज़ नहीं था कि हम लोगों के ऊपर लाठियाँ छोड़ेंगे। किन्तु उस दिन की घटना किसी के क़ाबू में नहीं रह पाई। इन लोगों के आक्रमण करने के साथ ही बनिहारों और कमकरों ने जो डटकर मुक़ाबिला किया, तो उसी समय इन लोगों को

पता चल गया कि जितना आसान हम इसे समझे थे, उतना आसान यह नहीं है। उस दुर्घटना में दोनों तरफ़ के दो आदमी तो जान से मारे गये और कितने ही लोग घायल हो गये। गजराजसिंह की एक बाँह टूट गई थी, जो अस्पताल में ठीक हो गई। और भी लोगों को थोड़ी-बहुत चोटें आई थी।

इस मामले को दबा देना थानेदार के बस की बात नही रह गई थी। दोनों ओर से अदालत में मुक़द्दमा चलने लगा। बनिहारों और कमकरों के पास पैसे-रुपये तो पहिले ही नही थे, किन्तु इनके ऊपर इस सामूहिक आक्रमण से आस-पास के गाँवों के बनिहारों और कमकरों में बहुत असन्तोष फैला। उन्होंने अपने इन भाइयों की हर तरह से मदद करने की ठानी। उनके चौथरियों और अगुओं ने जगह-जगह उनका बटोर किया। जिससे जो बन बन पड़े, वह मदद देने के लिए अपील की। किसी ने कुछ रुपये-पैसे, किसी ने कुछ अनाज-पानी, किसी ने और किसी रूप में मदद देने का निश्चय किया और इस बात का पूरी तरह से ख्याल रखा कि रुपये के अभाव में मुकदमे में बनिहारों और कमकरों की हार न होने पावे।

उधर गजराजसिंह, चौधरी खुशहालसिंह, रामसरन वगैरह ने मुकदमे की पूरी देख-भाल की। किन्तु उन लोगों को केवल अपना ही भरोसा था। कचहरी, अदालत करना कुछ हंसी खेल नहीं है। 'नौ की लकड़ी नब्बे खर्च।' आजकल की अदालतें तो मकड़ी के जाले की तरह हैं। जिसमें एक बार अगर कोई फँस गया, तो जैसे मकड़ी के जाले में फँस जाने के बाद मक्खी का निस्तार होना असम्भव है, उसी तरह कचहरी की देहली लाँघ लेने के बाद, जब तक सब पूँजी समाप्त नहीं हो जाती तब तक वहां के देवता और गृह-आसामी का पिंड नहीं छोड़ते। वकील मुख्त्यार, अमला, मुन्शी और प्रायः सभी हाकिम की पूजा करो और फिर कानून की पेंच-में-पेंच निकलती जाती हैं : रबर की गोल गेंद को घमाते-घुमाते थक जाने पर भी उसका अन्त नहीं आता, बस चक्कर

काटती रहती है । वही हालत कचहरी की होती है । फिर तिसमें इन लोगों की तो सरासर ज्यादती थी ।

बनिहारों और कमकरों के अभाव में भी अपनी ताक़त के बल से जो थोड़ी-बहुत खेती लोगों ने शुरू की थी, उसमें समय पर पानी न देने से, देख-भाल न करने से, जो कुछ था, वह भी नहीं हुआ । घर में थोड़ा-बहुत अनाज था, वह भी इस तरह खेत में जाकर खेत में ही रह गये । दिन-रात की दौड़-धूप, या हाकिमों-हुक्कामों की सेवा सिफ़ारिश, भेंट उपहार में परेशानी अलग । तिस पर यह आशा नहीं थी कि मुकदमे में जीत हो ही जायेगी ।

और अन्त में जब एक लम्बे अरसे के बाद मुकदमे का फ़ैसला हुआ तो दोनों ही ओर के आदमियों को सजा हो गई । किसी को छः मास की, तो किसी को साल भर की । इस तरह इतने दिनों की परेशानी और अपना पेट काट कर धन बरबाद करने के बाद जो नतीजा निकला, उसी बड़ी जाति के लोगों को और भी असन्तोष हुआ । उनके मन में बार-बार यह प्रश्न उठ रहा था कि जो अपनी जाति-अभिमान के नशे में हम लोगों ने इतनी बरबादी की, अपना सर्वस्व लुटा, खेती-बारी अलग नष्ट हुई, घर से पाई-पाई चली गयी और अब यह जेल की सज़ा भोग रहे हैं । सो इस विरोध-बैर से हमने क्या हासिल किया । यह तो वही हुआ कि दूसरों को साधने के फेर में हम खुद ही सध गये ।

: २७ :

यद्यपि मुंशी रामसरन और रामलखन तिवारी को सज़ा नहीं हुई थी और चौधरी खुशहालसिंह भी कोशिश-पैरवी से छूट गये थे; किन्तु इस मुकदमे के सिलसिले में रुपये-पैसे तो इन्हीं लोगों को खर्च करने पड़े । थानेदार ने काफ़ी जेब गरम की, इस नाम पर कि वह केस हलका कर देगा । चौधरी खुशहालसिंह पर मुकदमा चला, परन्तु उनके खिलाफ़ मामला उभर नहीं सका था । रोक-थाम के लिए उन्हें और भी ज्यादा खर्च करना पड़ा था, किन्तु गजराजसिंह, रामजगसिंह और

और भी कई पाँच-सात आदमियों को जेल की सज़ा हो गई। ये सभी लोग जब जेल की सज़ा काट कर लौटे तब इन लोगों के मन में दो-चार दिन तो जेल की सजा न पाने वालों के प्रति काफ़ी मलाल रहा। जो लोग यहाँ रह गये थे, उन्होंने तो अपनी खेती-बारी थोड़ी-बहुत चलाई, परन्तु जो नहीं थे, उनके खेत तो जैसे बंजर हो गये हों। कहीं कास-कुश जम गई थी, कहीं राढ़ी उग आई थी, कहीं दूब उग आई थी और कहीं बरसात के पानी से बहाव बन कर नाला सा हो गया था, जो पानी के सूख जाने के पश्चात्, अपने पीछे खपरैल और कंकड़-पत्थर के टुकड़े छोड़ गया था। जिन खेतों में पहिले जैसे स्वर्ग उतरता था, कहीं जौ और गेहूँ के पौधे, अपने सर पर बालों की कलंगी लगाये कहीं ईख और अरहर के पौधे हवा के वेग से हहराते-लहराते रहते थे। किसानों का दिल उल्लास से नाच उठता था। जैसे माँ अपनी बाहों को खोले बच्चे को गोद में लेने के लिए, खड़ी होकर और लपक कर बच्चा गोद में समा जाता हो, उसके अंचल की शीतल हवा के स्पर्श से जैसे वह आनन्द की चरम-अनुभूति प्राप्त करने लगता है। उसी तरह लह-राती खेती के बीच में खड़े होकर किसानों को लगता था। सिवान भरा-पूरा रहता था, जैसे बारात आकर टिकी हो। परन्तु अब चारों ओर सूना-ही सूना था। कहीं-कहीं, जिन खेतों में कुछ था भी, उसकी बढ़बार जैसे मारी गई हो।

दो-चार दिनों तक तो आपस में एक दूसरे से जैसे कतराते हों, परन्तु फिर रामसरन, रामलखन और गजराजसिंह वगैरह का बैठना-उठना साथ-ही-साथ होने लगा, ठीक पहिले की तरह। बीच में जो कुछ दिनों का व्यवधान पड़ गया था, वह दूर हो गया और जैसे फिर वही पुरानी बे-तकल्लुफी और अपनावा उन लोगों में वापिस आ गया। किन्तु तो भी इन लोगों के मन पर एक उदासी छाई हुई थी। भविष्य अन्धकारमय था, खेती-बाड़ी का सिलसिला ठीक नहीं बैठा। दूसरे इस मुकदमे में सभी तबाह हो गये थे। बार-बार उन लोगों के मन में यह

प्रश्न उठता था कि आखिर इस लड़ाई-झगड़े और मुकदमे-बाजी से हम लोगों ने क्या पाया। थानेदार पहिले कितना अपनावा दिखलाता था, कहता था कि इन नान्हों, बनिहारों को दबाने में हम तुम लोगों के साथ पूरी-पूरी तरह से हैं। इसमें हम वही खर्च लेंगे जो हमें हाकिमों को मिलाने के लिए देना पड़ेगा। पर कैसा अन्त तक हम लोगों से रुपया ऐंठता रहा। अपना काम अटका था, मजबूर होकर हम लोग उसके तलवे सहलाते थे।

एक दिन इसी तरह ये बैठे हुए थे, पुरानी बातें उठ पड़ीं। राम-लखन तिवारी ने सुर की पीक, मुँह से थूक कर कहा, "लाला जी, न जाने क्यों, जो गोटी हम लोग चलते हैं, वही हम लोगों के खिलाफ़ चली जाती है। कहाँ तो हम लोग बनिहारों और कमकरों को दबाने चले थे, उन्हें साधने चले थे, पर दिखाई तो यह देता है कि हम लोग खुद तबाह हो गये। जिन बड़े-बड़े लोगों ने मदद का वादा किया था, उनमें से कोई भी काम नहीं आया।"

मुंशी रामसरन ने कहा, "हमको तो ऐसा लगता है कि ये बड़े-बड़े लोग सभी बात-फरोश हैं। बस अपना मतलब निकालने के लिए मौके-बे-मौके पीठ ठोकते रहते हैं, नहीं तो भेड़ियों की तरह मौका पाने पर जिसे पाते हैं, निगल जाते हैं। अब ये लाला कुबेरदास जी हैं, इन्हीं को देखो। इस झगड़े में बस दूर से तमाशा देखते रहे और हम लोगों से रुपये ऐंठते रहे।"

रामलखन, "इन लोगों के तो नाम से भी अब घृणा हो जाती है। पंडित जी के चुनाव में हम लोगों ने कितनी मेहनत की थी। मैंने सोचा था, अपनी जात-बिरादरी के हैं, कुछ न होगा तो किसी दिन काम ही आयेंगे। पर जब वे भी मन्त्री हो गये हैं, उनके यहाँ हमों-सुमों की अब पहुँच ही नहीं रह गई है। जब मन्त्री नहीं हुए थे, तब आप लोगों ने देखा ही था, यहाँ आकर दरवाज़े पर कई-कई बार टिक गये हैं। इस तरह से बात करते थे कि जैसे कोई सगे सम्बन्धी हों, पर काम बन

गया और अब पूंछ पर पानी ही नहीं लगने देते। इसी को कहते हैं कि 'खेत पर रसरी तब तक दीवान जी' और फिर उसके बाद आँखें उठा कर देखना भी जैसे गुनाह हो।"

रामसरन, "अब की बार तो मेरा मन इन सभी लोगों से खट्टा हो गया है। व्यवहार बरताव ये लोग ऐसा करते हैं, जैसे हम लोग अछूत और नान्ह कौम के हों। मैं शहर अक्सर जाता ही रहता हूँ, अपनी आँखों से सब कुछ देखता हूँ। बस जिनके पास पैसा है, उन्हीं की पूछ है और उन्हीं के लोग चाहने वाले हैं, बस चारों ओर रुपये का ही बोलबाला है।"

गजराजसिंह चुपचाप इन लोगों की बातें सुनते जा रहे थे और जैसे किसी गुस्से में जले जा रहे हों। आखिर उन्होंने झल्ला कर कहा, "ये बाते तो आप लोग करते है, पर काम की बात की ओर आप लोगों का ध्यान ही नहीं जाता कि क्या होगा? लगान कोई भी नही दे पाया है और अब कुरकी होगी। ऐसी हालत में आप लोगों ने क्या सोचा है कि किस स्थिति में पहुँच कर हम लोग रहेंगे। सरकार यह नहीं देखने जायेगी कि किस स्थिति में हम लोग लगान दे नहीं पा रहे हैं। वह तो हर हालत में वसूल करेगी और नहीं तो घर-बार नीलाम पर चढ़ जायेगा।"

रामलखन ने चिन्तित होकर कहा, "और अगर इस समय हम लोग कर्ज उवाम लेकर यह बला अपने सर से टालते हैं तो जब तक हम लोगों की खेती-बारी जम नहीं जायेगी, तब तक भविष्य में हम लोग कैसे अपने पैरों पर खड़े हो पायेंगे और खेती-बारी के काम में दस आदमी चाहिएँ। अकेले तो किसी के बूते का है नहीं कि खेत जोत-बो लो, भर सींच लो, काट दाँय लो। इसमें तो दस आदमियों की मेहनत मशक्कत शामिल होती है, तब यह काम होना है और यहाँ पर इस गाँव का यह हाल है कि सब लोग तित्तर-बित्तर पड़े हुए हैं, मेहनत-मजदूरी करने वाले थे, वे अब मार-फौजदारी करते हैं और आपस की

बराबरी का दावा करते हैं।"

बोलते-बोलते यकायक तिवारी कुछ देर के लिए चुप लगा गये, जैसे कोई बात उनके मन में सहसा उठ आई हो और जबान पर आते-आते रुक गई हो। कुछ देर तक वह इसी तरह चुप रहे। उनके हृदय का भाव जैसे मुंह पर आना चाहता हो, उनके ओठ खुलते थे और बंद हो जाते थे जैसे खौलते पानी की बटलोई पर पड़ा हुआ बर्तन, भाप के जोर से खुलता है और फिर बंद हो जाता है। पर जैसे कुछ स्पष्ट निर्णय नहीं होता। दबे हुए स्वर से उन्होंने कहा, "लगता है हम लोगों की खेती-बारी की हालत तब तक नहीं सुधर पायेगी जब तक हम लोग बनिहारों और कमकरों को काम पर नहीं लेते हैं। अकेले आखिर हम लोग कितना क्या-काम करेंगे ?"

गजराजसिंह ने झल्ला कर कहा, "तो इसका मतलब यह है कि हम लोग उन सबों के सामने जाकर हाथ जोड़ें। जिसके लिए मार-फ़ौजदारी हुई, जानें गईं, लोगों के हाथ-पैर टूटे और अन्त में जो करम बाकी रहा, वह भी हुआ। जेल की सज़ा काटी और फिर जाकर उन सबों का थूका हुआ चाटें।" उसकी नज़र अपने चोट खाये पट्ठों पर पहुँच गई, जहाँ पर निशान अब तक बाकी था।

रामलखन तिवारी ने फिर दबी ज़बान से कहा, "नही, मै यह नहीं कह रहा हूँ कि उनका थूका चाटा जाये; परन्तु इतनी बात तो आप भी समझ सकते हैं कि खेती-बारी एक आदमी के हाथ की बात नहीं है, इसमें सभी का सहयोग चाहिए और बिना खेती-बारी किये हम लोगों का गुज़ारा होगा नहीं। खेत दो साल से परती हैं, लगान दिया ही जा रहा है और इस बीच में इतना नुकसान हो गया कि सम्हलते-सम्हलते भी समय जायेगा।"

मुंशी रामसरन ने गजराजसिंह से कहा, "तिवारी जी जो कह रहे हैं, उसमें ज़रूर सार की बात है। इस पर हम लोगों को सोचना-समझना चाहिए।"

उधर जेल से लौट कर आने के बाद बनिहारों और मजदूरों ने अपनी हालत और भी गिरी हुई पाई। पर उनमें मदोबल काफ़ी था। वे सोचते थे कि अभी तक हमारे पास था ही क्या, जिसकी हम रक्षा करते। नंगे के बदन पर से कोई क्या उतारेगा ? करमू, रशीद, सूरज वगैरह की वजह से उन्हें और भी बल मिलता था। उन लोगों की बातें उन्हें जँचती थीं, "देखते नहीं, जेल से आने के बाद उन लोगों का रुख बदला हुआ है। सही बात यह है कि काफ़ी ठोकरें खाई हैं। बहुत बड़ा उन लोगों का भरोसा था कि हम लोग बनिहारों और कमकरों को रगड़ कर रख देंगे और हमारा बाल भी बांका नहीं होगा। पर अब उन लोगों ने देख लिया कि दूसरे को गिराने के लिए खुद भी गिरना पड़ता है। दूसरों पर कीचड़ उछालने के पहिले खुद अपने हाथ को कीचड़ में सानना पड़ता है।"

"और उनकी हेकड़ी मिटती जा रही है। देखा नहीं था, इस भर के बीच किस बाह्मन ठाकुर की औरत गोबर नहीं पाथने लगी। गाय, बैलों का चारा काटना, खेत मे बोझ लाना, सभी कुछ तो कर रही थीं। आखिर न करतीं, तो क्या खाती ? आदमी तो उनके जेल में थे। मैं कहता हूँ कि यह छोटे-बड़े का भूत, उन लोगों ने अपने दिमाग़ पर ला रखा है, परन्तु अब कुछ उतरता जा रहा है। ठोकर खाने से आदमी की अक्ल ठिकाने आती है। इसमें इन लोगों ने काफ़ी सबक़ सीखा है। हम लोग भी बरबाद हुए हैं, पर अपने बारे में तो हम लोगों की यही बात है कि हमारे पास पहिले क्या था, जो अब नहीं रहा। पहिले भी हम लोग निरीह थे और अब भी हैं। पर हाँ, उन लोगों की अब समझ में आ जायेगी कि अगर जीना है, तो बनिहारों, कमकरों को साथ लेकर चलना ही पड़ेगा।"

"यह नहीं देखते थे कि पहिले चौधरी खुशहालसिंह इन लोगों की देखा-देखी बड़ा बनने की खातिर में अपने घर की औरतों को खेत में जाकर काम नहीं करने देते थे। पर अब देखते नहीं हो कि उनकी

औरतें अब फिर खेती-बारी का काम करने लगीं। उन्होंने भी इधर काफ़ी भोगा है।"

"मेरा तो खसाल है कि उन सभी लोगों को अपनी भूल अब महसूस हो रही होगी। ऊपर से चाहे भले ही अभी न कहें, पर मैं तो कहता हूँ कि एक-न-एक दिन उन लोगों को हम लोगों के साथ आना ही पड़ेगा। आज के युग में परिश्रम करने वालों की उपेक्षा कर के, कोई जी नहीं सकता। उसे झुकना ही पड़ेगा।"

२८

जेठ का महीना था। बनिहारों और मज़दूरों के असहयोग के कारण और साथ ही साल भर तक लड़ाई-झगड़े में फँसे रहने और उसके बाद कुछ लोगों के जेल हो जाने के कारणों से खेतीबाड़ी का काम प्रायः चौपट हो चुका था। नहीं तो, इन दिनों में तो गाँवों में जैसे स्वर्ग धरती पर उतर आता है, चाहे वह स्वर्ग, चार दिन की चाँदनी की ही मिसाल लेकर क्यों न आये। खलिहानों में कटी हुई फ़सल पड़ी रहती है. लगता है जैसे कहीं गेहूँ, कहीं जौ, कहीं चना, अथवा मटर आदि के पौधों के छोटे-मोटे पहाड़ से खड़े हैं। कहीं उनकी पयर बनाकर बैलों की दौरी बाँधी रहती है, छोटे-छोटे गोल-गोल मंडल में फैलाई पयार के ऊपर गोला-कार रूप में बैल घूमते रहते हैं, उनके पीछे-पीछे किसान अथवा बनिहार बैलों को हाँकता रहता है। उसको आँखों में प्रसन्नता चमकती रहती है, उसके मुँह से उल्लास जैसे फूटा पड़ता है। किसान और बनिहार दोनों ही खुश रहते हैं। खेतीबारी से सम्बन्धित और पेशे वाले भी घेरे रहते हैं, इन्हीं दिनों उनकी भी हक़ मजूरी मिलती है। साल भर से लोग इन्हीं दिनों की बाट जोहते रहते हैं। किन्तु इधर साल-डेढ़-साल से खेतीबारी एकदम मारी गई थी। कोई रहे तब तो काम-धाम हो। कुछ लोगों ने थोड़ी-बहुत खेती की थी। जो कुछ चैती फ़सल थी, कट चुकी थी। जौ और गेहूँ के कटे हुए खेतों में केवल खूँटियाँ चमक रही

थीं। जहाँ तक नज़र जाती थी, दूर तक फैले हुए नग खेत लगते थे। जैसे किसी ने सहन झाड़-बुहार कर ठीक की हो, बीच-बीच में दूर-दूर पर, कहीं-कहीं गन्ने के नये पौधे, एक-एक हाथ लम्बे, मुरझाये खड़े थे, जैसे इस सूने-सूने मैदान में अकेले खड़ा रहना उन्हें नापसन्द हो। मुरझाये-और-कुमलाये से मालूम होते थे, जैसे भूख के मारे किसी बच्चे का मुँह सूख गया हो। हवा के झोंके से ईख के छोटे-छोटे पौधे मचल जाते थे, जैसे ज़िद पकड़े हों कि इस धरती पर हरा-भरा पन उतारो, अकेले हमें अच्छा नहीं लगता। इस इतने लम्बे चौड़े मैदान में अकेले हमारा मन ऊब रहा है। वह हमारे साथी, हरे-हरे अरहर कहाँ गये, अभी वे क्यों नहीं आये। ज्वार और बाजरे क्यों नहीं आये? दूर धन-खरों में धान के पौधे क्यों नहीं लहरा रहे हैं। खेतों में जौ और गेहूँ कब तक आयेंगे। मटर और पीली सरसों के रंग-बिरंगे फूलों से धरती का आँचल कब तक रंग उठेगा। अपने अकेलेपन से हम एकदम ऊब गये हैं। इस धरती पर हराभरापन कब आयेगा?

दिन का तीसरा पहर चल रहा था। अंधड़ और तूफ़ान से धूल का बवंडर उठ रहा था। गर्म लू इस तरह हहराती हुई चल रही थी जैसे मरघट में चिता की लपटें उठती हैं, कि अब इस सारी धरती को जला-कर ही तो दम लेंगी। उनकी लपट ऐसी मालूम होती थी कि धरती जल उठेगी। दूर क्षितिज पर दोपहरी नाच रही थी झलझल, जैसे गली हुई चाँदी की पतली धार बह रही हो। सारी प्रकृति साँय-साँय कर रही थी।

कहीं-कहीं पर ईख के खेतों में कुछ किसान पानी दे रहे थे। कूओं पर मोट चल रही थी। प्यासे खेतों में पानी पड़ने से एक हलकी सिस-कारी सी उठती थी। देखते-ही-देखते गन्ने के पौधों की पत्तियों पर कुछ चमक आ जाती थी जैसे पानी पी लेने के बाद प्यासे आदमी के मुँह पर तृप्ति आ जाती है।

चौधरी खुशहालसिंह कूएँ पर पूर चला रहे थे। उनके गन्ने के खेत

में पानी जा रहा था। जिस कूएँ पर पूर चल रहा था, वह एक बरगद के पेड़ के नीचे था। इससे वहाँ पर छाया थी। उनकी एक पतोहू मोट छीन रही थी और एक लड़का मोट हाँक रहा था। पेड़ के नीचे, तने के पास बैठे हुए चौधरी खुशहालसिंह तम्बाकू चढ़ा रहे थे। चिमटे से आग की धूल झाड़-झाड़ कर वह चिलम पर रखते जा रहे थे। इसी समय करमू ने पहुँच कर उन्हें राम-राम की।

फ़ौजदारी के मामले में करमू को भी फंस कर जेल की सजा हुई थी। वहाँ से आने के बाद चौधरी से उसकी कई बार मुलाक़ात हुई थी, परन्तु वह जैसे चलते-चलाते हो। कही रास्ते में मुलाक़ात हो गई थी, कही इधर-उधर। करमू को देख कर चौधरी के मन में ऐसा आया था कि इससे कुछ बाते करें। एक आध बार उन्होंने चाहा भी, किन्तु बोल जैसे कण्ठ के बाहर न निकलता हो। इस लड़ाई-झगड़े मे उन्होंने जो रामलखन, गजराजसिंह वगैरह का साथ दिया था, उससे उनके अपने मन में भी एक असन्तोष छाया हुआ था। बार-बार उनके मन में सवाल उठ खड़ा होता था : क्या हासिल किया हमने इन लोगों का साथ देकर। मुकदमेबाजी में फँस कर घर की सम्पत्ति अलग गंवाई। सजा होते-होते बची, खेतीबारी का अलग नुक़सान हुआ। उन लोगों ने भी क्या लाभ उठा लिया। हमारे घर में तो काम-काज देखने-भालने वाले थे, इस लिए काम-धाम कुछ तो चलता रहा। उन लोगों का तो एक तरह से सत्यानाश ही हो गया। तिस पर जो बड़ी-बड़ुआपन की उनकी ठसक थी वह भी कहाँ निभ पाई? इस बीच में उनकी औरतें भी तो बाहर निकल कर खेतीपाती का काम-धाम देखती थी। पर वह अच्छा ही किया, नही तो भूखों मर गई होतीं। किन्तु बार-बार मन में उठने पर भी वे करमू से बात-चीत करने का साहस जैसे अपने में नहीं पाते थे, उनके अन्तर्मन में इधर करमू वगैरह के प्रति जैसे एक सम्मान का भाव उदय हो रहा हो।

चौधरी ने करमू को देखकर बड़े प्रेम से कहा :

"आओ, करमू बैठो। लो, तम्बाकू पीयो। कहो कैसे आये ?"

करमू : चौधरी काका, अब तो मैं तम्बाकू पीता नहीं। तुम्हीं पीयो। मुझे आपसे एक बात करनी थी, चला आया।

चौधरी खुशहाल ने चिलम को हुक्के पर रखकर कहा : सच कहता हूँ करमू, तुम तो जानते हो कि मुंह-सिफ़ारिशी बात मुझे नहीं करनी आतीं। इसलिए जो कुछ मन में आता है, वह साफ़-साफ़ कह देता हूँ। इधर तुम लोगों से हमारी लड़ाई-झगड़ा भी हुआ। मार-पीट भी हुई। कचहरी अदालत भी हुई, किन्तु आज-कल हमारे मन में बार-बार आरहा है, कि तुम तो वह काम कर रहे हो, जैसा कि कभी किसी ने नहीं किया होगा। तुम्हारी तो काया ही बदल गई। कहने के लिए तुम नान्ह कौम में पैदा हुए, पर बड़े-बड़े तुम्हारा क्या मुक़ाबला करेंगे और सच बात तो हमें यह लगती है कि जो गियान की बात तुम में आ गई हैं, वह पूरब जनम के फल के सिवा और कुछ नही हो सकता है।"

बात-चीत का यह प्रसङ्ग जैसे करमू को अच्छा लग रहा हो। उसने कहा :

"बदल क्या गया, काका, कौन महात्मा हो गया। हाँ, जो कुछ मुझसे हो सकता है कर देता हूँ। वैसे मैं जानता ही क्या था ? रशीद भाई का साथ हो गया और उनके साथ-साथ सूरज भाई से भी मुलाकात हो गयी। उन्ही लोगों ने जो कुछ बना, समझाया-सिखाया, पढ़ाया लिखाया और जो कुछ इस तन से हो सकता है, करता हूँ। किन्तु तिस पर भी लोगों के मन में शायद सुबहा है। अब आप ही देखें, यह बात जो मैंने उठाई थी, उसने किसानों और हम बनिहारों-मजूरों, सब का समान रूप से फ़ायदा था पर उसे भी लोगों ने इस रूप में लिया कि जैसे सब के नुक़सान की ही यह बात हो। अगर मजूरों-बनिहारों के मन में यह बात रहेगी, कि जितना हम खेत से उपजा सकेंगे, उतने ही फ़ायदे में रहेंगे, तो मैं कहता हूँ कि अभी आप किसान लोग बनिहारों को मजूरी पर रखकर जितना अनाज पैदा करते थे, उससे कहीं ज्यादा

होगा। अभी एक बीघे में क्या पैदावार होती है, दस-बारह मन तक पहुँचते-पहुँचते बस हद हो जाती है। इसके कई कारण हैं, एक तो किसान मेहनत का पूरा ज़ोर पहुंचा नहीं पाते हैं। दूसरे बनिहारों को इतनी कम मज़दूरी मिलती रही है, कि उसमें उन्हें कोई उत्साह ही नहीं मालूम पड़ता है। अगर किसानों और बनिहारों-मजूरों का हित उसमें समान रूप से रहेगा तो उपज निःसन्देह बढ़ जायेगी। माना कि अभी हम लोगों को पानी और खाद की सुविधा नहीं है। तो भी सब लोग पूरी ईमानदारी के साथ मेहनत-मशक्कत करेंगे तो पैदावार ज़रूर बढ़ जायेगी। एक बात यह साफ़ है कि हम सभी लोगों की जो बाढ़ रुकी हुई है, उसका मुख्य कारण आज-कल की व्यवस्था है, जिसकी पोषक हमारी सरकार है और जो बड़े-बड़े पूंजीपतियों और सामन्तों के स्वार्थों की रक्षा में लगी हुई है। वही मुख्य कारण है। अगर हम लोग आपस में एका कर लेंगे तो हम लोग कालान्तर में उस बड़ी ताक़त से निपट सकेंगे। एक बात हम लोगों को यह समझ लेनी चाहिए कि हम लोगों में, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, मजूर-किसान आदि का जब तक तफ़रका रहेगा, तब तक हम लोग एक जुट होकर, हम लोगों के सामूहिक स्वार्थों को कुचलने वाली सरकार का मुक़ाबला नहीं कर सकेंगे।

करमू की बातें खुशहालसिंह बड़े ग़ौर से सुन रहे थे। जैसे उसकी एक-एक बात उनके लिए ख़ास महत्व रखती हो। उन्होंने कहा :

तुम तो करमू, जानते ही हो कि बनाकर बातें करना मुझे नहीं आता। और न किसी की हेंकड़ी ही सह सकता हूं। जो बात साफ़ समझ में आती है, वही कहता हूं। और इसीलिए कहता हूं, कि जो काम तुम आज-कल कर रहे हो, चाहे कहीं से सीखे पढ़े, पर कोई देवता भी क्या किसी के लिए करेगा। देवता तो खैर पूजा-पाठ लेता है तब सहाय होता है। अपने घर का भी कोई आदमी ऐसा नहीं करता जैसा तुम दूसरों के लिए करते हो। मैं कोई ठकुर-सुहाती तो कहता नहीं। यही लाला कुबेरदास को देखो। जब वोट का जमाना था, तब मुझे

मोटर पर लेकर साथ-साथ परगने भर घूमते थे। कहते थे कि तुम्हारे ऐसा देश का काम करने वाले बहुत कम हैं। और भी बहुत-बहुत बातें बनाते थे। यही कि चुनाव में जीतने के बाद तुम्हारे दरवाज़े पर सरकारी खर्चे से पक्का कूआँ बनवा दूँगा। न होगा तो कोई परमिट दिला दूँगा। साल-दो-साल भी चल जायेगा, तो मालामाल हो जाओगे। पर अब चुनाव में उनकी जीत हो गयी। अब वह महीना-महीना भर लखनऊ में टिके रहते हैं। शहर में तो सभी हाकिम-हुक्काम उनका दबाव मानते हैं। पर अब जैसे मुझे वे पहिचानते ही नहीं। बसावन के साथ जो फ़ौजदारी हो गई थी, उस मामले में ज़रा सी सिफ़ारिश करानी थी। मुकदमा अपने खिलाफ़ जा रहा था। मैंने जाकर कुबेरदास से कहा : कि आप जरा डिप्टी साहब से हमारी सिफ़ारिश करदें। मुझे दूसरे दिन उन्होंने बुलाया और कहा, कि मैंने खुद तो उनसे बात-चीत नहीं की, दूसरे आदमी के ज़रिये करवाया है। बिना कुछ दिए-लिए काम नहीं होगा। आखिर सौ-सौ के पूरे तीन नोट लाला जी को मैंने दिया। पर मेरा बह्म तो बोलता है कि डिप्टी साहब को सौ रुपये दिये हों, तो दिये हों, नहीं तो सब रुपये स्वयं डकार गया। मेरे मन में तो आया कि कहूँ कि जब चुनाव का जमाना था, दस गाँव के हमारी बिरादरी वाले हमारे हाथ में थे, तब तो आप बड़ी सिफ़ारिश करते-फिरते थे। पक्का कूँआ दरवाज़े पर बनवा देने को कहते थे। मेरे बिना कुछ कहे ही परमिट दिलवा रहे थे और अब काम निकल गया तो मुझी से पैसे ऐंठना शुरू किया।

फिर उन्होंने कुछ ठहर कर कहा : "करमू, जब लड़ाई-झगड़े का तुम्हारे मन में मलाल नहीं रह गया तो अब हमारे मन में भी नहीं है। हम भी लड़ाई करें, झगड़ा करें, मार-पीट करें पर मन में कीना नहीं रखते। हम लोगों के इस मुक़दमे में लाला कुबेरदास और पण्डितजी के पास हम लोग गये थे। लाला रामसरन थे, तिवारी थे और मैं था। क्या कहूं, लाला कुबेरदास ने खर्च-वर्च तो काफ़ी करा दिया। पर किया

क्या ? मैं तो कहता हूँ रक़म उनके ही पेट में जाकर अटक गई होगी।

कुछ देर तक चौधरी खुशहाल का मुँह घृणा और क्रोध से विकृत बना रहा, जैसे अगर लाला कुबेरदास अभी दिखाई पड़ जायें तो उनके मुँह पर थूक देंगे और धक्के मार कर ज़मीन पर गिरा देंगे। हुक्के का एक जोर का कश उन्होंने खींचा, जिससे हुक्के की गड़-गड़ गूँज उठी। झटके से उन्होंने हुक्के को पेड़ के तने से लगा कर खड़ा कर दिया। थोड़ी देर तक वह इसी स्थिति में रहे। फिर करमू से कहा :

"पर यह तो बताओ करमू कि किस काम के लिए आये। मैं तो बातों के सिलसिले में तुम्हारी बात ही भूल गया।"

करमू ने धीरे-धीरे आश्वस्त स्वर में कहना शुरू किया जैसे उसकी एक-एक बात का मूल्य और महत्व हो। और वह बहुत सोच-समझ कर कह रहा हो।

"चौधरी काका, मैं आज तुममे कुछ मदद लेने आया हूँ।"

चौधरी खुशहालसिंह ने अपना सुँह उठाकर करमू की ओर देखा, जैसे वह समझना चाहते हों कि करमू यह क्या कह रहा है। वह उसे किस तरह से मदद दे सकते हैं। मार-पीट, लड़ाई-झगड़ा, लूट-खसोट, जोर-ज़बरदस्ती, आदि को तो करमू बुरा बता रहा है। आपस में मिल-कर रहने की सलाह देता रहता है। पर आज यह किसके खिलाफ मुझसे मदद मांगने पहुँचा है ?

किन्तु करमू रुका नहीं, आगे कहता ही गया :

'चौधरी काका, तुम्हारे हाथ में बहुत ताक़त है। इस गांव के जबार में ऐसा कोन है, जो तुम्हारी धाक न मानता हो। तुम्हारी जाति-बिरा-दरी वाले तुम्हारे कहने में तो हैं ही और लोगों पर तुम्हारा बहुत दबाव है। एक बात और है, तुममें ताकत है, काम करने की लगन भी है। जिस काम में हाथ डालोगे उसे पूरी तरह करके ही छोड़ोगे।

चौधरी खुशहालसिंह का मुँह जैसे आश्चर्य में थोड़ा खुल गया हो। उनकी आँखें कुछ फैल गयी थीं और उनसे आश्चर्य का भाव टपक रहा

था। आखिर वह कौन काम है, जिसको करमू मुझसे कराना चाह रहा है, और जब यह मुझसे कहने आया है तब रशीद और सूरज भी जानते ही होंगे। वह क्या है ? कुछ समझ में नहीं आया। तिस पर अभी हम लोगों के बीच में इतनी लड़ाई झगड़ा होकर गुज़रा है।

करमू बिना रुके ही कहता जा रहा था :

तुम, हम लोगों के साथ आ जाओ। मैं जानता हूँ कि तुम कहोगे मैं भला तुम्हारे किस काम आ सकता हूँ, मारपीट, लड़ाई-झगड़ा, किसी से बैर साधना, किसी की फसल आदि का नुकसान कर सकता हूँ। पर इसके सिवाय मैं और क्या कर सकता हूँ और किस काम को मैं कर सकता हूँ, जिससे तुम लोगों को मदद मिले। पर मैं कहता हूँ कि तुमने ये काम अपनी गैर जानकारी में किये हैं, किसी-न-किसी रूप में तुम्हें दूसरों ने इस काम में बढ़ावा दिया है। थानेदार तुमसे बैलों के दाम का आधे लेता रहा है। तहसीलदार और डिप्टी साहब तुमसे ताज़ा घी, दूध, दही, पाते रहे हैं और कभी-कभी रुपये पैसे लेकर तुमको, तुम्हारी गैर जानकारी में बढ़ावा देते रहे हैं। और भी लोगों ने किसी-न-किसी रूप में तुम्हें इस काम में बढ़ावा ही दिया है। दूसरों ने अपनी दुश्मनी साधने के लिए, अपने-अपने दुश्मनों से बदला लेने के लिये, किसी को नीचा दिखाने के लिए, बड़े-बड़े किसानों और ज़मीदारों ने तुम्हें रुपये दे-देकर इस काम को करने के लिये प्रोत्साहित किया है। मैं क्या नहीं जानता कि मुन्शी रामसरन ने तुमको सौ रुपये दिये थे कि गोपीगंज के ठाकुर के खलिहान में आग लगा दो। उनकी ऊख फुकवा दो और उनके बैल खूंटे पर से छुड़वा दो। और भी बहुत लोगों ने तुमको इसी तरह बढ़ावा दिया है। जब तुम्हें चस्का लग गया तो तुम खुद इस तरह के काम करने लगे। अभी जो तुम हम लोगों के खिलाफ थे, उसका हमारे मन में कोई कीना नहीं है, क्योंकि हम असल बात समझते हैं कि जिस दिन तुम हम लोगों के काम के उद्देश्य को समझ जाओगे उस दिन तुम जी जान से जुट जाओगे। इतना ही नहीं, हमें तो यह भी विश्वास है

कि एक-न-एक दिन तिवारी जी, लाला जी और दूसरे अपने को बड़ा समझने वाले भी हमारे साथ आयेंगे। यह बड़े-छोटे का भेद कोई ज्यादा दिनों तक बनाकर नही रख सकता; क्योंकि आजकल बड़े-छोटे का भेद जात-पाँत में आकर नहीं समाया है। आजकल अमीर और ग़रीब का भेद है। कोई भी हो, जिनके पास पैसा कमाने के साधन हैं उन्हीं के लिए सभी हैं। यह सरकार और उसके सारे साधन पैसे वालों की रक्षा के लिए ही हैं। क्योंकि सरकार हमारी तुम्हारी नहीं, उन्हीं पैसे वालों की है। इसलिए जिस दिन लोग इस तथ्य को समझ जायेंगे उस दिन उनके लिए बस एक और आखिरी रास्ता यही रह जायेगा, कि सभी ग़रीब एक साथ खड़े हो जायें। और तुम जानते हो कि पैसे वाले मुट्ठी भर भी नहीं हैं, पर सारी ताक़त हथियाये हुए हैं।

चौधरी खुशहालसिंह को ऐसा लगा, कि जैसे वे स्वप्नलोक में हों। जैसे कोई देवता उन्हें वरदान देने आया हो। चुपचाप सर झुकाये बैठे रहे और करमू कहता गया :

हमने बापू के मुँह से सुना है कि जब तुम बीस-बाइस बरस के थे तब अपनी जान को ख़तरे में डालकर एक जलते हुए मकान में घुस गये थे और अपनी जान पर खेल कर कोने के घर में पड़े हुए बच्चे को निकाल लाये थे। लड़के का बाप स्वयं वहाँ खड़ा रो-चिल्ला रहा था। पर उससे भी उस धधकती लपट में घुसा नहीं जारहा था। फिर और कौन उस आग में जाता। आखिर किसे अपनी जान भारी थी। और तुम उस आग में घुँस गये। कम्बल को पानी से अच्छी तरह भिगा कर अपने शरीर पर तुमने लपेट लिया था और आग में कूद पड़े थे। लोगों ने तो समझ लिया था कि लड़का तो आग में जला ही, तुम भी जल मरे। पर बिजली की फुर्ती से तुम आग से निकल आये थे। और तुम्हारे सीने से बच्चा चिपका हुआ था।

चौधरी खुशहालसिंह की समझ में जैसे कुछ नहीं आरहा हो। बस वह चुपचाप करमू की बातें सुन रहे थे। जैसे उनके बारे में बातें न हो

रही हों। बल्कि किसी अपरिचित, अजाने आदमी के बारे में कोई बात कर रहा हो और वह चुपचाप बस सुन भर रहे हों।

करमू आगे कहता रहा :

मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि जिस दिन तुम अच्छाई की ओर झुकोगे, उस दिन इस तरफ भी तुम्हारी बराबरी करने वाला कोई नहीं रह जायेगा। तुम में साहस है, शक्ति है। संगठन करने की क्षमता है और जिस काम को हाथ में लेते हो, उसे पूरा करने का संकल्प है, चाहे कितनी भी कठिनाइयाँ और परेशानियां रास्ते में क्यों न आ जायें। जिस दिन तुम इधर झुकोगे तो तुम्हारी बराबरी का कोई नहीं रहा जायेगा। अच्छा काम करने में भी एक प्रतिस्पर्द्धा होती है। एक काम आदमी अच्छा करता है, तो दूसरा अच्छा काम करने की लालसा अपने आप पैदा होती है। पर यह काम तो किसी दूसरे का है नहीं, अपना ही काम है, हर आदमी अपना काम अच्छा ही करेगा।

चौधरी खुशहालसिंह जैसे सोते से जगे हों। चौंक कर पूछा :

तो मैं तुम लोगों के लिए क्या कर सकता हूं ? एक बात तुम्हारी समझ में आती है। मुझे इस रास्ते पर खींचने वाले, भले कहे जाने वाले ही लोग हैं। चाहे वह थानेदार रहे हों, चाहे डिप्टी साहब हों, या मुन्शी राममरन, चाहे कोई भी क्यों न हों, उन्हीं लोगों ने मुझे यह लत लगाई है और फिर तो खून मेरे मुँह में लग गया। अब जो तुम ये बातें कह रहे हो, तो लगता है कि जैसे परदा मेरी आंखों के सामने से उठता जा रहा है। तुम्हारी बातों को सुनने से न जाने क्यों तुम्हारे प्रति एक विश्वास और अपनेपन की भावना आ रही है। कुछ ऐसा लगता है, जैसे दादा-जब मुझे रोकते थे कि बेटा बुरी संगत से बचो। ये बड़े-बड़े बस कहने भर के लिए ही बड़े बनते हैं, पर उनके करतब तो ऐसे हैं कि सुनकर भी लज्जा लगे। पर मैं तो संगत के असर से और कुछ, समय के फेर से, इस बदफेली में फंस गया। तुम्हारे मुँह से ये बातें सुनकर तो मुझे अपने दादा की याद हो आई है। कैसे साधू थे

वे और मैं उनकी संतान, कैसा कुलबोरन निकला।

चौधरी खुशहालसिंह का मुंह उस समय देखने से लगता था, जैसे उनका मन पश्चाताप की भावना से भर उठा है। अब अगर किसी ने जरा भी छेड़ दिया तो वह छोटे-बच्चे की तरह फफक-फफक कर रो देंगे। लगता था कि जैसे वह छोटे बच्चे हों, जिसने पहिली बार लालच में आकर माँ के पैसे चुरा कर बाजार से मिठाई खरीद कर खाई हो, और मिठाई खाने के बाद ही उसका मन पश्चाताप से भर उठा हो। भरे गले से वह कहते रहे जैसे वे किसी से बातें न कर रहे हों, बल्कि बातें स्वयं उनके मुँह से निकलती जा रही है।

यह बात नहीं है कि मुझे अपने किये पर पश्चाताप न होता रहा हो। सच कहता हूँ कि जब मैंने पहिली बार खलिहान फूँका था, तो खलिहान फूँक तो दिया मैंने, पर जब घर वापिस चला तो कुछ दूर तक तो डर के मारे भाग कर आया जिससे कोई देख न ले। फिर जैसे मेरे पैर आगे उठ ही न रहे हों। घड़ी भर तक जहाँ-का-तहाँ पड़ा रह गया था। मन में जैसे कोई बार-बार बोल रहा हो कि अरे खुशहाल, यह क्या किया तुमने! कहीं अन्न देवता को भी जलाया जाता है और तुमने उसी अन्न को जला दिया। खलिहान फूंक दिया, अन्न जल गया, भूसा जल गया, अब आदमी और पशु सभी भूखे मरेंगे। यह काम तुमने अच्छा नहीं किया। आदमी का जाया कहीं ऐसा जघन्य पाप करता है, जिससे दुश्मनी थी, उससे थी, सिर्फ दस-पाँच रुपयों के लिए तुमने यह काम किया कि कोई महापापी भी नहीं करेगा। वह भी एक बार हिचकिचायेगा।

चुपचाप सूनी आंखों से धरती की ओर देख रहा था, जैसे वह अपने होश-हवाश में न हो। जैसे उसके कुकर्त्यों के पश्चाताप की पीड़ा असह्य हो उठी हो। मस्तक झुकाये वह कहता रहा :

और जब मैं एक बार यहाँ से दस कोस की दूरी पर बैल छोड़ने गया था। तो मैंने खूंटे से छोड़ लिया था, बिलकुल नीचा था वह

बैल । बस दो दाँत निकले थे उसके । लम्बी छरहरी टाँगें, लम्बा पतला बदन, कुछ पतला मुँह और ज़मीन तक लहराती गुच्छेदार पूँछ, उसकी बड़ी-बड़ी नीली आँखों में जैसे हर वक्त पानी भरा रहता हो । उसकी पुतलियाँ एक कोने से दूसरे कोने तक आँखों में तैरती रहती थीं । मैं उसे दिन में देख आया था, उसका रंग-ढंग, बस ठीक किसी चौदह-सोलह साल के लड़के का सा था, जिस पर कभी कोई भार न पड़ा हो और न कभी कोई आफ़त-विपत ही पड़ी हो । लाड़-प्यार में पाला-पोसा गया हो । रात में जब बैल छोड़ कर मैं ले चला तो कुछ देर के बाद लोगों को मालूम हो गया कि बैल छुट गया । बस फिर क्या था ? चारों ओर पुकार होने लगी । वह तो कहो कि रात अँधेरी थी, लोग कुछ देख नहीं पाते थे । बैल की पूंछ मरोड़ता हुआ, मैं उसे खेदे ले जा रहा था । बैल हाँफ रहा था । पर मुझे उस तरफ ध्यान देने का समय नहीं था । अगर पकड़ा जाता तो हाथ-पैर वहीं टूट जाते । वैसे चार-छः आदमियों के लिये मैं अकेले भी कम नहीं हूँ, पर जब दस लठैतों से घिर जाता तो क्या करता । मुझे यह लगा कि अब मैं घिर जाऊँगा । बैल छोड़ने का पचास रुपया मैंने अगाऊ ले लिया था । और यह भी वायदा कर दिया था कि बैल जिस खूँटे से छटेगा, फिर उस खूँटे पर नहीं पहुंचेगा, चाहे कोई पनहा दे तो भी नहीं । बैल को मैं भगाये लिए जा रहा था, कि अँधेरे में कुछ दिखलाई नहीं पड़ा । सामने कुँआ था और बैल उसी में गिर गया । मैं पीछे था, बच गया । मगर मैं भी गिरते-गिरते बचा ? अब तुमसे क्या बताऊँ ? मैंने ऐसे काम तो बहुत किये थे, पर वह दुर्घटना ऐसी थी कि कई दिनों तक बैल की सूरत मेरी आँखों के सामने घूमती रही । रह-रह कर उसकी बड़ी-बड़ी नीली आंखें मेरी आँखों में उतर आती थीं और मैं जैसे काँप उठता था ।

चौधरी और करमू बहुत देर तक चुप, गुम-सुम बैठे रहे । चौधरी इस तरह सुन्न बैठे रहे जैसे उनकी जबान बन्द हो गई हो; किन्तु

मुँह पर जैसे एक स्वाभाविक दृढ़ता आ रही हो। अन्त में करमू ने कहा :

तो चौधरी काका, आज से हमें तुम्हारी मदद मिलेगी। बहुत सारा काम पड़ा हुआ है। तुम भी जब साथ आ जाओगे तो हम लोगों का उत्साह दूना बढ़ जायेगा। हम लोगों को बड़े-बड़े लोगों का मुकाबिला तो करना ही पड़ेगा, सरकार भी पूरी ताक़त से हमें दबायेगी। सरकार में आखिर कुबेरदास ऐसे ही लोग तो हैं। जब उन लोगों के हक़ों को धक्का पहुँचेगा तो वे लोग हम लोगों को अपनी पूरी ताक़त से दबायेंगे ही। साथ ही हम लोगों को यह नहीं भूलना चाहिए कि उनका जो जोर जुल्म है, वह हम लोगों की कमज़ोरी और हमारे दुश्मनों के मज़बूत रहने के ही कारण है। जिस दिन हम लोग जाग उठेंगे और अपने आपको पहिचान लेंगे, उस दिन दुनियाँ की कोई भी ताक़त हमको हमारे हकों से वंचित नहीं कर सकती है। जिस दिन इस छोटे-बड़े के भेद को भूल कर सब ग़रीब अपने हकों की रक्षा के लिए एक साथ उठ खड़े होंगे, उस दिन हम लोग इस धरती पर स्वर्ग उतार कर ही तो दम लेंगे।

: २६ :

लोगों को यह विश्वास नहीं होता था कि चौधरी खुशहाल ऐसे आदमी की इस तरह कायापलट हो सकती है। जो आदमी अभी तक डाके डालने में भी नहीं हिचकता था, जिसका पेशा ही चोरी करना, बैल छोड़ना, घर खलिहान फूँकना था वह अब इन सबको तिलाँजलि देकर दूसरों की भलाई के काम में लग जायेगा। तिस पर किन लोगों के साथ एका ? अभी-अभी जिनके साथ मार-पीट हुई थी, लड़ाई-झगड़ा हुआ था। फौजदारी और अदालत हुई थी और उस सिलसिले में दो जानें गई, सजायें हुईं।

लोगों को बहुत ही आश्चर्य हुआ। अभी यही तो चौधरी थे, जो रामलखन वगैरह के साथ मिल कर दमन करने में सब से आगे थे।

उन्होंने यह संकल्प किया था कि इन मजदूरों और कमकरों को नेस्तो-नाबूद करके ही तो दम लेंगे और वही चौधरी आज उनके साथ खड़े हैं।

किन्तु सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह हुई कि चौधरी ने इस बात को स्वीकार कर लिया कि खेती-बाड़ी के मामले में हम लोग एक दूसरे के सहयोग से काम करें। उनकी समझ में करमू, रशीद, सूरज वगैरह की यह बात सही मालूम हुई कि अकेला आदमी जितना कर सकता है, कई आदमियों के योग और मनोभाव से किया हुआ काम, उससे कही ज्यादा बेहतर होगा। खेती के काम में उन्हें यह बात उचित मालूम हुई कि सरकार के कानून से हम लोग बाद में निपट लेंगे, पहिले हम आपस में एका तो कर लें। उन्हें इस बात का अहसास हुआ कि जब काम करने वाले के मन में यह भावना रहेगी कि वह अपना ही काम कर रहा है, उसके लाभ-हानि से उसका सम्बन्ध है, उसके सूत्र से उसकी जिन्दगी आबद्ध है, तो फिर निस्सन्देह वह अपनी पूरी शक्ति और पूरी मनोभावना से काम करेगा। जिस खेत में दस मन अनाज पैदा हो रहा हो उसमें पन्द्रह मन करने के लिये, उसमें थोड़े ही परिश्रम, खाद-पानी की सुविधा प्राप्त करने के लिए समाज और शासन के ढाँचे को बदलना पड़ेगा।

करमू, रशीद, सूरज आदि के साथ चौधरी खुशहालसिंह के आ जाने के कारण इन लोगों को काफ़ी मदद मिली। पहिले चौधरी की बिरादरी के लोग इन लोगों के साथ कम आते थे। एक दो आ जायें तो कोई बात नहीं, पर अन्य लोग इन लोगों से दूर ही दूर रहते थे। कारण, चौधरी की अन लोगों में चलती थी। चाहे कोई भय से माने या स्वार्थ के वश होकर। पर यह बात तय थी कि चौधरी के रुख की अवहेलना नहीं कर सकता था। चौधरी के आ जाने से अहीरों, कोइरियों, गड़रियों आदि जातियों के कितने ही लोग साथ आ गये। ये भिन्न-भिन्न जातियों और पेशे के लोग मिलकर इस तरह एक हो जाते

थे, जैसे छोटी-छोटी नदी-नाले मिल कर एक बड़ी नदी के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। यहाँ न कोई चमार था, न कोई दुसाध, न कोई अहीर और न कोई मुसलमान, सब एक थे। इन लोगों के बीच में करमू अक्सर कहा करता था, "हरि को भजे, सो हरि का होई"। जो परिश्रम करने वाले हैं, उन सब की एक ही जाति है। दुनिया में बस दो ही जातियाँ रह गई हैं, एक गरीबों की, दूसरी अमीरों की। गरीब सारी दुनिया में फैले हुए हैं। वही परिश्रम करने वाले हैं, उन्हीं के बल से धरती की छाती फाड़ कर अन्न निकाल लिया जाता है; वही अन्न, जो कि जीवन-दाता है, जो कि खून है, जो कि माँस है और जिसकी बदौलत साँसों का क्रम चालू है, जिसके बल से इस दुनिया का अस्तित्व कायम है। इन्हीं गरीबों के पसीने के बल पर आकाश का गर्व चूर करने वाली आलीशान अट्टालिकाएँ इठलाया करती हैं। किन्तु विडम्बना यह है कि अन्न के पैदा करने वाले भूखों मर जाते हैं। मकान के बनाने वाले खुले आकाश के नीचे गर्मी-सर्दी और बरसात काटने के लिए वाध्य होते हैं। स्कूल और अस्पताल बनाने वाले अशिक्षित और रोगी रह जाते हैं और यह सारा परिश्रम, यह स्वर्ग, यह सारा वैभव और यह सारी आसूदगी उनके हाथों से सरक कर दूसरों के हाथों में चली जाती है, जो अपने वश में फौज-फाज किये हुए दुनिया पर क़ब्जा किये बैठे हुए हैं। उन अमीरों की संख्या, दाल में नमक के बराबर भी नहीं है। किन्तु शासन का सारा सूत्र उन्हीं के हाथों में है, फौज उन्हीं के हाथों में है, पुलिस उन्हीं के हाथों में है और शासन की शक्ति उन्हीं के हाथों में है। इसलिए जब तक पैसे वालों के हाथों से शासन की बागडोर नहीं छीन ली जायेगी, तब तक अनाज पैदा करने वालों का भूखा मरना बन्द नही होगा, तब तक मकान, महल बनाने वालों का खुले आकाश के नीचे गर्मी में झुलसना बन्द नहीं होगा, जाड़े में ठिठुरना बन्द नहीं होगा और न बरसात के थपेड़े ही सहना बन्द होगा। तब तक स्कूल और यूनिवर्सिटियों को

बनाने वालों के बच्चों का अशिक्षित रह जाना बन्द नहीं होगा और अस्पताल बनाने वालों के बच्चों का बिना दवा-दारू के आवारा कुत्ते की मौत मर जाना बन्द नहीं होगा।

करमू का कहना था कि हम बस केवल श्रम की प्रतिष्ठा कायम करना चाहते हैं। जाति-पाति आपस के बनावटी भेद हैं। जो परिश्रम करता है, वही सबसे बड़ा मानव है, वही देवता है और वही इस धरती का भगवान् है। मनुष्य के हाथ और पैर हैं, दिमाग और बुद्धि है, शक्ति और साहस है, इनसे वह अपने कल्याण की, दुनिया के कल्याण का काम कर सकता है। तभी हाथ और पैर की सार्थकता है, तभी शक्ति और साहस का सदुपयोग है। हमें सीधे तौर पर बकरी की तरह अन्याय और अत्याचार को नहीं सह लेना चाहिए। एक अन्याय को अगर हम तरह देते हैं, तो अन्याय और अत्याचार करने वाले का साहस बढ़ता है। उसके मन का शैतान उसे उकसाता है कि दुनिया तुम्हारे सामने दब रही है, उसे दबाओ और इसीलिए किसी भी अन्याय-अत्याचार के सामने हमें घुटने नहीं टेक देना चाहिए। अपने मन में कस्द कर लेना चाहिए कि आज यदि अन्याय-अत्याचार को मिटा देने में हम कमजोर पड़ रहे हैं, तो आज न सही तो कल, अपने संगठन के बल से, शक्ति पैदा करके इस अन्याय और अत्याचार को धरती से मिटा देना है। यही हमारी शक्ति और साहस का प्रतीक है।

मुन्शी रामसरन, रामलखन, गजराजसिंह वगैरह चौधरी के इस रुख पर पहिले तो जैसे हतप्रभ होगये थे, उन्हें लगा कि चौधरी को अपनी ओर करके मजूरों-बनिहारों और कमकरों का यह उद्देश्य है कि अपनी ताक़त को बढ़ावें और हम लोगों को किसी भी दिन लाठी के बल से नीचा दिखादें, इससे वे बहुत चिन्तित हुए : किन्तु उन लोगों की तरफ़ से कई आक्रमणात्मक भावना की आशंका नहीं दिखाई पड़ी। बल्कि एक दिन जब वे लोग बैठे आपस में इसी विषय पर बातें कर रहे थे तब उसी समय करमू, सूरज, रशीद वगैरह ने आकर उन लोगों को

राम-राम किया। साथ में चौधरी खशहालसिंह थे, और कई आदमी इसी तरह के थे।

इन लोगों को देखकर रामलखन वगैरह के मन में जैसे कुछ आशका उठी। उन्होंने कनखियों से मुन्शी रामसरन की ओर देखा और फिर उन लोगों की नज़रें गजराजसिंह से मिलीं। सभी की आँखों में एक प्रश्न था। "किस लिए यह ठट्ठ बाँध कर यहाँ आये हैं ?"

रामलखन ने दबी जबान में पूछा : "कहो ?"

किन्तु यह एक शब्द 'कहो, उनके मुँह से इस तरह से निकला जैसे जबरदस्ती टेलकर किसी ने यह शब्द उनके मुँह से बाहर निकाला है।

करमू ने ही बात शुरू की : "तिवारी जी हम तो आप लोगों से कई दिन पहिले ही मिलने वाले थे। पर आज मौका मिल पाया है।"

रामलखन वगैरह ने इस तरह देखा जैसे सुनसान स्थान में किसी अपरिचित आदमी को देखकर किसी कमज़ोर आदमी के मन में आशंका, भय, जिज्ञासा आदि के भाव एक साथ उठें। उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया, केवल प्रश्न-सूचक आँखों से उसकी ओर देखते रहे।

करमू ने कहना शुरू किया : "इतने दिनों तक हम लोगों का आपस का व्यवहार और बरताव कैसा रहा है, यहाँ उन पुरानी बातों को उठाना हम लोगों के लिए कोई लाभदायक नहीं होगा और न तो उससे हम लोगों का भविष्य ही सुधर सकता है। हम सभी देख रहे हैं कि इधर दो वर्षों में हम लोग भी बरबाद हो गये। वैसे हम लोगों में सभी की हालत पहिले से ही गिरी हुई थी। क्या किसान और क्या मजूर। बात ज़रूर रही है कि आप लोगों की रोटी दाल की समस्या किसी तरह हल हो जाती थी पर हम लोगों के लिए बिछाने के लिए धरती और ओढ़ने के लिए आकाश के सिवा और कोई साधन नहीं रहा। किन्तु इधर दो वर्षों से हम लोगों की हालत और भी बदतर हो गई है। इतने दिनों तक इस रूप से रहने के बाद हम सभी लोगों

को अब कम-से-कम यह महसूस कर लेना चाहिए कि एक दूसरे का विरोध करके कोई लाभ नहीं उठा सकेंगे।

गजराजसिंह को करमू की इस बात से उसके अहंकार का बोध हुआ। उन्हें लगा कि यह हम लोगों को और भी नीचा दिखाने की गरज से ये बातें कर रहा है। कुछ बेरुखाई के साथ उन्होंने कहा :

"तो इन बातों को उठाने से तुम्हारा मतलब। हम लोग चाहे जहन्नुम में जायें, तुम अपना रास्ता देखो। हम लोगों को तुम्हारी सलाह और सहानुभूति की कोई जरूरत नहीं है।"

मुन्शी रामसरन ने आँख के इशारे से गजराजसिंह को टोका : 'जरा सुनिये तो सारी बात। क्या खाकर ये सब अकल में हमें पछाड़ देंगे।"

करमू ने कहा : "हमारा यह मतलब कदापि नहीं है कि हम आप लोगों पर ताने कसें। मैं तो सिर्फ यही बातें कह रहा हूँ कि इन दो वर्षों की खींचातानी में न तो किसानों ने कुछ हासिल किया और न मजूर-बनिहारों और कमकरों ने।"

रामलखन के मुँह से निकल गया, "हाँ, यह बात तो है।" किन्तु उन्हें बोध हुआ कि कहीं इस तरह की बात अपने मुँह से कह करके अपनी कमजोरी तो नहीं जाहिर कर रहे हैं, वे चुप हो रहे।

करमू ने कहा : 'आखिर हम लोगों के यहाँ खेतों की उपज क्या है ? यही बीघे पीछे आठ-दस मन हो जाये तो हम लोग अपना धन्य भाग समझते हैं। वैसे अनाज की पैदावार बढ़ाने के लिए हम लोगों के पास साधन बहुत कम हैं; परन्तु अगर आपस की सहयोग की भावना से काम किया जाये तो हम अपनी पैदावार बढ़ा सकते हैं। हम यही कहना चाहते हैं कि जिस तरह चौधरी खुशहालसिंह का सहयोग हम लोगों को मिला है, उसी तरह से हमें आपका भी मिल जाये। मुझे पूरा विश्वास है कि अगर हम लोग सहयोग की भावना से रह सके तो फिर उसकी सभी सुविधायें हम लोगों पर प्रकट हो जायेंगी।

रामलखन वगैरह ने कोई भी जवाब नहीं दिया। किन्तु उनके मुँह पर प्रकट भावों से ये बातें उन्हें जँच रही थीं। उन्होंने दबे स्वर में कहा : "तो हम लोग इसके बारे में दूसरे दिन जवाब देंगे।"

: ३० :

घटाटोप बादलों के परदे को फाड़ कर जब सूरज चमकने लगता है तब सारी प्रकृति जैसे विहंस उठती है। पेड़-पौधे झूम-झूम कर अपनी खुशी जाहिर करने लगते हैं। चिड़ियाँ अपने घोंसलों से निकल कर फुदक-फुदक कर चारा चुगने लगती हैं, कभी ताज़गी लाने के लिए उन्मुक्त आकाश में उड़ानें भरने लगती हैं, वातावरण में जो उमस और शिथिलता उमस से भर जाती है, जैसे अपने परों की फड़फड़ाहट से उसको दूर भगा रही हो। गाय, बैल और दूसरे घरेलू जानवर रभाने लगते हैं। गायों के बछड़े अपने नन्हे-नन्हे कानों को खड़ा कर, जैसे अपनी प्रसन्नता को प्रकट करने के लिए सरपट दौड़ भरने लगते हैं और फिर आकर अपनी माँ के थन में मुँह लगा देते हैं। चमकते सूरज को देखकर बच्चों की आँखों में प्रसन्नता चमक उठती है। किसान अपने खेतों में काम करने लगते हैं। सारे वातावरण में जैसे एक नई ज़िन्दगी का संचार हो जाता है।

रामपुर गाँव के किसानों तथा मज़दूरों बनिहारों का तो तनाव इतने दिनों से चला आ रहा था उसके खतम हो जाने से सभी बाशिन्दों के दिलों पर से जैसे बोझ उतर गया हो। अभी तक जिस हालत में पड़े हुए थे, जिस प्रतिहिंसा की भावना से जले जारहे थे, जिसकी आग में दो-दो जानें गईं, कितने घायल हुए, ग़रीबी ने जैसे पंजा और भी मज़बूत कर लिया था, खेत बाग जैसे वीरान होगये थे, अब उनमें आपस की सुलह हो जाने से जैसे सभी का मन हलका हो गया हो। पके हुए फोड़े का जब तक ऑपरेशन नहीं हो जाता, सारा शरीर पीड़ा और दर्द से बेचैन रहता है और ऑपरेशन के बाद जैसे एक राहत मिलती है, जीवना-शक्ति जैसे बढ़ जाती है, उसी तरह इतने दिनों के

अलगाव के बाद किसानों मज़दूरों के आपस में मिल जाने से हुआ।

किसानों मज़दूरों ने बड़े उल्लास के साथ खेतीबारी के काम में हाथ लगाया। खेतों में जो घास-पात उग आई थी, उन्हें साफ़ किया। उनकी मेड़ ठीक की, जुताई वगैरह शुरू करदी। इन कामों में सभी एक साथ, एक दिल होकर जैसे लगे हों, सभी के चेहरों पर उल्लास था। मज़दूरों बनिहारों के चेहरों पर सन्तोष और विजय की चमक थी, ठीक उसी तरह जैसे निराधार बहता हुआ आदमी तैर कर किनारे लग जाये। इतने दिनों के बाद खेतों और फसलों के बीच में फिर जाने के बाद उनके दिलों में वही भाव उठता था जैसे रास्ता भूल जाने के बाद बच्चा धूप में इधर-उधर भटकता-भटकता थक जाये, उसके प्राण आशंका और भय से सूख जायें, फिर सहसा आकर माँ उसे अपनी गोद में उठा कर अपने आँचल से स्नेह शीतल हवा करने लगे। उसके मुँह पर, सर पर स्नेह से हाथ फेरने लगे।

किसानों मज़ूरों के सामूहिक परिश्रम और खाद पानी की समुचित व्यवस्था से पेड़ की शीतल छाया में घड़ी भर विश्राम करने के पश्चात स्वस्थ होकर फिर पूरी शक्ति के साथ चलने लगता है।

खेतों में काम करते समय पिछली दुर्घटनाओं की याद भी उनके लिए अब एक हंसी मज़ाक की चीज़ हो गई थी। आज के इस उल्लास पूर्ण जीवन में उस कटुता की याद भी जैसे उन्हें एक आनन्द दे जाती हो : मिलन के क्षणों में दो प्रेमी अतीत के वियोग की स्मृति करके जैसे एक दूसरे के प्रति और भी गाढ़ स्नेह सूत्र में आबद्ध हो जाते हैं।

खेतीबारी से बचे हुए समय का उपयोग गाँवों की सफाई में उन्होंने लगाया। पहिले यही गाँव नर्क था। जहाँ-तहाँ कूड़ा-करकट पड़ा रहता था। सारा गांव अब चमन सा नज़र आने लगा। रात के समय पढ़ाई वगैरह का सिलसिला चालू किया। इन कामों में गाँव के सभी लोगों ने बड़े उल्लास से भाग लिया। अब उनके लिए जाति का बन्धन नहीं था। छोटे-बड़े का बन्धन नहीं था, ऊंच-नीच का बन्धन

नहीं था, किसान मज़ूर का बन्धन नहीं था। उनके सामने मानवता विराजमान थी।

अभी कुछ वर्षों पहिले यही गाँव आदमी-आदमी में बंटा हुआ था। जाति-जाति में बँटा हुआ था। ऊंच-नीच में बंटा हुआ था। आपस की कलह और अशान्ति में बंटा हुआ था। लगता था हर आदमी जैसे अपने में सीमिति हो, हर आदमी अपने स्वार्थों में जैसे इतना उलझा हुआ हो कि दूसरे की ओर आंख उठाकर जैसे उसे देखने का भी मौक़ा न हो। जैसे सभी जंगल के जानवर हों जो एक दूसरे को फाड़ खाने की ताक में डोलते हों। जैसे ज़रा भी आँख बची नहीं कि एक दूसरे का गला दबोच देंगे। इसके सिवा हर एक, एक दूसरे को शंका और सन्देह की नज़रों से देखता था। फिर अन्ध विश्वासों और कुसंस्कारों के नीचे दबे हुए। यह जाल इतना कसा हुआ था कि हाथ पैर हिलाना भी मुश्किल था।

किन्तु अब जैसे उसी गाँव में सदेह साहस डोलता हो, करमू जैसे इस गाँव के लिए मसीहा बन कर पैदा हुआ हो। अब लोगों के दिल एक दूसरे से स्नेह और अपनत्व के सूत्र में बंधे हुए थे। एक दूसरे के सुख-दुख के प्रति हमदर्द थे। हवा की लहरियाँ और चाँद सूरज की किरणें भी वहाँ के बाशिन्दों के साहस और संगठन को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जैसे बिखेरे दे रही हों।

करमू को आज गाँव भर ने अपने देवता के रूप में देखा और जगनी, जिसने पिछले दिनों में आश्चर्य और श्रद्धा के साथ जीवन की हर कठिनाई को सहन करते हुए भी उसके मार्ग में सर्वदा पलक-पाँवड़े ही बिछाये थे, उसका दिल गाँव की लहलहाती हुई खेती और अपनी ज़िन्दगी के उभार पर आनन्दविभोर हो उठा था। आज वह अपने उन्हीं खेतों के बीच खड़ी थी जिनमें एक दिन उसकी कमर में लात मार कर तिवारी जी ने उसे भूमि पर गिरा दिया था। परन्तु आज तिवारी जी कह रहे थे : "जगनी मटर की फलियाँ चाहिएँ तो ले जाना। यह तुम्हारा ही

खेत है। तुम्हीं लोगों की मेहनत से तो यह खेत लहलहा रहा है।"

और जगनी के सामने मानो स्वर्ग बिछ गया था। उसकी आँखों के सामने तिवारी जी के यह शब्द सुनकर करमू के उसी खेत से निकाले जाने, अपने पेट गिरने, करमू के जेल जाने, करमू के जेल से आने, कमकरों के काम छोड़ देने, गाँव के दो अनमोल जवानों की लाशें गिर जाने, मुक़दमे में गाँव के तबाह होने, तमाम गांव की खेती सूखने और वीरान हो जाने और फिर से लहलहा उठने कर सारा इतिहास चलचित्र के समान उभरता चला गया। वह शरमा गई, संकोच से सिहर गई तिवारी जी के सामने। उसने गर्दन नीची कर ली और उसके नेत्रों में दो बूँद आँसू झलक आये।

इसी समय उसने देखा सामने कि कुए पर से करमू भी चला आ रहा था मस्ती में झूमता हुआ। उसकी चाल में एक मस्तानी अदा थी। उसने विजय प्राप्त की और बड़े-बड़कों की अकड़ को ढीला किया था, परन्तु अपने व्यवहार में वह इतना सरल, सदय और कुशल था कि उसके अत्मिअभिमान की झलक भी किसी पर नहीं जाने पाती थी।

प्रात.काल का समय था। सूर्य देवता पूर्व दिशा में नीम की पत्तियों के बीच से झाँक रहे थे और उसी ओर से आते हुए करमू पर जगनी की दृष्टि पड़ी तो उसने सूर्य देवता के बीचों-बीच अपने देवता को पाया, विजयी देवता को, देवता नहीं मानव को, जो मानव के लिए लड़ा और जेल गया था और जिसने अपना जीवन मानव की भलाई में होम दिया था।